माँ की ममता

प्रिय भव्य आत्माओं ! आपकी अंतरात्मा में विराजमान शक्तिरूप परमात्मा को कोटि-कोटि प्रणाम। आपकी अंतरात्मा में विराजमान धर्मभाव के लिए कोटि-कोटि नमन, गुरु उपहार स्वीकार करें।

प्रिय बंधुओं ! एक बहुत सुंदर नगर था, उस नगर में एक धनवान परिवार निवास करता था। परिवार में माता-पिता की इकलौती संतान मात्र एक पुत्र था। कुछ समय गुजरा पूज्य पिताजी का देहावसान हो गया। माता के अंदर पुत्र के प्रति स्नेह जागृत होता है। वह अपने पुत्र को और अधिक प्रेम देना प्रारंभ करती है।

माँ की इकलौती संतान थी। वह चाहती थी कि मेरा बेटा पढ़ लिखकर डॉक्टर बने, मेरा बेटा पढ़ लिखकर संसार में सबसे ज्यादा उच्च पद पर पहुँचे। अनेक प्रकार की मन में भावनाएँ संजोती है और इन भावनाओं को संजोकर के वह अपने बेटे को स्कूल में दाखिल करती है। बेटा बहुत अच्छी तरह से पढ़ता है, लिखता है। इकलौते बेटे के ऊपर इतना ज्यादा प्यार बरसता है कि लाड़ प्यार में वह बिगड़ना प्रारंभ हो जाता है और आगे चलके जब बालक कॉलेज जाता है। कॉलेज की हवा लगते ही, उसे ना तो माँ का ख्याल रहा, ना उसे परिवार के सम्मान का ख्याल रहा, ना उसे अपनी समाज की प्रतिष्ठा का ख्याल रहा। वह कॉलेज में पहुँचते ही पढ़ना तो कम, बिगड़ना ज्यादा प्रारंभ कर देता है और कुछ ही दिनों में हवा लगते ही वह भूलता गया- माँ का प्रेम, भूलता गया माँ की ममता।

कॉलेज में एक दिन उसे ऐ रूपसी लड़की दिखाई देती है। उस लड़की को देखकर उसका मन मचलने लगता है। वह चाहता है, कैसे भी हो वह लड़की मुझे चाहने लगे। वह धनवान पिता की इकलौती संतान था। जितना धन उसके पास था उस बेटे ने अनेक प्रकार के उपहार उस लड़की को देना प्रारंभ किये, यहाँ तक की सब कुछ देने को तैयार हो गया।

कुछ दिनों बाद वह समझता है ये लड़की अब मुझे चाहने लगी है, मुझसे मोहब्बत करने

लगी है। जब मुझे शादी करना ही है, तो मैं शादी करूँगा तो इसी से करूँगा। एक दिन बातों ही बातों में इस प्रेम कथन में लड़की से कहता है''आप जो चाहो, तुम्हारे लिए मैं वह चीज ला सकता हूँ। तुम चाहो तो संसार की कोई भी वस्तु मैं तुम्हारे लिए ला सकता हूँ। लेकिन मात्र मुझे तुम्हारा प्रेम चाहिए, तुम मेरे साथ शादी करो।''

लड़की कहती है- तुम मुझसे सचमुच प्रेम करते हो?

वह कहता है, ''तुम ने आज तक मेरे प्रेम को नहीं पहचाना कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। जब से कॉलेज में आया हूँ, तब से तेरा दिवाना हूँ। तुम मुझसे शादी करो। अनेक प्रकार के वादे करता है।

तभी वह लड़की बोलती है''कसमें वादे प्यार बफा सब बातें हैं, बातों का क्या? जग के नाते रिश्ते झूँठे, नाते है नातों का क्या?''

वह लड़का-लड़की की बातें सुनता है। उसको लगता है, शायद लड़की को मुझ पर विश्वास नहीं है। वह कहता है''तुम जो चाहो वह मैं तुमको देने को तैयार हूँ, तुम माँगो। तुम संसार की कोई भी वस्तु माँगोगी, तो मैं तुम्हें देने को तैयार हूँ।'' लड़की भी सोचती है कि इसकी परीक्षा तो करके देखनी चाहिए कि जिसके साथ मैं जिंदगी निभाना चाहती हूँ, उसके अंदर प्रेम है, कि नहीं। लड़की कहती है- तुम मुझे सच्चा प्रेम करते हो, तो तुम घर जाकर के अपनी माँ का कलेजा लाकर मुझे दो।

बंधुओ! आप जानते हैं, युवा अवस्था एक ऐसी घाटी होती है, जिस पर से फिसलना बहुत आसान होता है। लेकिन इस उम्र को पार करना कठिन होता है। खाई पर से जैसे पैर फिसलता है, तो व्यक्ति बहुत नीचे चला जाता है। पर्वत पर चढ़ना बहुत कठिन होता है लेकिन पर्वत से गिरना बहुत आसान होता है। यह एक ऐसी अवस्था होती है, जहाँ पर व्यक्ति को होश तो रहता नहीं, मात्र जोश रहता है। व्यक्ति के विवेक की आँखे मुद जाती हैं। मात्र वे बाहरी मोह, बाहरी प्रेम के आगे अपने आपको भी नहीं समझ पाते हैं। उसे तो केवल बाहरी प्रेम दिखाई पड़ता है।

एक सज्जन मेरे पास आए उन्होंने कहा ''मेरे एक मित्र छोटी उम्र के थे उनका अभी-अभी हार्ट अटैक हुआ।''मैंने कहा'' क्या हो गया? तो बोले वे एक लड़की से मोहब्बत करते थे, लड़की ने शादी नहीं की तो हार्ट अटैक हो गया। उसके अंदर वासना का जहर इतना फैल चुका था कि वह अपने विवेक को खो चुका, अपनी बुद्धि को खो चुका और लड़की ने जो कहा- माँ का कलेजा ला

दो, तो वह लड़का अंधेरी रात में घर जाता है। माँ वहाँ पर इंतजार कर रही है। मेरा राजा बेटा अब तक क्यों नहीं आया है? रोज जल्दी आता है। माँ इंतजार में बैठी है, कि बेटा कब आए? बेटा आता है, माँ बहुत स्नेह के साथ उसे दूध पिलाती है। लेकिन उसकी भूख नहीं मिटती, लेकिन उसकी प्यास नहीं बुझती क्योंकि, आज यह लड़का बेटा बनके नहीं आया था। आज वह कॉलेज का लड़का माँ का कलेजा लेने आया था। वह दूध पीने, पानी पीने नहीं आया था, वह खून पीने आया था। वह माँ की गोद में नहीं आया था, वह तो माँ को मौत की नींद सुलाने आया था। आता है, बहाना बना के लेट जाता है, माँ अपने कमरे में लेट जाती है। वह बेटा–उसके अंदर तो एक ही सपना था, चाहे कैसे भी हो मैं उस लड़की से शादी करके रहूँगा। चाहे मुझे घर लुटाना पड़े, चाहे मुझे प्राण देना पड़े, माँ का कलेजा देना पड़े, लेकिन मैं उससे शादी करके रहूँगा।

क्यों, यहीं तो आज सिखाया जा रहा है? जब कोई लड़का फिल्म देखने जाता है या कोई गीत सुनता है, तो क्या सुनता है? खाके जहर मैं मर जाऊँगा? बात सत्य है, तुम मर जाओगे जहर खाके तुम जिंदा नहीं बच सकते। तुम्हारा प्यार सच्चा नहीं है। तुम मीरा नहीं हो, मीरा ने जहर खाया था, उसका जहर अमृत बन गया। शिवजी ने जहर खाया अमृत बन गया। क्योंकि शिव के अंदर सच्चा प्रेम था, मीरा के अंदर सच्चा प्रेम था। तुम्हारे अंदर प्रेम नहीं, तुम्हारे अंदर वासना का जहर है, प्रेम नहीं है। प्रेम परमात्मा से होता है, प्रेम माँ से होता है। यदि ऐसा प्रेम नहीं हो, तो वह प्रेम की परिभाषा से बहुत दूर है। अभी तक हमने प्रेम को समझा ही नहीं।

उस बेटे ने प्रेम की परिभाषा को नहीं जाना था। वह भ्रम को प्रेम समझ बैठा रात्रि में आप जानते हो, उसके दिमाग ने तूफान मचा दिया। वासना का जहर इतना फैल गया, वासना के पागल कुत्ते ने उसको काट खाया। जब काट खाया तो वह उस रात्रि के अंधेरे में चाकू लेकर के, माँ के हृदय में भौंक देता है और कलेजा निकालकर के रात्रि में दौड़ते–दौड़ते जाता है। उस प्रेयसी के पास, उस लड़की के घर जाकर के प्रेयसी को वह कलेजा दिखाता है। प्रेयसी देखते ही अवाक् रह जाती है। मूर्च्छा खाकर गिर जाती है। फिर कहती है– धिक्कार है तुम जैसे पापी के लिए, जिस माँ ने तुझे जन्म दिया, जिस माँ ने तुझे नौ माह पाला पोसा, जिस माँ ने तुझे पाल पोसकर बड़ा किया, जिसने तुझे दूध पिलाया, जिस माँ ने तेरा इतना उपकार किया, छोटे से लेकर इतना बड़ा किया और आज तुमने अपनी माँ की हत्या कर दी। निकल जा यहाँ से, मुझे अपना काला मुख मत दिखा। जब तू अपनी माँ की हत्या कर सकता है, तो दुनिया में और किसकी हत्या नहीं कर सकता? जो मेरे प्रेम में आकर के, मेरे रूप में आकर के जब तू अपनी माँ के प्राण ले सकता है, तो किसी दूसरी रूप सुंदरी को देखकर, तू मेरे प्राण भी ले सकता है। कभी कोई अन्य रूपसुंदरी भी कहेगी, मुझे उस

रूपसुंदरी का कलेजा लाओ तुम मेरा कलेजा लेकर के दूसरी रूपसुंदरी को दे दोगे। तुम जैसे माँ के हत्यारे के साथ मैं शादी करने वाली नहीं। जब तुम माँ को प्रेम नहीं कर सके, तो तुम मुझसे प्रेम क्या करोगे? जो बेटा अपनी माँ से प्रेम नहीं करता, जो बेटा अपनी भाई–बहिन से प्रेम नहीं करता, जो अपने पिता से प्रेम नहीं करता, वह क्या पत्नी से प्रेम करेगा?

उस बेटे को उसी समय ज्यों ही उस रूपसुंदरी ने, प्रेयसी ने, इतना डाँटा कि उसका प्यार का बुखार उतर करके जीरो डिग्री पर आ गया। वह लौटता है, दौड़ता है, हो सकता है यह कलेजा माँ के पास फिर से रख देगें, तो माँ जीवित हो जाये। अमावस की रात थी, घोर अंधेरा था रास्ते में एक चोट लगती है, पत्थर की और बेटा गिर पड़ता है। कलेजे से आवाज निकलती है, बेटा कहीं चोट तो नहीं लगी, बेटे कहीं चोट तो नहीं लगी।

धन्य है वह माँ का प्रेम। माँ का प्रेम तो मरने के बाद भी, जीवित हो गया। लेकिन धिक्कार है उस बेटे के लिए, जिसने मोहब्बत में पागल हो करके, जिसने वासना का जहर खाकर के, अपनी माँ के प्राण ले लिये। आज व्यक्ति अधिकांश आप सुनते हैं हर जगह, कि जहर खा के मैं मर जाऊँगा।

यह बात सत्य है कि आज का व्यक्ति प्रेम नहीं करता। प्रेम शिवजी ने किया था, तो उनके जहर पीने के बाद भी, जहर अमृत हो गया। मीरा का प्रेम था, जहर अमृत हो गया। वह मेरी नहीं। लेकिन आज जितने व्यक्ति जहर खाते हैं, क्योंकि वे प्रेम नहीं करते है। मात्र उनके अंदर रूप को देखकर प्रेम होता है। लेकिन सच्चा प्रेम दिखाना बहुत कठिन होता है। इतना आसान नहीं होता है। प्रेम का पाना या प्रेम को दिखा पाना मुश्किल है। प्रेम जो है वह आत्मा की अनुभूति है। प्रेम, यदि कोई कह भी दे, कि मैं तुझसे प्रेम करता हूँ, तो समझ लेना कि वह प्रेम करता ही नहीं। तुम तो इतना समझ जाते हो, किसी ने कह दिया, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। किसी ने अंग्रेजी में बोल दिया तो तुम समझ जाते हो, वो तुमसे प्रेम करता है। इतने मात्र से तुम प्रेम की परिभाषा नहीं मानना। आजकल तो मात्र जरा सा एक शब्द जो किसी ने बोल दिया I Love You इतने में तुम समझ जाते हो कि वह तुमसे प्रेम करता है। लेकिन ये हकीकत नहीं है। प्रेम वचनों का विषय नहीं है। प्रेम कथन का विषय नहीं है। प्रेम वचनों में प्रकट हो ही नहीं सकता। जो प्रकट हो रहा है, वह हकीकत में सही नहीं।

यदि कोई तुमसे कहता है, यदि पति पत्नी से कहता है, यदि कोई लड़का किसी लड़की से कहता है, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। तो समझ लेना कि वो प्रेम करता ही नहीं है। प्रेम को कहा नहीं जा सकता, प्रेम को बोला नहीं जा सकता, प्रेम को सुना नहीं जा सकता, प्रेम को देखा नहीं जा सकता।

सच्चा प्रेम कैसे करें ? आपको उस हकीकत तक लेके जाना है। तो कम से कम इसको पहले जान लो, कैसा है ? कहीं तुम झूठे प्रेम में तो नहीं फंस गये ? कहीं तुम झूठे प्यार के झांसे में फंसकर अपने जीवन को बर्बाद तो नहीं करने जा रहे हो ? इसलिए मैं आपको उस हकीकत तक लेके जा रहा हूँ। तो कम से कम इसको पहले जान लो कि तुम किसके पद चिन्हों से गुजर करके चले हो।

प्यारे बंधुओं, प्रेम कथन का विषय नहीं है, प्रेम अनुभूति का विषय है Love is the art of the hearts अर्थात् प्रेम दो हृदयों की कला का नाम है प्रेम। दो हृदयों के एक होने का नाम प्रेम हैं। दो शरीरों के मिलने का नाम प्रेम नहीं है। यदि तुम शरीरों के मिलने का नाम प्रेम जानते हो, तो ये तुम्हारी मूर्खता है। यदि तुम किसी के शरीर से शरीर मिलाकर के प्रेम करना चाहते हो, तो ये तुम्हारी सबसे बड़ी अज्ञानता है। ये तुम्हारा प्रेम नहीं है भरा हुआ वासना का जहर है। उस प्रेम के अंदर प्रेम नहीं है, तुम्हारा वह प्रेम नहीं कोई कांच का फ्रेम हो सकता है।

भैया, ये हकीकत जान लो, प्रेम आँखों का विषय नहीं है। तुम आँखों से प्रेम दिखाना चाहते हो, आँखों में प्रेम नहीं है। आँखों में हो सकताक है, तुम्हारी वासनाओं का जहर, तुम्हारी रूप शक्ति का जहर। ना जाने आँखों में तुम क्या देखोगे ? लेकिन आँखें तुम्हारी हकीकत में प्रेम को नहीं देख पाती है। प्रेम को पहचाना नहीं जा सकता है। प्रेम बहुत कठिन होता है।

प्रेम तो हृदय का विषय है। लेकिन आज यदि कहीं पर तुम दिल का चित्र देखते हो, तो वह बात सत्य है। किसने दिल का चित्र देखा ? बिल्कुल पोला दिखाई पड़ता है ? उसके अंदर कुछ नहीं है। क्योंकि आज के व्यक्ति का दिल खोखला हो चुका है। उसके दिल में प्रेम रहा ही नहीं है। इसलिए चित्र भी कैसा दिखातें है पूरा खाली। उस दिल में कुछ है ही नहीं, किसी के लिए स्थान ही नहीं है और व्यक्ति को यदि एक तीर लगता है तो व्यक्ति मर जाता है। उस दिल में भी एक तीर लगा है यानि व्यक्ति मर चुका है। उसके अंदर से प्रेम मर चुका है, उसके अंदर से दया मर चुकी है, उसके अंदर से करूणा मर चुकी है।

ऐसा आज का व्यक्ति है। दिल में प्रेम कहाँ रह गया ? इसलिए मैं आपके लिए कहना चाहता हूँ प्रेम की तह तक पहुँचों, प्रेम की सतह तक पहुँचों, मात्र ऊपरी सतह पर चांदी का वर्क चढ़ा है। ऊपर की सतह देखकर मत फिसलो तुम। क्योंकि चाँदी का वर्क चढ़ा है। किसी रूपसी के रूप सौंदर्य को देखकर के उससे मोहित मत हो जाना। यदि तुम मोहित हो जाओगे तो तुम परमात्मा से प्रेम नही कर पाओगे।

मैं कहता हूँ– प्रेम पूजा है, प्रेम भक्ति है, प्रेम आस्था है, प्रेम विश्वास है, समर्पण है। परमात्मा की स्तुति का नाम है, प्रेम। परमात्मा के गुणों के कीर्तन का नाम है प्रेम। परमात्मा के भजन का नाम है प्रेम, परमात्मा की प्रार्थना का नाम है प्रेम। लेकिन आज वह प्रेम इतना बदनाम क्यों हो चुका, आज वह प्रेम इतना बदनाम क्यों होता जा रहा है?

प्रेम जैसे महान शब्द के लिए, जिस प्रेम के अंदर परमात्मा को पाने की कला थी। जिस प्रेम के अंदर परमात्मा को रिझाने की कला थी। जिस प्रेम के अंदर परमात्मा को प्रसन्न करने की कला थी। जो प्रेम अंदर स्वर्ग और मोक्ष को जानने का रास्ता बनाने का पथ था। आज वही प्रेम दर–दर ठोकरें खाते फिर रहा है।

आप समझ लीजिए प्रेम आत्मा का विषय है। तुम्हें आत्मा तो दिखती नहीं है। **''यन् मया दृश्यते रूपम् तन्नजानाति सर्वथा।''** जो तुम्हें दिख रहा है वो प्रेम करने का विषय ही नहीं है। जिसे तुम देख करके प्रेम कर रहे हो, वो तो प्रेम का विषय है ही नहीं। यदि तुम तन को देख रहे हो, ये तन मिट्टी का है।

प्रेम करना है तो कभी उस जल से प्रेम करो, जिसने तुम्हें जीवन दिया। उस मिट्टी से प्रेम करो जिस मिट्टी पर तुम पैदा हुए। उस अग्नि से प्रेम करो, जो तुम्हारे शीत का निवारण करती है। उन वृक्षों से प्रेम करो। कभी तुमने अपने प्रेम में किसी पौधे को जीवन दान दिया? तुमने किनेस प्रेम किया? तुमने प्रेम नहीं किया, प्रेम के नाम पर झूठी मोहर लगाकर दी है। तुम बहुत बड़े प्रेमी हो, अरे प्रेमी तो उसे कहते है–

मोक्ष के प्रेमी को हमने कर्मों से लड़ते देखा।

यदि तुम्हें प्रेम है परमात्मा से, तो तुम साधना के क्षेत्र में उतर जाओ। तुमको यदि राष्ट्र से प्रेम है, तो तुम जाकर के कारगिल की घाटी पर खड़े हो जाओ, के बॉर्डर पर देखो, कि प्रेम क्या होता है? तुमको मालूम चल जाएगा, जब सामने से शत्रु सेना की गोलियाँ, तुम्हारे सामने आएँगी। तब तुमको प्रेम की परिभाषा मालूम चलेगी। प्रेम क्या होता है? घर में बैठकर के चार दिवारी के अंदर बैठ करके प्रेम करना, कोई प्रेम नहीं कहलाता। सच्चा प्रेम तो वह है जिस प्रेम में परमात्मा की उपासना होती है। जिस प्रेम में परमात्मा की आराधना होती है। संसार की सबसे ज्यादा गंदगी यदि किसी में होती है तो मात्र इस मिट्टी के चोले में होती है।

एक सम्राट को एक लड़की से मोहब्बत हो गयी। वह लड़की के पास गया बोला, ''मैं तुमसे मोहब्बत करता हूँ।'' लड़की ने कहा– ''मैं तुमसे तीन दिन बाद मिलूँगी।'' सम्राट बहुत

प्रसन्न हो गया सारे शरीर का रक्त निकाल करके दान दे दिया। उसके अस्थि पंजर एक हो गये। सम्राट तीन दिन बाद आता है, उस लड़की की शक्ल को देखने से पहले ही बाहर चला जाता है। सही तरह से शक्ल भी नहीं देखी।

इसका मतलब तुम मन से प्रेम नहीं करते, तुम उसकी चेतना से प्रेम नहीं करते, तुम उसकी आत्मा से प्रेम नहीं करते, तुम प्रेम तन से करते हो। जब तक उसका तन स्वस्थ है, अच्छा है। चाहे वो लड़का हो या लड़की हो, चाहे पति हो या पत्नी हो मात्र तन से प्रेम रह गया। वह प्रेम, नहीं है जो तन से होता है। प्रेम मन से होता है। प्रेम तो वह है जो चेतना की गहराई से होता है लेकिन चेतना की गहराई में प्रेम रह ही कहाँ गया। दिल तो खोखला हो गया। उसमें प्रेमी सच्चा प्रेम कैसे करें? सच्चा प्रेम सीखना है?

स्वर्गों में चर्चा चल रही थी। जो प्रेम मध्यलोक में एक माँ करती है वह प्रेम स्वर्ग की हजारों अप्सराएँ मिल करके अपने पति को नहीं दे पाती। जो प्रेम मध्यलोक में है वह स्वर्गों में नहीं। एक देव के लिए प्रशंसा सहन करना बहुत बड़ी बात है।

प्रिय बंधुओं! वह देव परीक्षा के लिए चला आता है मध्यलोक में। देखता है, एक जंगल मं एक गाय है। गाय के सामने वह शेर बनकर खड़ा हो जाता है। ''मैं तुमको खाऊँगा।'' गाय कहती है तुमको मुझे खाना है। आप मुझे खा लेना लेकिन आप मेरे साथ मेरे बेटे के प्राण मत लो। आपका बेटा कहाँ है? मेरा बेटा घर पर है। तो आपके प्राण लेने पर बेटे के प्राण कैसे चले जाएँगे? बेटे का जन्म कुछ दिन पहले हुआ, मैं जब सुबह आयी थी, तो बेटे से कहके आयी थी, कि मैं तुमको दूध पिलाने वापिस आऊँगी।

यदि मैं शाम को नहीं पहुँची तो मेरा बेटा भूख से मर जाएगा। माँ पर कलंक लग जाएगा। माँ का प्रेम कलंकित हो जाएगा, मातृ प्रेम कलंकित हो जाएगा। इस संसार में सबसे ज्यादा प्रेम माँ का होता है। तो संसार में सारी दुनियाँ मुझे कोसेगी, धिक्कारेगी, कहेगी-एक ऐसी माँ हुई, जिसका बेटा भूख से मर गया है। अब तक माँ के रहते हुए किसी का बेटा भूखा नहीं मरा। वह शेर कहता है- मैं जानता हूँ कि प्राणी लाख बहाने, उपाय खोजता है। लेकिन मैं तुमको नहीं छोड़ूँगा। वह गाय कहती है- हे मृगेन्द्र मैं पशु नहीं हूँ, मैं जानवर नहीं हूँ, मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं माता बोल रही हूँ। माता पर तो सारी दुनिया विश्वास करती है। जन्म के दिन का बालक भी माँ के ऊपर विश्वास करता है। शेर कहता है- अच्छा तुम जाओ, लेकिन वादा करके जाओ, कि तुम कितने समय बाद आओगी? वो कहती है दो घण्टे बाद मैं इस स्थान पर पुनः आ जाऊँगी।

वह माँ जाती है। बछड़े को बड़े प्रेम से साथ, बड़े दुलार के साथ दूध पिलाती है। बड़ा स्नेह देती है, पुचकारती है, दुलारती है, संभालती है। आज बछड़ा देख रहा है, माँ कितना अच्छा प्रेम दे रही है। वह बुहत प्रसन्न है। लेकिन कुछ ही समय बाद माँ जंगल की ओर जाने लगी बेटा बोला– ''माँ कहाँ जा रही हो ? कहाँ जा रही हो माँ ? माँ कोई उत्तर नहीं देती। आखिर वह देखते ही माँ की ओर मुड़ जाता है। संतान माँ की आज्ञाकारी होती है। लेकिन कुछ आज्ञा भी तो नहीं। संतान माँ के पद चिन्हों पर चलती है। वह बछड़ा भी माँ के पीछे–पीछे चल देता है। चलते–चलते पहुँच जाता है जंगल की ओर। और देखता है– गाय जहाँ पहुँच रही है सामने शेर खड़ा है। बछड़ा दौड़ लगाता है और गाय के आगे चल करके शेर के सामने खड़ा हो जाता है। कहता है सिंहराज तुमने ही मेरी माँ को बुलाया होगा।

सिंहराज – जरूर मैंने ही बुलाया है मैं भूखा हूँ।

बछड़ा – तुम भूखे हो पर याद रखो, मेरी माँ पर आक्रमण करने के पहले तुम मुझे अपना ग्रास बनाना।

तब माँ बछड़े को अपने सींग से अलग करती है, कहती है – नहीं मृगराज माँ के रहते संतान के प्राण नहीं जा सकते हैं। माँ जीवित रहे और संतान मरण को प्राप्त हो जाए, यह कभी नहीं हो सकता है और वह गाय आगे आ जाती है।

तब तक बेटा माँ के चरणों के बीच में से होकर आगे आ जाता है। नहीं, नहीं मृगराज वहीं संतान है, जो अपने स्वयं जीवित रहते माता–पिता की सेवा करती है और मैं माँ का पुत्र हूँ, मरे रहते हुए सिंहराज तुम मेरी माँ को नहीं खा सकते हो।

सिंहराज देखता है, बेटा फिर आगे आ गया। माँ फिर कहती है– हे वनराज !हे मृगराज !हे मृगेन्द्र !दया करो, कृपा करो। तुम मेरे बेटे को मत खाना। खाना है तो मैं तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। छोटे से बेटे को खाकर तुम्हारा पेट क्या भरेगा खाना है तो मुझको खाओ।

वह गाय का बछड़ा कहता है– मृगेन्द्र क्या तुमने कभी ये नहीं देखा, कि रोटी के आखिर ग्रास करने ही पड़ते हैं। इसलिए सबसे पहले जो ग्रास का टुकड़ा है, उसे ही खा लो तो अच्छा रहेगा। जो ग्रास का टुकड़ा सामने है उसे खालो। मैं छोटा हूँ पहले मुझे खाओ, जब तुम्हारी भूख ना मिटे तो तुम सारी दुनिया में कहीं भी खोज लेना। लेकिन मेरे रहते तुम मेरी माँ पर आक्रमण नहीं कर पाओगे।

वह शरे देखता है कभी माँ आगे, कभी बछड़ा आगे, शेर परेशान हो गया। खाँऊ तो किसे खाँऊ ? वह वनराज कोई और नहीं था, वह तो देव, शेर के रूप में बनके आया था माँ की परीक्षा करने। शेर वह स्वर्ग का देव था। देव अपने सही रूप में आ जाता है, कहता है– धन्य है, इस मध्यलोक में माँ का प्रेम, जो माँ अपने बेटे के लिए प्राण न्यौंछावर करने के लिए तैयार है। धन्य है, वह गाय का बछड़ा। हे बेटे! मैं तुम्हारे लिए आशीष देता हूँ तुम सदा जीवित रहो। ऐसा प्रेम होता है, कि जहाँ पर माँ अपने प्राण न्यौंछावर करने के लिए तैयार होती है और बेटा अपने प्राण न्यौंछावर करने तैयार है।

यह है प्रेम की परिभाषा, प्रेम परमात्मा से करो, स्वामी पूज्यपाद आचार्य ने कहा– **''पूज्येषु गुणानुरागो भक्ति।''**

परमात्मा के गुणों में प्रेम होना भक्ति है। परमात्मा के गुणों में प्रेम होना आराधना है, परमात्मा के गुणों में प्रेम होना पूजा है। लेकिन हमारी पूजा गुणों को देखकर नहीं होती है, हम तन को देखकर पूजा करना चाहते हैं। हम तन को देख करके प्रेम करना चाहते हैं। याद रखना यदि तुम तन को देखकर के मुझे चाहो, तो समझ लेना तुम मुझे चाह हीं रहे हो। कभी तन को देख करके अपना शीश मत झुकाओ। चेतना को देखो, अंतरंग को देखो, अंतरंग को देखो, बहिरंग को मत देखो।

यदि तो अंतर है कि तुम कूप को देखते हो, हम जल को देखते हैं, तुम रूप देखते हो, हम स्वरूप देखते हैं। यही तो अंतद है हम में और तुम में। तुम लोग मात्र रूप को देख करके मोहित होते हो। लेकिन हम लोग आपकी अंतर आत्मा को देखते हैं, कि आपकी अंतर आत्मा क्या है? तभी तो आपसे कहा था, शक्तिरूप परमात्मा चाहे कोई महिला हो, चाहे कोई पुरुष हो उसके अंदर परमात्मा मौजूद है।

एक सज्जन ने प्रश्न किया ''आप छोटी उम्र में मुनि बन गये, क्या आपका मन निर्मल बना रहता है?'' मैंने कहा सुनो, सीता का अपहरण रावण ने कर लिया। वह सीता को लेकर अशोक वाटिका में पहुँच गया। पहुँचने के बाद भी चाहतार है, सीता मेरे वश में हो जाएँ, चाहता है सीता मुझे चाहते लगे। लेकिन सीता एक पतिव्रता स्त्री थी। सीता प्राण दे सकती थी लेकिन राम को छोड़कर अपना जीवन और किसी को नहीं दे सकती थी। जब तक राम का समाचार नहीं मिला, सीता ने नौ दिन तक भोजन नहीं किया। जब तक मुझे राम का संदेश नहीं मिलेगा, तब तक मैं भोजन नहीं करूँगी और शायद ना जाने, आजकल की कोई महिला होती, तो सोचती उनके लिए बाद में तलाक लिख देंगे, चलो आज इनके साथ रह लो। ऐसा हो सकता है, इसलिए आज प्रेम नहीं रहा।

रावण देखता है सीता नौ दिन से भोजन नहीं कर रही है। रावण विभीषण के पास जाता है। कहता है- ''मैं बहुत परेशान हूँ। सीता मेरे वश में नहीं हो रही, सीता मुझे चाह नहीं रही है। सीता ने नौ दिन से भोजन नहीं किया। काश यदि सीता के प्राण निकल गये, तो इस लंकेश को एक स्त्री हत्या का पाप लगेगा।''

विभीषण बोला ''अरे भाई रावण! तुम भी कितने मूर्ख हो, तुम्हारे पास तो बहुरूपनी विद्या है। तुम क्यों नहीं उस विद्या से राम का रूप बनाकर सीता के सामने चले गए जिससे सीता तुम्हें चाहने लगती।''

रावण भले ही पापी था। लेकिन रावण कहता है- विभीषण तुम तो मुझसे बड़े मूर्ख निकले। क्योंकि, जब-जब मैं राम का रूप बनाता हूँ। राम के वश में आता हूँ, उसी समय सीता मुझे माता के समान नजर आती है। मातृ दृष्टि खुल जाती है।

तभी तो, चाहे कोई बालिका हो, चाहे कोई बेटी हो, उसके अंदर परमात्मा बैठा हुआ है। परमात्मार को देखो। तुम जैसे पुरूष के अंदर परमात्मा है, वैसे उसके अंदर भी परमात्मा है। जैसे आपके अंदर परमात्मा है, वैसे उसके अंदर परमात्मा है। उस परमात्मा शक्ति को पहचानो, उस परमात्मा को एक बार प्रणाम कर लो। उसके तरफ देखने से पहले, उसके अंदर बैठे हुए शक्तिरूप परमात्मा को स्मरण कर लो। तुम्हारे अंदर किसी स्त्री को देख करके गलत भाव पैदा नहीं होंगे। तुम्हारे अंदर किसी पुरूष को देख करके गलत भाव पैदा नहीं होंगे।

जैन धर्म कहता है शक्तिरूप से परमात्मा सबके अंदर विराजमान है। तुम किसी को गलत नजरों से नहीं देख पाओगे। यदि ये चिंतनप तुम्हारे अंदर पैदा हो जाए और हकीकत में प्रेम यही है, कि शक्तिरूप परमात्मा से प्रेम करो। सोचो-किसके अंदर परमात्मा नहीं है। तुमने किस-किसको कब-कब अपना नहीं बनाया।

वह कौन है जिसको मैंने अपनाया नहीं।

वह कौन है जिसने मुझे दफनाया नहीं।।

संसार में तुमने सबको अपना लिया है और संसार में सबने तुम्हें दफना दिया है लेकिन फिर भी आज तक तुमने प्रेम को जाना नहीं। यदि तुम्हारा प्रेम एक बार परमात्मा से हो जाता तो तुम्हारा कल्याण हो जाता।

एक बार तुलसीदास, प्रेम में इतने पागल हो गए कि शादी होने के बाद तुलसीदास सुसराल पहुँचे। जब ससुराल पहुँचे तो दरवाजा बंद था, रात का समय था। वहाँ पर से देखा एक छोटी सी

दीवाल है। उस पर एक साँप लटक रहा है। वे साँप को पकड़ करके चढ़ जाते हैं। दीवाल पार करते हैं। स्त्री जाग जाती है, देखती है। तुम रात्रि में कहाँ से आए? बोले- ''तुम्हारे बिना मुझको नींद नहीं आ रही थी'' और तुमने भी खिड़की से रस्सी लटका के रखी थी। सो मैं उसी के सहारे तुमसे मिलने चला आया। इतना सुनते ही पत्नी कहती है- मैंने कोई रस्सी नहीं डाली जाकर खिड़की पर देखती है, वहाँ पर साँप कुंडली लगाये लटक रहा है। उसीको रस्सी समझकर तुलसीदास पत्नी के पास पहुँचे थे। तब वह कहती है- ''तुलसीदास, जितना प्रेम तुम मुझसे करते हो उतना प्रेम जिस दिन परमात्मार से कर लोगे, उसी दिन तुलसीदास नहीं, तुम भी परमात्मा बन जाओगे।''

जितना प्रेम जितनी मोहब्बत तुम किसी स्त्री से करते हो, यदि वो हकीकत एक परमात्मा से करने लग जाओ तो शायद उसी दिन तुम्हें वह प्रेम परमात्मार बना देगा।

प्यारे बंधुओ! अपने आपको पहचान करके परमात्मा से प्रेम करना सीखो। आपको मालूम है विष्णु मुनिराज ने किस तरह से प्रेम किया था। किस तरह से प्रेम दिया था। अपने धर्म की रक्षा के लिए, मुनियों की रक्षा के लिये, सब कुछ छोड़ करके, उन सात सौ मुनियों की रक्षार्थ मुनि पद छोड़कर के उन मुनियों का उपसर्ग दूर किया। प्रेम है इसका नाम। वात्सल्य का नाम प्रेम है। लेकिन आपमें कहाँ है ऐसा वात्सल्य? वात्सल्य तो हृदयों की कला का नाम है।

प्यारे बंधुओं! प्रेम ऐसा करो कि प्रेम आपकी पूजा बन जाए, प्रेम आपकी भक्ति बन जाए। इसलिए प्रेम को शरीरों से नहीं मन से जोड़ों सारे प्रवचन का सारांश यही है, कि दो शरीरों के मिलने का नाम प्रेम नहीं है, दो हृदयों के मिलने का नाम प्रेम है।

गुरु, शिष्य से कितनी ही दूर रहे, भक्त, भगवान से कितनी ही दूरी रहे लेकिन ऐ प्रेम होता है कि भक्त जब स्मरण करता है, तो भगवान उसे दिखाई पड़ता है। हनुमान के पास प्रेम था, तो राम उनके हृदय में दिखाई दे गये। हनुमान ने हृदय चीरकर के दिखा दिया कि मेरे राम मेरे अंदर हैं। प्रेम जहाँ होता है, वहाँ परमात्मा प्रकट हो जाता है। इसलिए अपने प्रेम को ऐसा बनाओ, कि तुम परमात्मा के प्रेम में यदि तुम जहर भी पिओगे, तो वह जहर भी अमृत बन जाएगा।

धनंजय कवि के पुत्र को सर्प ने काट खाया लेकिन धनंजय कवि का परमात्मा से प्रेम बेटे के लिए अमृत बन गया। मानतुंग के लिए बेडियाँ डालकर जेल में बंद कर दिया। लेकिन मानतुंग का प्रेम अड़तालीस तालों को तोड़ने वाला हो गया। यह कहलाता है प्रेम।

प्रिय बंधुओं! विश्व की सबसे बड़ी ताकत प्रेम में हुआ करती है। इसलिए मैं आपसे बार-बार कहता हूँ, कि जो परिभाषा दी है Love is the art os the hearts प्रेम दो हृदयों की कला का नाम है। दो शरीरों के मिलन का नाम प्रेम नहीं है।

अब तक आपको यही मालूम था कि दो गुलाबों के मिलने का नाम प्रेम है। दो कलियों के मिलने का नाम प्रेम है। लेकिन इनका प्रेम नहीं है। प्रेम तो अंतरंग की अनुभूतियाँ है। प्रेम तो असीम होता है। प्रेम आकंठ होता है। प्रेम अनिवर्चनीय होता है, ऐसा अनंत शक्ति की ओर ले जाने वाला, उस परमात्मा से मिलाने वाला है। वह प्रेम यदि आपके अंदर प्रकट हो, तो धर्म, प्रेम करना सीखें, आप राष्ट्र प्रेम करना सीखें, आप देशप्रेम करना सीखें, आप संत प्रेम करना सीखें, आप अरिहंत प्रेम करना सीखें, आप भगवंत प्रेम करना सीखें। जिस दिन आपके अंदर भगवान के प्रति प्रेम जागृत हो जाएगा, ईश्वर के प्रति प्रेम जागृत होगा। तो उस दिन आपका प्रेम आपको उठाने वाला बन जाएगा। प्रेम ऊर्ध्वगामी होता है। जब प्रेम के अंदर हकीकत होती है तो प्रेम ऊर्ध्वगामी बनता है। लालटेन की ज्योति ऊपर की ओर जाती है और यदि लालटेन के अंदर नीचे छेद हो जाए तो पूरा तेल नीचे गिर जाता है।

उसी तरह यदि प्रेम तुम्हारा सच्चा होगा तो वह तुम्हें दीपक की लौ की भांति तुम्हें ऊपर उठा देगा और जुड़ जाओगे। तुम आत्मा से प्रेम करना सीखो, महात्मा से प्रेम करना सीखो, माँ से, परमात्मा से प्रेम करो। तुम्हारा प्रेम तुम्हारे लिए परमात्मा बना देगा। अपने प्रेम को शरीर से न जोड़े। अपने प्रेम को आत्मा से जोड़े। यही मंगल भावना के साथ आप सभी का प्रेम आपको परमात्मा से मिलाए।

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

दुर्लभ गुरु दर्शन मिलन

प्रिय आत्मन्!

तीर्थंकर महावीर प्रभु की मंगलमयी दिव्य-देशना जीवतत्त्व प्रबोधिनी, अजीवतत्त्व विवेचिनी, सव्रास्रव-निरोधिनी, कर्मबंधविमोचिनी, संवरपदप्रदायिनी, निर्जरानिर्झरणी, मोक्षमहलध ाारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याणकारिणी, सर्वसुखसारणी, महामंगलकारणी है। यह दिव्य देशना परम पूज्य गुरु अरिहंत देव से नि:श्रित हुई। क्यों नि:श्रित हुई?

भगवान् कुंद-कुंद देव कहते हैं- यह दिव्य देशना त्रिभुवन हित कारणी है। जो सौ इन्द्रों से वंदनीय हैं, जिनके वचन मधुर हैं, निर्मल हैं, प्रत्यक्ष परोक्ष कल्याणकारी हैं। ऐसे जिनेन्द्र भगवान के वचन प्राणीमात्र के कल्याण, संवाहक, शुद्ध भावों के संस्थापक उच्चरित हुए।

प्रिय आत्मन्!

संसार के जितने प्राणी हैं सभी मंगल चाहते हैं, आनंद चाहते हैं, सुख, शांति, कुशल, शुभ, लाभ यह सब चाहते हैं। तो मंगल के लिए ''सर्व सुखाय सर्व हिताय'' तीर्थंकर महावीर स्वामी की दिव्य-देशना खिरी महावीर स्वामी जानते थे कि प्राणी मंगल तो चाहते हैं, लेकिन मंगल की प्राप्ति बोध के बिना नहीं होती और बोध की प्राप्ति हमें संसारी गुरु से नहीं होगी। इन्द्रभूति गौतम ने जाना कि अभी तक मेरा जितना बोध था, वह सम्यक् नहीं था आज मुझे महावीर के दर्शन पाकर सम्यक् बोध हुआ है। बोध की प्राप्ति परम निर्ग्रन्थ गुरु, अरिहंत गुरु, के पास होती है। मंगल की प्राप्ति बोध ा से होती है और बोध की प्राप्ति सद्‌गुरु से होती है। पर, मैं मंगल को आया मंगल देने के लिए, मंगल करने के लिए आया। अब मंगल कैसे हो, इसीलिए कल बोध आके प्रदान करेंगे।

बोध के विषय में बताया बोध कितना दुर्लभ है, बोध की प्राप्ति कहाँ से होगी? बोध की प्राप्ति के मूल स्त्रोत हैं गुरु। क्योंकि गुरु के बिना जितनी भी विद्या पाई जाए, वह आपके लिए कल्याणकारी नहीं होगी। बोध की प्राप्ति के मूल स्त्रोत हैं परमगुरु अरिहंत देव। उनकी परम्परा से प्रवाहित उस दिव्य-देशना को हृदय में धारण करने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु ये हमारे निर्ग्रन्थ

गुरु हैं। जो राग द्वेष से रहित वीतराग भाव, ग्रंथों का सार, मंथन, नवनीत प्रदान करते हैं। आचार्य पूज्यपाद देव कहते हैं –

गुरूपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरांतरम्।

जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरंतरम्।।33 इष्टोपदेश।।

गुरु के उपदेश से, श्रुत के अभ्यास से, निरन्तरता, नियमितता से संवित्ति होती है। स्वसंवित्ति, स्वसंवेदन जब हम प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर बढ़ते हैं, स्व संवित्ति में प्रवेश पाते हैं। कब? जब प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर बढ़ते हैं तब। आवेदन में संलग्न जीव स्वसंवेदन को प्राप्त नहीं कर पाता। स्वसंवेदन के लिए आवेदन, निवेदन, प्रतिवेदन और असातावेदन इन सब को भूलकर के आत्म संवेदन में जुड़ना पड़ता है, तब स्वसंवेदन होता है।

जीवन का मूल लक्ष्य आत्मा को परमात्मा बनाना है। अपनी शुद्ध अनंत शक्तियों को पहचानना है। वह पहचान मात्र गुरु से होती है। प्रभु की पूजा हम प्रभु के लिए नहीं करते हैं गुरु की पूजा हम गुरु के लिए नहीं करते, तीर्थों की वंदना, तीर्थों के लिए नहीं करते हैं। अपितु प्रभु की वंदना, पूजा स्वयं की प्रभुता को पहचानने के लिए, गुरु की पूजा स्वयं के गुण, गौरव को पहचानने के लिए, तीर्थों की वंदना स्वयं को तीर्थमय बनाने के लिए की जाती हैं।

मानव जीवन की एक उपलब्धि है, गुरु। नरक पर्याय में कोई गुरु नहीं होता है, देव पर्याय में कोई गुरु नहीं होता। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो गुरु बना सकता है। जो प्राणी गुरु बना सकता है वही प्रभु को पा सकता है। जिस काल में गुरु नहीं है उस काल में आचार–विचार नहीं है। जिस क्षेत्र, जिस देश में गुरु न पाए जाएँ, उस क्षेत्र में आचार–विचार नहीं पाए जाते हैं। भोगभूमियों में गुरु नहीं पाए जाते, अणुव्रत, महाव्रत नहीं पाये जाते, देवों में सब सुविधाएँ हो सकती हैं, सब साधन हो सकते हैं। साधना नहीं होती है क्योंकि गुरु के बिना साधना का मार्ग दिखाने वाला कोई नहीं हो सकता।

मनुष्य जीवन में साधन कम हो सकते हैं पर साधना है। स्वर्गों में साधन हैं, पर साधना नहीं है। दोनों में आपको तय करना है कि साधन चाहिए, कि साधना। आपकी एक पल की साधना को पाने के लिए स्वर्ग के देवता सम्पूर्ण के वैभव को अर्पित करने के लिए तैयार हैं। हे मानव! मात्र एक पल के लिए मनुष्य पर्याय दे दे और बदले में सम्पूर्ण वैभव मुझसे ले ले।

प्रिय आत्मन्!

याद रखना कि जो कार्य जो फल, आप अन्य गति में आसानी से पा सकते हैं वह कार्य वह

फल आपको यहाँ पर नहीं पाना है। मानव जीवन का एक उद्देश्य है। जो कार्य मैंने आसानी से तिर्यच गति में कर लिए, देवगति में आसानी से हो सकते हैं, नरकगति में करके आए हो वह कार्य मुझे मनुष्य गति में नहीं करना, जो कार्य तीन गति में नहीं हो सकते हैं जो कार्य आप स्वर्ग मिलने के बाद भी नहीं कर सकते हैं वह कार्य आपको मनुष्य गति में करना है, आप सोच लो मनुष्य गति में ऐसे कौन से कार्य हैं जो स्वर्ग में नहीं हो सकते हैं तिर्यच में नहीं सकते हैं।

मनुष्य गति की दुर्लभता मात्र चार कारणों से होती हैं। आप मनुष्य गति में आए हैं तो आपको चार कार्य करके जाना है। कितने कार्य- चार कार्य, आप जबलपुर के व्यापारीर हैं आप सूरत गए, इन्दौर गए, कलकत्ता, बम्बई गए, किसी भी सिटी गए और आपको चार कार्य सौंपे गए, आपको चार कार्य करना है, ये सामग्री जबलपुर में नहीं मिलती है, तो आप वहाँ से खरीद कर लाना। आपको ये चार सामग्री खरीदकर लाना है यदि वहाँ से खरीद पाऐं, तब तो दुकान फायदे में है और वहाँ पर जो माल यहीं से पैक होता है और वहाँ जाकर वहीं के लोग खरीद के ले जाते हैं, यदि तुम भी वहाँ से वो ही सामग्री खरीद कर ले आए, तो घाटा लगेगा। यही बात मैं कह रहा हूँ जो कार्य तिर्यच गति, नरक गति, देवगति में होते हैं वो कार्य नहीं करना है जो कार्य नहीं होते वो कार्य यहाँ पर होते हैं।

मणुव गइए वि तवो, मणुव गइए महव्वदं सयलं।

मणुव गइए झाणं, मणुव गइए होइ णिव्वाणं।।

1. तप 2. महाव्रत 3. ध्यान 4. णिर्वाण

सबसे पहले मनुष्य गति में तप होता है। अन्य कहीं होता है? नहीं होता। संयम महाव्रत। ''पहला तप, दूसरा महाव्रत, तीसरा ध्यान चौथा निर्वाण'' ये चार महान कार्य हैं जिनको करने के लिए आपको मनुष्य गति में भेजा गया है। आप बाजार जाते हैं और बता दिया जाए कि चार वस्तुएँ लाना है। एक-एक-गिन-गिन करके लाते हैं, चुन-चुन कर लाते हैं। आपके लिए मनुष्य लोक में भेजा है, आप जाना मनुष्य गति। क्योंकि ये कहीं और नहीं मिलेगा। सब कुछ मिल जाएगा, मकान कितनी मंजिल बनवाओगे, स्वर्गो में इससे अच्छा घर मिल जाएगा, मंदिर इससे अच्छा मिल जाएगा भवन, महल, कपड़े, आभूषण, सुख-साधन यहाँ गाड़ी, वहाँ विमान, यहाँ मकान वहाँ भवन यहाँ जो चाहते हैं उससे कई गुना सामग्री वहाँ मिल जाएगी, लेकिन मुक्ति का मार्ग मनुष्य की गति में ही मिलेगा।

प्रिय आत्मन!

इसमें क्यों लगते हो, इन तुच्छ फलों में क्यों लगते हो। जो चीज तुम्हें यहाँ से अच्छी मिलने वाली है, तो तुम उसमें क्यों जुटे हो? यदि तुम सम्यग्दृष्टि हो तो नियम से स्वर्ग मिलेगा, स्वर्गो में जाओगे तो सहज में सब कुछ मिलने वाला है। तो यहाँ क्यों लगे हो, ये मात्र 10, 15, 25 साल का जीवन यह निर्धारित करता है कि आपके आगे के 15 साल कैसे होंगे। क्यों? क्योंकि 8 वें स्वर्ग तक आप जा सकते हैं। प्रथम स्वर्ग सागरोपमधि से सत्रह सागर तक फाइनल हो रहा, आपका 20-25 साल जितनी अच्छी साधना कर ली, उतने सागर पर्यंत आप सुखी रह पाऐंगे मैंने पहली कक्षा में ''अ'' अक्षर को सीखा। वर्ष पाँच की आयु में सीखा अक्षर, अभी तक काम आ रहा है, आगे तक आएगा।

एक दिन का सीखा अक्षर आपके 50 साल, 100 साल तक काम आ सकता है। ध्यान रखना मनुष्य गति के 15 साल आपके 15 सागर तक काम आयेंगे। इसीलिए आप ध्यान रखना मनुष्य गति में जिसने वैराग्य, त्याग नहीं अपनाया वह किसी भी गति में चला जाए वहाँ सुख-शांति नहीं पा सकता।

प्रिय आत्मन्!

सुख आत्मा का गुण है, इसे पुद्‌गल से निचोड़ने की कोशिश मत करना। सुख आत्मा केआधीन है। जब-जब आत्मा के अधीनस्थ होंगे, तब-तब सुख मिलेगा। जब-जब पुद्‌गल के अध ीनस्थ होंगे, तो दु:ख मिलेगा। इतना निर्णय रखना, ये गुरु का उपदेश है, गुरु की आराधना का फल है,स यह गुरु सन्निधि का फल है कि तत्त्व को जान गए, मेरा सुख मेरे अधीन है। यदि दु:ख मिला है, तो मैंने पर बुद्धि की है और परबुद्धि का परिणाम दु:ख है। स्वबुद्धि में दु:ख नहीं, आत्मबुद्धि में दु:ख नहीं, परबुद्धि ने दु:ख दिया, परबुद्धि मेरी गलती है। मैं मानता हूँ, कि दूसरों की गलती हो सकती है, पर दूसरा व्यक्ति हजार गलती करके भी मुझे दु:ख नहीं दे सकता।

याद रखना - मैं मानता हूँ कि सामने वाले की हजार गलती हो सकती है, पर हजार गलती करके भी वह दूसरे मुझे दु:ख नहीं दे सकते जब तक कि मैं स्वयं गलत न सोचूँ, क्योंकि सामने हजार गलतियाँ होने पर भी आप अच्छा सोच रहे हो तो आपको सुख ही सुख नजर आयेगा। सुख की प्राप्ति कैसे हो ये गुरु की देशना से हमें प्राप्त होता है।

प्रिय आत्मन्!

त्रस पर्याय के दो हजार सागर के काल में 1260 सागर देव पर्याय के स्वर्गो में 740 सागर नरक में पूर्ण हो गये शेष दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय मनुष्य पर्याय को मिलता है

और अब मनुष्य पर्याय में तुमने कुछ कर लिया तो और नहीं कर लिया तो नहीं कर लिया। भैया आपको मैं एक उदाहरण देता हूँ – जब मिर्ची का सीजन आता है और जब मिर्ची बिकती है तो क्या होता है, जितनी मिर्ची एकत्रित होती है सब एकत्रित करके तौलकर बेच देते हैं लेकिन उसको बेचने के बाद उसमें कुछ बीज रह जाते हैं नीचे, तो वे क्या करते हैं? वे बीज एकत्रित कर लेते हैं, बीज नहीं बेचते। यदि मिर्ची का रेट 15 रुपया किलो, तो बीज का रेट 100 रुपया किलो हो जाता है, तो वे बीज-बीज इकट्ठा कर लेते हैं। उसे सामान्यत: ग्राहक नहीं लेता, उसको मिर्ची चाहिए। वह एकत्रित करने के बाद जब बरसात का समय आता है, बीज बोने का समय आता है, वह बीज अपने खेत में डाल देता है। मालूम चला कि उस बीज से जितनी मिर्ची बेची नहीं थी, उससे ज्यादा मिर्ची पैदा हो जाती है। इसी तरह प्रिय आत्मन्! यदि आपके लिए झारन-झूरन के बीज के रूप में कुछ आयु, कुछ मनुष्य भव मिल गए हैं तो उसको संयम की भूमि में बो दो और संयम की भूमि में यदि बो दिया गया, तो ये मानकर चलिए, कि तुम्हारे दो हजार सागर की आयु एक तरफ और दो दिन का संयम एक तरफ।

याद रखो, दो हजार सागर की आयु से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा लेकिन दो मुहूर्त के, दो दिन के संयम के पालने से तुम मोक्ष जा सकते हो। प्रिय आत्मन्! संयम का फल बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा महान है यह संयम। संयम मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाता है। धन्य है, जब कोई व्यक्ति संयम की ओर बढ़ता है तो चित्त प्रफुल्लित हो जाता है आज भी इस धरती पर ऐसे-ऐसे जीव जन्म लेते हैं। कि संयम पथ पर बढ़ जाते हैं और जब हम जैसे साधु देखते हैं कि श्रावकों में भी संयम की इतनी प्रबल भावना भरी हुई है, संयम के रस से भरे हुए हैं तो उन्हें वैराग्य पथ में लगा देते हैं। कैसे परिणाम जागते हैं। जानते हैं इस देह से अमृत निचोड़ना है, साधना का और जब तक यदि मति हमारी अधो रहेगी तो अधोपति होगी और मति उर्ध्व होती तो उर्ध्व गति होगी। दीपक यदि जलता है ऊपर लौ जाती है तो प्रकाश देता है यदि दीपक में छेद हो जाए तेल पूरा नीचे गिर जाता है, अंधकार में डूब जाता है। उसी तरह जीवन है यदि हम साधना करके ऊपर ले जाते हैं तो हमारे जीवन को, जन जीवन प्रकाशित कर देता है। यदि हम साधना नहीं करते अचरित्र में रहते हैं, तो फिर वह हमें डुबा देता है नरक के अंधकार में।

प्रिय आत्मन्!

गुरु की उपलब्धि इसीलिए है। ''देव से सम्यग्दर्शन, शास्त्र से सम्यग्ज्ञान और गुरु से सम्यग्चारित्र''। ये ऐसी अद्भूत चीजें हैं जहाँ शास्त्र में बताया है यदि चारित्र लेना हो, दीक्षा लेना हो तो भगवान् के पास नहीं जाना। जितने भी मुनिराजों ने दीक्षा लीं, घर का मंदिर छोड़कर वन में गए हैं गुरु महाराज के पास। क्योंकि चारित्र की उपलब्धि चारित्रवान के पास होगी। यदि भगवान् के

पास ले लिया और तुम्हें दोष लगे तो कौन–पूर्ण करेगा। यद्यपि आपके संकल्प होते हैं। कैसे होते है?

प्राण जाएँ पर गुरुवर मेरा, प्रण न जाएगा।
महावीर के महा मार्ग में, दोष न आएगा।।
दृढ़ संकल्पों का यह श्रीफल, अब स्वीकार करो।
मेरी दीक्षा गुरुवर तेरे, कर कमलों से हो।।
श्रद्धा भक्ति, विनय समर्पण, का इतना फल दो।
मेरी दीक्षा गुरुवर तेरे, कर कमलों से हो।।
चिन्तामणी सा दुर्लभ नरभव, कहीं न खो जाए।
कल्पद्रुम सा पावन जीवन, व्यर्थ नहीं जाए।।
ये विराग के फूल खिले हैं, रत्नत्रय फल दो।
मेरी दीक्षा गुरुवर तेरे, कर कमलों से हो।।

ऐसे मनोभावों में श्रवण बेलगोला में दीक्षा संपन्न हुई थी, उस दिन दीक्षा प्रार्थना मैंने लिख दी थी। उस समय भाव रखे थे जिस तरह ''समाधि भक्ति'' के 10 पद पूर्ण हुए उसी तरह ''दीक्षा भक्ति'' के पद पूर्ण हुए थे। दीक्षा भक्ति पूर्ण हुई थी।

प्रिय आत्मन्!

इस तरह के संयम के भाव जागृत होते रहते हैं, और संयम के भाव जब जागृत होते हैं, तो ये समझ कर चलिए कि वह मोक्ष के आँगन में आ गया। कहाँ? मोक्ष के आँगन में आ चुका है। संयम स्पष्ट करता है कि संसार बहुत कम रह गया है, मोक्ष की दूरी अब बहुत कम रह गई है और मोक्ष सन्निकट है। हमारे संयम भाव हमारी भव्यता को स्पष्ट करते हैं, हमारी श्रद्धा और मेधा, बुद्धि का प्रतिफल है। संयम में जब तक सम्यक् मेधा और सम्यक् श्रद्धा जागृत नहीं होती है तब तक संयम और वैराग्य नहीं जागतार और जब तक वैराग्य नहीं जागता है, तब तक आप सौभाग्यवती, सौभाग्यवान् कितना भी कहलाऐं लेकिन वैराग्यवान या वैराग्यवती नहीं हो सकते हो। क्योंकि मानव जीवन का सर्वोत्तम सौभाग्य मात्र एक वैराग्य में निहित है। जो वैरागी है वही सौभागी है।

जो वैराग्यवान है वही सौभाग्यवान है, क्योंकि वैराग्य तीन गतियों में नहीं आता है मात्र मनुष्य गति में आता है। वह कौन से चीज है जो मात्र एक मनुष्य गति में आती है? वह वैराग्य है। जो मनुष्य गति में आता है अन्य किसी गति में नहीं आता। जो मात्र यहाँ पर आता है, वह पाया कि

नहीं पाया।

यदि अमेरिका आपको भेजा। तुम वहाँ से घड़ी साबुन लेकर आ गए तो क्या किया, क्यों ? भाई तुम ऐसी चीज लाते जो भारत में न मिलती हो, तब तो तुम्हारा अमेरिका जाना ठीक था। तुम अमेरिका से ऐसी चीज लाए घड़ी साबुन। दो रूपए की साबुन आपने 200 में खरीदी। क्या काम किया ? प्रिय आत्मन् ! जो चीज आपको कहीं न मिले ऐसी चीज पाना है, अवश्य मिलेगी। संयम के प्रति समर्पण, ओजस्वी भाव जागृत हों तो पल-पल की भावनाएं सफल हो जाती हैं।

जन्म-जन्म से भाव संजोए, दीक्षा पाएँगे।

नग्न दिगम्बर मुनिवर बनकर, ध्यान लगाएँगे।।

इष्ट प्रार्थना एक हमारी, आज सफल कर दो।

मेरी दीक्षा गुरुवर तेरे, कर कमलों से हो।।

''जन्म-जन्म से भाव संजोए दीक्षा पाएँगे'' यह एक जन्म की प्यास नहीं है, यह एक जन्म का प्रयास भी नहीं है। इसमें अनंत जन्मों की भावनाएँ जुड़ी हैं, असंख्यात जन्मों के भाव जुड़े होते हं तब कहीं स्वभाव को प्राप्त कराने वाली, विभाव का त्याग कराने वाली यह दीक्षा होती है। ध्यान दोना कितने जन्मों के पुण्य जोड़ना पड़ते हैं। यदि जरा भी पुण्य में कमी रह जाती है, तो फिर दीक्षा नहीं हो पाती है। आपने जम्बू स्वामी का चरित्र पढ़ा हो - नौ भव से त्याग का मार्ग अपनाते आ रहे थे। तब कहीं त्याग की ओर पग बढ़ पाते हैं। धन्य है, कि आज पंचमकाल में भी इस भारतवर्ष की पुण्य धरा पर इस कलिकाल का चमत्कार कि निर्ग्रंथ साधु हमें दिखाई देते हैं। जहाँ कि मनुष्य अन्न का जन इस भारत देश का ही नहीं संपूर्ण विश्व का परिचय सिद्ध हो रहे हैं। जो ज्ञान, ध्यान, साधना के बल पर स्वयं में जीते हैं, स्वयं के लिए जीते हैं। उनका जीवन स्वावलम्बी होता है पूरे विश्व को अवलम्बन देने की क्षमता रखते हैं।

प्रिय आत्मन् !

ऐसे स्वावलम्बी श्रमण हमारे गुरु हैं। इन गुरु की सन्निधि में आकर के अंधकार से प्रकाश की ओर जाते हैं, ये हमारे गुरु रत्नत्रय से शुद्ध पात्र स्नेही है।

रत्नत्रय विशुद्धासन, पात्र स्नेही परार्थकृत।

प्रतिपालयत् धर्मो हि, भवस्तैः तारको गुरुः।।

श्री वादीभसिंह सूरी छत्रचूड़ामणि ग्रंथ में कहते हैं गुरु कौन होते है ? जो रत्नत्रय से विशुद्ध

हों, सम्यकग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से विशुद्ध हों। शुद्ध रत्नत्रय के पालक, शुभ रत्नत्रय के पालक, निर्दोष निरतिचार रत्नत्रय के पालक, छेदोपस्थापना चारित्र के पालक। ध्यान देना – ऐसा भी मत मान लेना, कि परिपूर्ण शुद्ध होगा छेदोपस्थापना के पालक से आशय छटे गुणस्थान से नौवें गुणस्थान के मुनिराज में यदा कदाचित् दोष भी लगते हैं तो वह प्रतिक्रमण, आलोचना करके पुनः शुद्ध हो जाते हैं। विशुद्ध हैं रत्नत्रय से। ''पात्र स्नेही'' – पात्रों पर स्नेह करने वाले, पात्रों पर प्रेम करते हैं, अपात्रों पर नहीं करते। देखते हैं, कि मोक्षमार्ग का पात्र कौन है? भाई जो संयम पथ की ओर बढ़ रहे हैं, मोक्ष मार्ग के पात्र हैं, उनको पहले महत्व देते हैं, भाई हो सकता है तुम्हारा सम्मान मंच पर हो, या न हो, गुरु के चरण कमलों से तो हो ही जाता है।

प्रिय आत्मन्!

यदि हमने आशीर्वाद माँगा और नहीं मिला तो ये मत सोच लेना कि गुरु जी ने आशीर्वाद नहीं दिया और माँगा, मिल भी गया तो ये मत सोच लेना। ध्यान देना – पूरे विश्व को जो आशीर्वाद दे रहे थे। मैं कोई लेखन कार्य कर रहा हूँ और उसे विश्व कल्याण की भावना से कर रहा हूँ, आपने आकर नमोऽस्तु–नमोऽस्तु किया। पूरे विश्व को जो आशीर्वाद की वसीयत लिख रहे थे, उस में आपने विघ्न डाला है। इसलिए ध्यान देना यदि उनने आशीर्वाद न भी दिया, तो भी आशीर्वाद ही तो है।

समयसार क्या? कुंद–कुंद स्वामी का आशीर्वाद, प्रवचनसार क्या है? कुंद–कुंद स्वामी का आशीर्वाद, मूलाचार वट्टकेर स्वामी का आशीर्वाद, रत्नकरण्ड श्रावकाचार समन्तभद्र स्वामी का आशीर्वाद। हाथ उठाने का नाम ही है आशीर्वाद? आशीष वचन, आशीष वचन लिख दिया तो आशीर्वाद हो गया कि नहीं? एक बात और देखो – मनोयोग, वचनयोग, काय योग। यदि काय योग से पूरी क्रिया करो तो 3 प्रतिशत फल मिलता है। वचन योग से क्रिया करो तो 12 प्रतिशत फल मिलता है और मन से करो तो 85 प्रतिशत मानकर चलो। यदि आपको महाराज ने हाथ उठाकर के भी आशीर्वाद दिया, तो 3 प्रतिशत मानकर चलो। यदि आपको महाराज ने हाथ उठाकर के भी आशीर्वाद दिया, तो 3 प्रतिशत मिलेगा ज्यादा कुछ नहीं हो जाना और वचन से माइक पर बोल भी दिया तो कुछ नहीं हो जाना। आप तो घाटे में हैं, क्योंकि वचन से बोला तो 12 प्रतिशत, जिनको मन से आशीर्वाद देना चाहते थे, वो मन में रह गए तो उनको 85 प्रतिशत मिला। अब बताओ यदि आप उनके मन में रह गए हो तो 85 प्रतिशत मिला और वचन में रह गए तो 12 प्रतिशत, 3 प्रतिशत काय से मिला। इसलिए ध्यान रखो, वचन के क्षेत्र में ऐसा प्रावधान है, तो इस क्षेत्र में भी ऐसा प्रावधान जागे।

प्रिय आत्मन्!

ये ध्यान दो, गुरु का आशीर्वाद हमारे लिए बहुत उपयोगी है। हम मानसिक आशीर्वाद, वाचनिक आशीर्वाद, कायिक आशीर्वाद तीनों पर ध्यान रखें। जैसे- कायिक का 3 प्रतिशत, वाचनिक का 12 प्रतिशत और मानसिक वैय्यावृत्ति का फल 85 प्रतिशत। मन से वैय्यावृत्ति उनके मन को निर्मल कैसे रखें, उनके मन को स्वच्छ कैसे रखें। हम अपने गुरु के मन को पवित्र कैसे रखें इसका नमा है मानसिक वैय्यावृत्ति। और किसी के हाथ पैर दबाना कायिक वैय्यावृत्ति। आया ध्यान में?

महाराज ये विद्वान् आपके पास बैठे रहते हैं। हम लोगों को पैर दबाने तक नहीं मिलता। तो बैठ के 85 प्रतिशत लेंगे, तुम पाँव दबाकर 3 प्रतिशत ले जाओगे। इसलिए ध्यान देना - ये ज्ञानी जीव जितने होते हैं वे बड़ी बुद्धि से काम करते हैं। इस तरह इनका व्यापार चलता है कि हम लोग देखते रह जाते हैं और पहले दिन से जाते हैं। हमने जो किया थोड़े समय के लिए किया, आपने जो किया थोड़े समय के लिए किया। लेकिन ज्ञानी! गुरु के माध्यम से हमारे जीवन की शुरूआत होती है। हमें याद रहे महावीर का जीवन गुरु से आरंभ हुआ, पाश्र्वनाथ का जीवन गुरु से आरंभ हुआ था। हमारा जीवन भी गुरु से आरंभ हुआ है। ध्यान रहे, मनुष्य जीवन देव-शास्त्र-गुरु की त्रिवेणी रत्नत्रय का संगम करा देता है। रत्नत्रय की पावन गंगा में स्नान करा देता है। अपने जीवन को देव-शास्त्र-गुरु रत्नत्रय प्रदान करते हैं ये रत्नत्रय हमें तीन लोक के शिखर पर विराजमान कर देता है, ऐसा महामंगल आपका सौभाग्य रहा।

आपके जीवन में बाहर से गुरु कितने भी दूर हो जाएँ, अपने हृदय में स्थान सदा बनाकर रखना। कल का सूत्र जीवन भर कभी नहीं भूल जाना, **जीवन में लाख शिष्य बनाने की अपेक्षा एक गुरु बनाना श्रेयस्कर है, क्योंकि लाखों शिष्य बनाने वाले की समाधि नहीं हुई है, लेकिन एक गुरु बनाने वाले की समाधि हुई है।**

जीवन का अंतिम क्षण भी क्यों न हो, लेकिन गुरु बना लेना। ज्ञान सागर ने अंतिम क्षण में गुरु विद्यासागर बना लिए थे इसलिए उनकी श्रेष्ठ समाधि हो गई। लेकिन जो गुरु नहीं बना पाया लाखों शिष्यों वाला जस लोक चला गया। इसलिए प्रिय आत्मन्! याद रख लेना कि गुरु के होते हैं। गुरु दूर रहते हैं, हम उनके पास होते हैं, गुरु के प्रयास होते हैं ओर गुरु हमारे विश्वास होते हैं। जब गुरु पास में होते हैं तो ये मानकर चलिए सिद्ध हमारे पास होते हैं, अरिहंत हमारे पास होते हैं।

मुझे विश्वास है कि दो मुनिराजों की दो क्षण की वाणी, एक शेर को महावीर बना सकती है। मुझे विश्वास है एक मुनिराज की वाणी एक हाथी को पाश्र्वनाथ बना सकती है, मंगल, बुध,

गुरु ये तीन दिन आपको तीन लोक के शिखर पर बैठाने के लिए समर्थ हैं ऐसा आशीर्वाद के साथ कह रहा हूँ। आप अमल तो कीजिए। आप विमल हैं, अमल करो, अवश्य आप पायेंगे कि ये तीन लोक के शिखर पर बैठाने वाले वचन हैं।

मैं सोचकर कुछ भी नही आता हूँ, आपकी पुण्य वर्गणाएँ हम तक आती हैं और प्रवचन के मेघ आप पर बरस जाते हैं। हवाएँ आती हैं, बादल बरस जाते हैं। जहाँ वृक्ष होते हैं वहाँ बादल आकर बरस जाते हैं और वृक्ष नहीं होते हैं तो बादल आगे-आगे बढ़ते जाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

आपकी सद्भावनाएँ बोलती हैं, मैं नहीं बोलता हूँ। लोगों को लगता है कि महाराज बोलते हैं, लेकिन महाराज से पूँछो जब भी मुझसे कोई सच्चाई पूँछते है मैं यही कहूँगा कि मैं नहीं बोलता हूँ। आप में से न जाने कौन सा जीव पुण्यात्मा बैठा है उसके प्रभाव से बोलता हूँ।

प्रबल भावनाएँ, आपके जीवन में आएँ, क्योंकि यदि जीवन में ये भावनाएँ - आई तो उत्कृष्ट भावनाएँ सम्पन्न होगी। ऐसी भावना आप सभी के जीवन में आएँ। अपने को देखो, दूसरे को नहीं देखो। अपने को देखो कि मेरे अन्दर ऐसी भावनाएँ पनप सकती है तो ये मानकर चलिए, कि अगला क्रम आपका है। कहाँ ? सिद्धों की श्रेणी में, सिद्धों की श्रेणी में अकेले मुनिराज नहीं आएँगे। आप श्रावक हैं, आप मुनिराज बनिए, आपकी उम्र बड़ी है आप मुझसे पहले सिद्धों की श्रेणी में आएँगे ऐसी सद्भावना है।

''शुभस्य शीघ्रम'', इसी भवन से, वह यही मंच है। इस मंच पर आ. शांतिसागर बैठे, सुमेरचन्द्र दिवाकर खड़े रहे, विधान पढ़ रहे थे। विधान पढ़ते समय शांतिसागर जी ने टोका, दिवाकर जी फिर से पढ़ो। फिर पढ़ा। बोले पढ़ो तो, फिर पढ़ा ''संयम बिना एक घड़ी मत गवाँओ।''

दुर्लभ गुरु दर्शन मिलन, दुर्लभ गुरु से ज्ञान।
दुर्लभ से दुर्लभ महा, गुरु से दीक्षा दान।।

ॐ नमः सिद्धेभ्य

वात्सल्य पर्व रक्षाबन्धन

प्रिय आत्मन्! रक्षाबंधन त्यौहार यह रक्षा बंधन भी है और वात्सल्य पर्व भी है। कल का दिन हमने बड़े वात्सल्य के साथ मनाया। हम समझ नहीं पाते वात्सल्य को, क्योंकि हमारे अंदर बात-बात में शल्य लगी रहती है। इसलिए वात्सल्य हमारे अंदर प्रगट नहीं हो पाता। वात्सल्य का अर्थ है - धरमी सौं गौ वच्छ सम प्रीती।

आत्मा से कैसी प्रीति करना? जैसी गाय अपने बछड़े से प्रीति करती है। ऐसी प्रीति, ऐसा प्रेम करने का नाम अकृत्रिम प्रेम। दो प्रकार के सामान बाजार में आते हैं। कृत्रिम व अकृत्रिम। एक तो बनाये हुए आते हैं एक प्राकृतिक आते हैं। जो प्राकृतिक है वो अकृत्रिम स्नेह कहलाता है, वो है वात्सल्य।

आपको यह ज्ञात है कि उज्जयिनी नगरी, राजा श्री वर्मा और उसके चर मंत्री, और वर्षायोग की घड़िया पास में। उज्जयिनी के उद्यान में वर्षायोग के पूर्व ही अकंपनाचार्य 700 मुनियों के साथ में आए और उद्यान में ठहर गए। ठहरते ही समाचार नगर को मिला। इस कहानीर में हम आपको कहानी नहीं सुनाऐंगे। कहानी के अंदर के प्राण सुनायेंगे, क्योंकि सार आत्मा होती है, शरीर के अंदर जो आत्मा है वह उसका सार है। क्रोध, मान, माया, लोभ की तरह चार मंत्री हैं। उनका नाम था वृहस्पति, नमुचि, बलि, प्रह्लाद। ये जो चार मंत्री थे ये चार कषायरूप थे। और जो अज्ञान रूप था, वो राजा था श्रीवर्मा, ये आध्यात्मिक रहस्य। ये रक्षाबंधन हमें आत भी मनाना पड़ेगा। ये सार जो आज आप सुनेंगे तो कहेंगे महाराज आज भी रक्षाबंधन मनाना चाहिए। अब देखिए कि वहाँ पर 700 मुनियों का संघ आ गया। संघ आते ही आप जानते हैं, चारित्र जहाँ आएगा - क्रोध, मान, माया, लोभ कभी चारित्र को स्वीकार नहीं करेंगे। चाहे ज्ञान रहे या अज्ञान रहे, श्रद्धालु झुकेगा, पहुँचेगा, लेकिन कषायें रोकती हैं, चारित्र के पास जाने से। श्री वर्मा जो था वह जाना चाहता था। किसके पास? चारित्र रूपी मुनि संघ के पास। लेकिन वे चार कषाय रोक रही थी। वो चार मंत्री रोक रहे थे जो गुणरूपी समाज है, वह समाज प्रातः काल अपनी-अपनी अर्घ की थाली लेकर जा रहा है। तो उसके अंदर भाव जागा कि कैसे भी मुनि होंगे, हम तो एक बार जाकर देखेंगे। प्रत्यक्ष देखेंगे।

यद्यपि कषाय रूपी चार मंत्रियों ने कहा कि वो मुनि कुछ नहीं जानते हैं, उनके पास कोई ज्ञान नहीं होता है, नग्न होते है, अनपढ़ होते हैं, कुछ बोलकर नहीं जानते इत्यादि। लेकिन जीव रूपी जो श्री वर्मा था, उसके अंदर भाव जागा, नहीं मैं तो स्वयं देखूँगा। प्रत्यक्ष प्रमाण देखूँगा। जब द्वारे पर आ ही गये हैं तो मेरा कर्त्तव्य है मैं मुनियों के पास जाऊँ और जाकर के दर्शन करूँ। जीव का पुरुषार्थ ज्यादा हो जाता है तो कषायों को हारना पड़ता है। कभी खेवटिया नाव चलाता है, कभी नाव खेवटिया को चला देती है। जब लहरें ज्यादा हों और खेवटिया का पुरुषार्थ कम हो तो नाव खेवटिया को चला देती है। जब लहरें ज्यादा हो और खेवटिया चतुर हों तो वह नाव को चलाता है। उसी तरह कभी कषाय जीव को वश में कर लेती है तो कभी कषाय को। लेकिन जो चतुर जीव होता है वो कैसी भी लहरें हो वह तूफानों से लड़कर आगे बढ़ता है। जीवरूपी श्रीवर्मा चारों मंत्रियों, चारों कषायों से लड़ते हुए आगे बढ़ता है। चारों कषायें पीछे-पीछे चल रही हैं। चलना ही पड़ेगा, क्योंकि कषायें जीव को छोड़ना नहीं चाहतीं। चारों कषायें पीछे-पीछे चल रही है। चलना ही पड़ेगा, क्योंकि कषायें जीव को छोड़ना नहीं चाहतीं। उनके अंदर तो वह भरी हुई हैं। मुनि संघ को समाचार मिला कि ये चार कषायें आ रही है। यद्यपि जीवरूपी श्रीवर्मा से तो बोलना चाहते थे, लेकिन यदि आप कषायों के साथ है तो आपसे नहीं बोलेंगे। मैं आपसे मिलना चाहूँगा, आप मुझसे मिलना चाहेंगे, लेकिन कषाय चार-चार हों। भैया यदि एक भी हो, तो जो क्रोध करते हो उनके पास मत जाना, और जो मान करते हो उनके पास नहीं जाना। मुनि अकंपनाचार्य थे जो निशंकित अंग के धारी, उन्होंने निशंकित भाव से संघ से बोल दिया कि पूरा संघ मौन रहेगा। क्योंकि मौनरूपी तलवार से कषायों को जीतना हैं। जब आप कहते हैं कि महाराज हमें गुस्सा बहुत आता है तो मौन ले लेना, क्योंकि एक नहीं चार-चार कषायें आ रही हैं, हमें चार से जीतना है। अकेला क्रोध आता तो कोई बात नहीं थी अकेला मान आता तो कोई बात नहीं थी साथ में माया को लाया है और लोभ भी आया है। मुनि संघ तो समाचार मिलते ही मौन हो गया और सभी अपने-अपने ध्यान में तल्लीन हो गए, क्योंकि जो मुनि है मनन क्रिया व मौन क्रिया ही मुनि का काम है -

मुणि मोणं समादाय, धुणइ कम्मं शरीरयं।।

मुनि मौन को धारण करके क्या करता है, व्रतों का पालन मौन धर्म से हो जाता है। आचार्य शांतिसागर जी बोले मौन ले लेने से सारा संसार छूट जाता है। आधा मोक्ष हो जाता है। तो देखिए 700 मुनिराजों ने मौन ले लिया और 700 मुनिराज सम्यग्दर्शन रूपी वृक्ष के फल के समान थे। उन्होंने मौन ले लिया, अपने स्थान पर ठहर गए। अब चारों कषाय जीवरूपी श्रीवर्मा को लेकर आ गई। आने के बाद राजा रूपी जीव तो क्या कर रहा है? रत्नत्रय का दर्शन कर रहा है। लेकिन ये मंत्री रूपी चारों कषायें उस जीव को भटका देती हैं। कषाय इस जीव तत्त्व को भटका देती हैं। मैंने

कहा था न ? ये कुछ नहीं जानते, इसलिए मौन ले लिया। कुछ जानते होते तो कुछ बोलते, आपको आशीर्वाद भी नहीं दिया। चारित्रमोह के उदय से होने वाली जो कषाय है, वो मुनियों के ऊपर भी उपसर्ग करने के बाद भी तैयार हो जाती है। एक प्रभावना अंग वाले मुनिराज नगर से चलकर के आहारचर्या से लौटकर आ रहे थे। श्रुतसागर जी महाराज आहार चर्या से लौटकर आ रहे थे। श्रुतसागर माने ज्ञान का सागर। जो अपने आप में ज्ञान के सागर थे। कषायों को लड़ना है तो किससे लड़ेंगी, जो मौन बैठे थे, उनको तुमने कैसा सुना दिया। अल्पज्ञ सुनता है, ज्ञान सुनता नहीं है। अल्पज्ञ होगा वह सुन लेगा, पर ज्ञानधारी नहीं सुनेगा। देखिए वह चारों मंत्री, उन्होंने कहा कि देखो वह जा रहा है सफेद बैल, अब जो मुनि महाराज थे श्रुतसागर उन्होंने तत्त्व चर्चा की, वाद-विवाद हुआ धर्म पर, उसमें चारों के चारों मंत्री परास्त हो गए।

क्योंकि सम्यग्ज्ञान ऐसा है कि अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय करके पैदा हुआ है। जिसने अनंतानुबंधी को पराजित किया है। क्रोध, मान, माया, लोभ को पराजित करके ही सम्यग्ज्ञान पैदा हुआ है। 12 कषायों को पराजित करके अनंतानुबंधी की क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याखान के क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान के क्रोध, मान, माया, लोभ को पराजित करेक जो चारित्र पैदा हुआ है। ऐसे ज्ञानी ने सम्यग्ज्ञान के द्वारा उन चारों मंत्रियों को परास्त कर दिया। अरे मुझे जीवरूपी राजा के सामने नीचे देखना पड़ा। कषाय कभी हारना नहीं चाहती। अज्ञानी कभी हारना नहीं चाहता। हार स्वीकार नहीं करती कषाय।

आगे चलने के पश्चात् चारों कषायों ने क्या किया ? एकता बनाई। चारों कषायों ने योजना बनाई, जिन मुनिराज के कारण हमें पराजित होना पड़ा उन धर्मधारी मुनिराज पर उपसर्ग करेंगे। मुनिराज संघ में पहुँचे। संघ में सबको समाचार हो गया। सारा संघ मौन बैठा था। वहाँ निशंकित अंग के धारी अकंपनाचार्य को जाकर प्रणाम किया और कहा - हे गुरुदेव! मैं आहार चर्या में गया था, रास्ते में चार मंत्री गण मिले और आपके द्वारार जो प्रदत्त ज्ञान था उस ज्ञान से स्याद्वाद धर्म की ध्वजा फहराकर, मैंने विजयश्री का वरण किया है। गुरुदेव बोले तुमने अनर्थ कर दिया।

हे गुरुदेव! मैंने अनर्थ! हाँ बेटे-अनर्थ। तुम्हारे द्वारा बहुत बड़ा अनर्थ हो गया। संघ पर विपत्ति आयेगी।

''पायः पानं भुंजगानाम् केवलं विषवर्द्धनम्''

क्योंकि आज तुम सर्प को दूध पिलाकर के आये हो। तुम सोच रहे थे कि मैं इसको पराजित कर रहा हूँ। ध्यान रखना मान को कभी पराजित नहीं करना। अहंकार कभी पराजित नहीं होना चाहता। गुरु क्या संदेश दे रहे हैं- ''उपदेश किसको देना, जो पात्र हो, अपात्र को शिक्षा देना शत्रु

को तलवार देने के समान है।'' तुम आज शत्रु के हाथ में तलवार देकर के आए हो। इससे संघ में बहुत बड़ा अनिष्ट होगा।

श्रुतसागर की आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है कि मेरे कारण मेरे संघ में विपत्ति, ये तीन काल में नहीं हो सकता। चाहे मुझे प्राण देने पड़े, कुछ भी करना पड़े, पर मेरे कारण संघ पर विपत्ति नहीं आ सकती। हे गुरुदेव मुझे कोई उपाय बताइए, मेरे अपराध का प्रायश्चित्त मुझे दीजिए। धन्य है वह शिष्य, जिसके अंदर यह भाव बैठा है कि गुरु ने जो कह दिया वो सत्य है। गुरु ने कह दिया कि तुमने गलत किया तो कोई साक्ष्य नहीं चाहिए। अश्रुधारा बह रही है गुरु मुझे प्रायश्चित्त दीजिए। गुरु क्या दंड दें ? वे जानते हैं कि जैसे मेरी पांच अंगुलियाँ हैं। वैसे ही तो यह मेरा शिष्य है। गुरु कहते हैं कि बेटे हम तुम्हें क्या दण्ड दें, जो भी विपत्ति होगी वह हम सब मिलकर झेलेंगे। नहीं गुरुदेव ऐसा नहीं। आप संघ के रक्षक हैं, धर्म की रक्षा का प्रश्न है। गुरु अकंपनाचार्य सोचते हैं शिष्य विपत्ति झेलने को तैयार है तो विपत्ति उसे पराजित नहीं कर सकती। अगर तुम विपत्ति झेलने को तैयार नहीं हो तो विपत्ति तुम्हें पराजित कर देगी।

श्रुतसागर उपसर्ग विजेता हुए। गुरु आज्ञा जयवंत हो।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

रक्षाबन्धन

रक्षाबन्धन पर्व, धर्म रक्षा पर्व, ज्ञान रक्षा पर्व, चारित्र रक्षा पर्व, श्रमण रक्षा पर्व, वात्सल्य पर्व इत्यादि नामों से जाना जाता है।

प्रिय आत्मन्!

''कथ्यते इति कथा'' जो कही जाती है, उसे कथा कहते है, वह कथा अनेक व्यथाओं से भरी होती है। यह इतिहास के क्षण, दस्तावेज, हमें साक्ष्य देते हैं इस भारत की पुण्य धरा पर किस तरह काल क्रम चलता रहा, समय चक्र अपनी अवाध गति से किस तरह बढ़ता रहा, इसमें कितने काल खण्ड आये और क्या क्रम इस धरा पर घटित हुआ।

प्रिय आत्मन्!

देवता को नमस्कार करने मात्र से मोक्ष नहीं मिलता है, जब तक नमस्कार के परिशेष का ज्ञान न हो, तब तक मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा आचार्य श्री वीरसेनस्वामी जी धवला जी में कहते हैं। मात्र धागा बांधने से रक्षाबंधन नहीं हो जाएगा।

आगम के सूत्रों को बांधते हुए हमें इसके विशिष्ट ज्ञान तक जाना है, क्योंकि विशिष्ट ज्ञान ही धर्मध्यान, शुक्लध्यान तक ले जाएगा, वह शुक्लध्यान आपको शिवधाम तक ले जाएगा। कथारंभ–हस्तिनापुर का पावन राज्य जहाँ पर महापद्मराजा राज्य कर रहे थे, रानी लक्ष्मीमति, दोनों के पुण्य योग से दो पुत्र रत्न उत्पन्न हुए। एक का नाम पद्मरथ दूसरे का नाम विष्णुकुमार, यह दोनों बड़े ही धार्मिक थे। जैसे जीव को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी तरह से राजा महापद्म को पद्मरथ और विष्णुकुमार ये दो पुत्र उत्पन्न हुए।

प्रिय आत्मन्!

जब महापद्म के लिए वैराग्य आया, जीवन का सर्वोत्तम सौभाग्य आया वन जाने के लिए तैयार हुए, छोटे बेटे ने पूँछा, पिताजी आप कहाँ जा रहे हो ? बेटे, संसार नश्वर है, इसलिए मैं तुम दोनों के लिए राज्य देकर वन को जा रहा हूँ। पिताजी ! इस नश्वर संसार का हम क्या करेंगे ? जिसे

आप पाप पंक समझ कर के त्याग रहे हैं? जिसे आप बंधन समझकर त्याग रहे हैं, क्या पिता के लिए यही हित रूप है, कि अपने बेटे को बंधन में डालकर स्वयं स्वतंत्र हो जाए? ये तो पिताजी आपका योग्य धर्म नहीं है। बेटे, मैंने बहुत समय बंधन में रह लिया और तुम्हारी अवस्था तप की नहीं। पिताजी! इस नश्वर संसार का हम क्या करेंगे? जिसे आप पाप पंक समझ कर के त्याग रहे हैं? जिसे आप बंधन समझकर त्याग रहे हैं, क्या पिता के लिए यही हित रूप है, कि अपने बेटे को बंधन में डालकर स्वयं स्वतंत्र हो जाए? ये तो पिताजी आपका योग्य धर्म नहीं है। बेटे, मैंने बहुत समय बंधन में रह लिया और तुम्हारी अवस्था तप की नहीं। पिताजी! भगवान महावीर की अवस्था, वासुपूज्य भगवान की अवस्था कुमार अवस्था में ही तप की हुई थी, मैं भी आपके साथ तप के लिए चलूँगा।

आज्ञाकारी बेटा विष्णुकुमार छोटा था, लेकिन छिद्र रहित नौका के समान था, छेद से रहित छोटी नौका भी पार कर देती है, उसी तरह विष्णुकुमार की बुद्धि जन्म से ही पिता के प्रति आज्ञाकारिणी धर्म के प्रति धारिणी और व्रतों के प्रति सदाचारिणी थी। वह चल दिया पिता के साथ वन के लिए, जिस तरह एक गाय के साथ पीछे-पीछे बछड़ा चल देता है। जाकर के दोनों ने दीक्षा ले ली। बड़े भाई पद्मरथ के लिए राज्य मिला, हस्तिनापुर का राज्य चल रहा है। एक घटनाक्रम बीच में उपस्थित होता है उज्जैनी नगरी में राजा श्री वर्मा या कहिए श्री ब्रह्मा राज्य कर रहा था। उसके चार मंत्री थे, बलि, नमुचि, प्रह्लाद, वृहस्पति। अहो आत्मन्! इस जीव रूपी राजा के पास अनादि काल से चार मंत्री हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ। बलि-क्रोध, नमुचि-मान, प्रह्लाद-माया और वृहस्पति-लोभ। क्रोध का बलि हमेशा अपना बल दिखाता है, मान का नमुचि हमें नीचा दिखाता है, माया का प्रह्लाद हमें पशुगति ले जाता है, तो लोभ का वृहस्पति पहले तो आल्हाद देता है, बाद में क्या करता है परिग्रह लाद के नरक की और ले जाता है।

प्रिय आत्मन्!

ये चार मंत्री इस जीवराज, इस ब्रह्म राजा के पास है, जैसे श्री वर्मा के पास चार थे वैसे ही इस जीवराज के पास अनादिकाल से चार मंत्री हैं, यह चारों मंत्री राजा के साथ रहते हैं।

यह ब्रह्म रूपी राजा चाहता भी है, कि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाए, लेकिन जब तक अनंतानुबंधी की चारों कषायें साथ में लगी रहेंगी, तब तक सम्यग्दर्शन प्राप्त होगा क्या? नहीं होगा। योग बन जाए आगम में लिखा है, गुरु के दर्शन से सम्यग्दर्शन हो जाता है, जिनबिम्ब दर्शन से सम्यग्दर्शन हो जाता है, निमित्त बन जाए तो। ''साधुनां दर्शनम् पुण्यं'' मोक्षपुरी के पथिक शिवपथ साधक आचार्य अकम्पनाचार्य स्वामी विहार करते हुए आ गए इस उज्जैनी नगरी में।

चारित्रवंत संघ, सम्यग्दर्शन की महामूर्ति, सम्यग्दर्शन वितरणकर्ता महान आचार्य अकम्पन, निशंकित अंग का कम्पन आ गया अपने संघ के साथ, जिस तरह निशंकित अंग अपने सात अंगों से सहित होता है, उसी तरह निशंकित अंग के परिचय अकंपनाचार्य अपने सात सौ मुनियों के साथ आ गए उज्जैनी नगरी में। आकर के ठहरे, अष्टाह्निका पर्व के अनन्तर यह सब उपक्रम चल रहा था। वर्षायोग की स्थापना का समय व्यतीत होता गया और यह लगभग एक माह का समय नगर में पूरा हो गया। याद आया, किनके लिए? उन्हीं के लिए, कषायें इतनी जल्दी नहीं भूलती है। धर्म भूलना आसान है, ज्ञान विस्मृत होना आसान है, चारित्र को भूलना आसान है, सज्जनों को भूलना आसान है, लेकिन दुर्जन कभी सज्जन को भी नहीं भूलते है, फिर कषायें मंत्रियों के उदय में आयी और उन चारों मंत्रीयों को ज्ञाता हो गया, कि नगर में कोई मुनि संघ आया है।

राजाने प्रात: देखा प्रत्यूष बेला में, अहो! नगर के नर-नारी कहाँ जा रहे हैं, हाथों में सजी अष्ट द्रव्य की थालियाँ, मानो अष्टकर्म के विध्वंस के लिए ले जा रहे हों, मानों अष्टम् श्री मंडप भूमि की ओर जा रहे हों। इस तरह चले जा रहे हैं, राजा ने प्रत्यूष बेला में निहारा। पूँछा-मंत्रीवर! ये नगर के प्रजाजन कहाँ जा रहे हैं। हे राजन्! इस नगर के बाहर कोई नग्न साधुओं का संघ आया है, उनके दर्शन के लिए जा रहे हैं। अच्छा। ऐसा सौभाग्य अपने नगर का, जिस तरह अयोध्या के समीप भरतचक्रवर्ती को सौभाग्य मिला था, आदिनाथ स्वामी के दर्शन का, जिस तरह राजा श्रेणिक को सौभाग्य मिला था महावीर का, उसी तरह आज मुझे सौभाग्य मिल रहा है। अहो! कैसा सौभाग्य? महाराज। सौभाग्य क्या किसी नग्न पुरुष के देखने से सौभाग्य जागता है? देखो अपने यहाँ पर कितने पशु नग्न रहे हैं। मंत्री! विवेक का प्रयोग करना चाहिए, अपनी धरा पर कोई आया है। ये जैन समाज प्रबुद्ध समाज है, हर किसी को नहीं पूजती। जरूर उन नग्न पुरुषों के अंदर कोई विशिष्टता होगी। देखो! जितने भी परमात्मा होते हैं, वे निराकार और नग्न ही रहते है। लेकिन सर्वजगत से पूज्यनीय होते हैं, जरूर कोई विशेषता होगी, हमें देखने चलना चाहिए। राजा श्रीवर्मा कौन है? जीवरूपी ब्रह्म वह श्री ब्रह्म (आत्मा) उठता है, जाता है, दर्शन तो करें। क्योंकि दर्शन के बिना सम्यग्दर्शन कैसे होगा? चल देता है, लेकिन ये बाधक तत्त्व साथ में चलते हैं।

अनंतानुबंधी की चारों कषायों की तरह ये चार मंत्री साथ चल रहे हैं, चलते-चलते पहुँचे संघ की ओर चारित्र संघ के नायक निशंकिताकंपनाचार्य ने संघ को आदेशित कर दिया कि आज दुष्ट विचारों को धारण करने वाले मंत्रियों के साथ अभी राजा श्री वर्मा आ रहा है, आप ध्यान रखें सभी मौन ग्रहण कर लें। मौन धारण कर लिया सात सौ मुनिराजों ने। **''गुरु आज्ञा गरियसी''** प्राणों का त्याग करना श्रेयस्कर है, और गुरु के वचनों का त्याग करना श्रेयस्कर नहीं है, अत: सभी मौन ध्यानस्थ। राजा ने आकर दर्शन किया वैराग्य छवि को देखकर राजा मन ही मन प्रसन्नचित हुआ।

भले ही कमलसरोवर में डुबकी लगाओ ना लगाओ, पर हवाएँ तो शीतलता को देती ही हैं।

ऐसा लगा जैसे उत्तम सम्यग्दर्शन हो गया हो। लेकिन वे चारों कषायों की तरह, वे मंत्री ज्यों ही बाहर आये, देखो महाराज ये कैसे अंजान है? मात्र समाज का खाते हैं जैन समाज शान्त समाज है, भोली समाज है। यह एक तो इनका भोजन लेते हैं और अपनी मूर्खता के कारण ये मौन रहते हैं, बताओ – आपको आर्शीवाद भी नहीं दिया। यदि जरा सा ज्ञान होता, तो दो शब्द तो बोलते। कषाएँ उदय में आती हैं, जैसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन कुछ समय के लिए आता है, फिर चल देता है, उसी तरह राजा ने भी कुछ नहीं कहा, चल दिया, मन में म्लानता का भाव नहीं, जितना भाग्य में था उतना तो मिला और चल दिया। रास्ते में चलते देखा, एक मुनिराज आ रहे हैं, इनको देखकर के चारों मंत्रियों ने उनका उपहास किया देखो एक वृषभ चला आ रहा है। तक्रम पीतः शब्द को बोलते है।

श्रुतसागर मुनि ने कहा भो मंत्रियों! क्या तर्क पीला भी होता है कि सफेद होता है? दही पीला होता है कि सफेद, आपको इतना नहीं दिख रहा है, जीवन में क्या कभी दही को देखा नहीं, तत्काल राजा समझ गया, ये महामुनिराज होंगे, ज्ञानी हैं। हे महाराज! आप कौन है, मैं आचार्य अकंपन का शिष्य श्रुतसागर हूँ, कहिए, क्या कोई प्रश्न है आपका? चारों मंत्री वाद विवाद के लिए तैयार हो गए।

प्रिय आत्मन्!

जैसे सम्यग्ज्ञान से चारों कषाएँ लड़ने को तैयार हो जाती हैं, पर वे चारों कषाएँ सम्यग्ज्ञान के आगे पराजित हो जाती हैं उसी तरह श्रुतसागर रूपी सम्यग्ज्ञान के आगे वे चारों मंत्री पराजित हो गए, वाद विवाद में। ध्यान रखो– प्रमाण मौन रहता है, नय बोलता है। अनेकांत मौन रहता है, स्याद्वाद बोलता है, उसी तरह अकंपन के सात सौ मुनियों का संघ तो प्रमाण रूप विराजमान था, तो यहां पर श्रुतसागर नये रूप में बोल रहे थे, और उन्होंने अपनी नय शैली के द्वारा पराजित कर दिया।

बड़े प्रसन्न थे आज मैंने वाद–विवाद में पराजित किया। राजा के सामने उन मंत्रियों को पराजित किया। बड़े सौभाग्य का विषय है, गुरुजी आज विशेष आर्शीवाद देंगे। चले जा रहे हैं, मुनिराज, जाकर संघ में पहुँचे। गुरुदेव! ईर्यापथ भक्ति इसलिए होती है, कि रास्ते में पूरी घटी हुई घटनाएँ, और चौके में जो भी घटना घटी है। आने में जाने में और खाने में तीनों घटनाओंरर को ईर्यापथ भक्ति में साधुगण बतलाते हैं, गुरु से बताया, गुरुदेव! आज रास्ते में मुझे विजय श्री उपलब्ध ा हुई। कहो, शिष्य! क्या हुआ? गुरुदेव चार मंत्रियों के लिए मैंने वाद विवाद में पराजित किया। हे शिष्य! तुमने बहुत बड़ा अनर्थ कर दिया।

तुम जानते नहीं क्या, कि सर्प के लिए तुमने दूध पिला दिया? जानते हो विष उगलेगा। क्या

कभी शत्रु के हाथ में शस्त्र देना चाहिए, तुमने आज शत्रु के हाथ में शस्त्र दे दिए। दुर्जनों के साथ वाद विवाद नहीं करना चाहिए, आज तुमने विवेक का प्रयोग नहीं किया, मात्र ज्ञान का प्रयोग किया है, बहुत बड़ा अनर्थ आ जाएगा संघ पर, आज सारा संघ कष्ट में पड़ जाएगा। सात सौ मुनियों के ऊपर तुमने संकट के बादल मंडरा दिए। जानते हो वह दुर्बुद्धी हैं। मिथ्यादृष्टि कभी भी बदला लेने आ सकते हैं।

जानते हो अनंतानुबंधी कषायर मिथ्यात्व के साथ होती है, और वे कभी भी बदला के उद्देश्य से आ जाएँगे और हो सकता है, संघ पर संकट आ जाए। गुरुदेव! ये आप क्या कह रहे हैं? मेरे कारण संघ पर संकट, ये कभी नहीं होगा। गुरुदेव! गुरुदेव! मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ, गुरुदेव मैंने जीवन में कभी नहीं सोचा था, कि मेरे कारण संघ पर कष्ट आएगा। मेरी वाणी संघ के लिए कृपाण बन जाएगी, हे भगवान! मेरे वचन संघ के लिए बाण बन रहे हैं। गुरुदेव! आप कोई भी उपाय बताइऐ, मैं प्राणों का परित्याग करके भी संघ की रक्षा कर सका, तो मेरा इस धरती पर जन्म लेना सार्थक है। गुरुदेव! भले ही मेरे प्राण जाएँ, पर संघ के ऊपर कोई संकट ना आए।

मुनिराज श्रुत सागर से गुरुदेव अंकपन बोलते हैं – बेटे तुम्हें मैं कैसे कष्ट दूँ, तुम भी तो एक अंग हो, और पूरा संघ भी अंग है, नहीं बेटे हम सभी सात सौ एक बनकर कष्ट सहेंगे। वह अकंपन ऐसा बोल रहे थे, एक शिष्य के प्रति। शिष्य बोला – गुरुदेव क्या कभ्ज्ञी एक फल के पीछे पूरे वृक्ष को अपने प्राण न्योछावर कर देना चाहिए? क्या यदि एक अँगुली में बीमारी हो जाए, तो पूरे शरीर को नष्ट कर देना चाहिए? यदि एक बाल टूटने से रक्षा होती हो, तो क्या पूरे शरीर को खंडित करना चाहिए? गुरुदेव मुझे योग्य प्रायश्चित् दीजिए, मैं आपके वचनों को प्राण देकर के भी पालन करूँगा। गुरुदेव बोले – बेटे क्या कहें, लेकिन ध्यान रहे कि इधर सात सौ का संघ है, और तुम हो। हे वत्स – रत्नत्रय ही धर्म है, जाओ उस स्थान पर अपने रत्नत्रय की रक्षा करते हुए रहो। शायद, तुम्हारे रत्नत्रय के प्रताप से संकट टल जाये।

उनको तो मात्र तुमसे बदला लेना है। ऐसा जानकर के वह मात्र तुम्हारे ऊपर ही आक्रमण करेंगे और साथ ही संघ्ज्ञ पूरा बच जाएगा। जाओर उसी स्थान पर आज रात्रि भर धर्मध्यान करो, यही तुम्हारे लिए योग्य प्रायश्चित् है, यही संघ रक्षा का उपायर है। श्रुत सागर का रोम-रोम खिल उठा। अहो! आज मुझे संघ की रक्षा करने का सौभाग्य मिला है, प्राण तो कई बार जन्म लेते हैं, कई बार मरते हैं, लेकिन संघ की रक्षा में यदि प्राण चले गए, तो धन्य हो जाएँगे, मेरे प्राण धन्य हो जायेंगे, और चल दिए उसी वन में, वह सम्यग्ज्ञान के साधक श्रुत सागर वन में बैठे थे, या स्वाध्याय भवन में बैठे थे। वह मुनिराज अपने निजस्वरूप में विचरण कर रहे थे, निजस्वरूप में लवलीन थे, मात्र गुरु की आज्ञा मेरे सिर पर है, शत्रु का भय मेरे ऊपर नहीं है, जो आए अथवा न आए लेकिन गुरु ने

उपाय बता दिया। **नान्यथा गुरुभाषितं** मुनि के वचन अन्यथा नहीं होते हैं, गुरु के द्वारा दिया गया प्रायश्चित् ही मेरे लिए कल्याणकारी है। रात्रि में चारों मंत्री निकल पड़े, क्रोध मान, माया, लोभ रूपी, कषायों के अपने-अपने हाथ में हथियार लिए, चलो देखते हैं, सम्यग्ज्ञान रूपी साधकों के लिए। आ गए, संघ पर संकट डालने आए थे, कि रास्ते में अचानक देखा, कि यही तो है, वह पुरुष (मुनि) जिससे हमारा विवाद हुआ था, पहले इसको देखते हैं, दूसरों से क्या प्रयोजन? वह तो मौन रहे थे, उन्होंने तो कुछ बोला भी नहीं है, राजा के सामने नीचा तो इसी ने दिखाया था।

प्रिय आत्मन्!

यदि हम दुर्जन के लिए अमृत भी पिलाएँगे, तो वह विष बना देता है। यदि ज्वर के समय मीठा दूध भी पियें तो कड़वा लगता है, उसी तरह वह चल दिए, देखते ही देखते पहुँचे पास में। चारों में चर्चा हुई, पहले आक्रमण कौन करे, क्योंकि अज्ञानी भी जानता है, कि हिंसा करने से पाप होता है। फिर तो साधु की हत्या, स्त्री की हत्या करने से नरक मिलता है। कौन वार करे? साधुहत्या से बड़ा संसार में कोई पाप नहीं होता है, गौ हत्या, साधु हत्या, स्त्री हत्या, बाल हत्या से बहुत बड़ा पाप होता है, और मैं साधु के ऊपर कैसे आक्रमण करूँ।

कौन करे चारों विचार हैं? निर्णय हुआ चारों एक साथ वार करें, प्रहार करें, तलवार हाथ में लिए प्रहार को तैयार हुए वन देवता ने उन्हें कीलित कर दिया। चारों के हाथ में तलवारें है। रात्रि निकल गई, सुबह से दर्शनार्थी चले आ रहे थे, मुनिराज के दर्शन के लिए देखा नगर के ये चार मंत्री और मुनिराज के ऊपर तलवार ताने खड़े हैं।

प्रिय आत्मन्!

ऐसा ही होता है, चारों कषाएँ ज्ञान के ऊपर आक्रमण करती है, लेकिन सम्यग्ज्ञान चारों को कीलित कर देता है। कौन सा ज्ञान - ज्ञान नहीं? सम्यग्दर्शन के साथ जो ज्ञान होता है, संयम और शील के साथ जो ज्ञान होता है, वह चारों कषाओं के प्रहार को कीलित कर देता है। यदि शील रहित ज्ञान है, वह क्या हो जाता है? वह पराजित भी हो जाता है। देखिए शील के कील ने उनको कीलित कर दिया। प्रजा ने राजा तक संदेश पहुँचाया। अहो! मेरे नगर में ऐसे दुष्ट मंत्री हैं इनको दंड देना चाहिये।

बोलो! हे श्रुतसागर मुनिराज! ये वही चार मंत्री हैं, जो आप पर प्रहार करने आए थे। इनको आज मृत्यु दंड दे दिया जाए। आप जो कहेंगे, वो सजा प्रदान की जाएगी। मुनि बोले - श्री वर्माजी आप सत्य कह रहे हैं, कि मैं जो कहूँगा वह सजा प्रदान की जाएगी। हे श्री वर्मा! आप इनके लिए क्षमा कर दीजिए। अहो! यह कैसी सजा जबकि ज्ञात है, ये वही चार मंत्री हैं, जो रात्रि में प्रहार कर

रहे हैं, पूरा नगर स्तब्ध रह गया। इनके लिए तो कितनी बड़ी सजा मिलनी चाहिए, क्योंकि यह चारों यति हत्या का जो पाप करने आए थे फिर भी मुनिराज के मुख से क्षमा।

ये कैसा दृश्य इस जगत में ज्ञानी पुरुषों की चिंतन शक्ति अचिंत्य होती है, वह जानते हैं, कि **शत्रुता का अंत शत्रु का अंत करने से नहीं होता है।** जान चुके थे, माफ कर दिया जाए, आज्ञा पालन की, वहाँ पर माफ किया लेकिन नगरवासियों का आग्रह था, माफ तो कर दिया जाए लेकिन यह नगर में रहने के पात्र नहीं हैं, इन्हें नगर से निकाल दिया जाये, वो प्रसंग दूसरा है राजा अपना कर्त्तव्य करता है, साधु अपना कर्त्तव्य करता है।

कृष्णलेश्या जीव को काला कर देती है, उसी तरह से राजा श्री वर्मा ने आदेश दिया और चारों का मुँह काला करवा दिया गया एवं गधे बिठाकर देश से (उज्जैनी) से निकाल दिया गया।

प्रिय आत्मन्!

जैसे अनंतानुबंधी की कषायों मिथ्यात्व पर सवार होकर निकाल दी जाती है। उसी तरहर से यह चारों मंत्री गधे पर सवार होकर के चल दिए नगर से बाहर, देश निकाले की ओर, देश निकाला दे दिया। आखिर किसी ना किसी का तो सहारा लेना ही है, यहाँ से निकाल कर के राजा श्री वर्मा को तो ऐसा लगा, कि मानो मुझे सम्यग्दर्शन मिल गया। क्योंकि जब चारों कषायें निकल जाती हैं, तो जीव रूपी राजा को सम्यग्दर्शन मिल जाता है। और मिलते ही वह मिथ्यात्व चल देता है।

देखिए– ना इधर का, ना उधर का, जैसे–चूने में हल्दी मिल गई हो। जब चूने में हल्दी मिल जाती है, ना तो रंग सफेद रहता है, ना पीला रहता है, और देखते ही देखते उसकार रंग बदल गया ये चारों मंत्री चलकर हस्तिनापुर पहुँचे, जहाँ राजा पद्मरथ राज्य कर रहे हैं। मंत्रियों के जाते ही, मंत्री ने पूँछा महाराज! आप परेशान क्यों है? हरिबल राजा से परेशान हूँ। इतनी सी परेशानी। मंत्री गए, छल कपट से हरिबल राजा को पकड़कर लाए और पद्मरथ के चरणों में डाल दिया। पद्मरथ प्रसन्न होकर कहता है, बोलो मंत्रियों तुम्हारे लिए क्या चाहिए? सात दिन के श्रम में मैं तुमको मुँह माँगा वर देता हूँ। और क्या चाहिए? महाराज! अपना वर अपने पास रखिए समय आने पर ले लूँगा।

प्रिय आत्मन्!

कभी दुर्जनों के लिए ये वचन नहीं देना चाहिए, न जाने कब क्या माँग बैठें। वे कभी किसी का भला नहीं चाहते हैं, और वह कषायें कभी किसी का भला नहीं करती हैं। कषायों के वश होकर न कुछ देना चाहिए, न लेना चाहिए, न कषायों पर विश्वास करना चाहिए। ये कषाएँ भी चार, मंत्री

भी चार। मिथ्यात्व की दशा में बुद्धि सम्यक् नहीं रहती है, और उस राजा ने दे दिया तो समय बीता और अकंपनाचार्य का संघ आ गया हस्तिनापुर में, इन्होंने देखा, अहो! ये संघ, यदि मैं अभी कोई संकट लाता हूँ, तो जैसे जीवराज श्री वर्मा ने निकाल दिया, उसी तरह से ये भी निकाल देगा यहाँ से धक्के खाने पड़ेंगे, हो न हो कुछ दिन रूका जाए। रुकने के बाद ज्ञान हो गया कि पूरा संघ वही का वही है।

प्रिय आत्मन्!

छः महीना से ज्यादा चलने वाली कषायें अनंतानुबंधी होती हैं, और इन मंत्रियों की कषायें कई वर्षों से चली आ रही थीं और चलते-चलते फली भूत हुई राजा से कहा-महाराज आपके श्री चरणों की कृपा से हम सब सुखी हैं। हम चाहते हैं, कि आपने जो वर दिया था वह याद आ रहा था, कहिए मंत्री, बढ़ी प्रसन्नता है जो चुकाना है उसमें देर क्या? माँग लीजिए जो चाहो वह मिल जाएगा, महाराज मात्र सात दिनों के लिए राज्य चाहता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

राजा नहीं जानता था, क्या करेंगे ये सात दिन का राज्य पाकर और राज्य पाते ही सात दिनों का, योजना बद्ध तरीके से इन्होंने सात सौ मुनियों को वैसे घेर लिया जैसा असंख्यात कर्म किसी जीव को घेर लेते हैं, या यों कहिए, जैसे- कांटे, फूल को घेर लेते हैं। मुनियों को घेर करके रख लिया और घेरते ही, या यों कहिए, कि प्रिय आत्मन् वह मुनियों के चारों ओर नरमेध यज्ञ की रचना करने लगा, मुनिराजों पर उपसर्ग करने लगा। जब श्रावकों ने सुना - कि मुनिराज के ऊपर उपसर्ग है, तो किसी ने भी अन्न जल को ग्रहण नहीं किया। हो भी कैसे सकता है, ये प्राण देने वाले श्रावक जलपान क्या करेंगे? जो अपने गुरु के लिए प्राण देते हैं, जो अपने गुरु के लिए जान देने को समर्पित रहते हैं, यदि वे भोजन का त्याग कर दें तो समाज का बच्चा-बच्चा जलपान का त्यागकर राजा के पास जाता है।

राजा आपके राज्य में कैसा अन्याय हो रहा है। आपके पिता मुनिराज महापद्म, आपका छोटा भाई मुनि विष्णुकुमार और आपके क्या हो गया लेकिन कौन सुने, वह राजा बैठा वह भी जानता था, मैंने सात दिनों को राज्य दे दिया, लेकिन प्रिय आत्मन्! इतना सत्यवादी बनना जैन आगम में नहीं बताया है, देशव्रती को भी बताया है, कि यदि सत्य भी छूटे तो छोड़ देना लेकिन सत्य महाव्रती की रक्षा कर लेना। लेकिन वहाँ सम्यक् मिथ्यात्व की दशा चल रही थी। कहाँ से बुद्धि, जागती, बुद्धि देने वाले भी आ गए। साक्षात् इधर सातवाँ दिन चल रहा था आकाश में नक्षत्र कांपने लगे, कई मुनिराज बेहोश हो गए धुयें की चपेट में कई मुनिराज के गले अवरूद्ध हो गए, कई

मुनिराज ध्यान में तो स्थित है, पर पता नहीं होश में हैं कि बेहोश हैं। अंदर से बाहर से ऐसा लग रहा था, सब मृतक के समान हो गए। भले ही स्वरूप में जागृत हों।

प्रिय आत्मन्!

आकाश का नक्षत्र काँपते देखा, मिथिला नगरी में विराजमान, ध्यान पर विराजमान मुनिराज सागरचन्द्र ने, ज्यों ही आकाशमंडल को देखा नैमित्तिक के ज्ञाता ने जान लिया। अहो! आज इस वसुंधा पर बहुत भारी उपसर्ग। रात्रि में ही उनके मुख से निकल आया। हाय महाकष्ट महाकष्ट। पास में विराजित छुल्लक पुष्पदंत ने कहा – महाराज आपके मुख से मैंने रात्रि में एक वचन नहीं सुना है और आपके मुख से क्या वचन निकले, कष्ट महाकष्ट। आपके मुख से कष्ट शब्द बोलिए भगवन क्या है? सात सौ मुनिराजों के ऊपर महाकष्ट हो रहा है। हस्तिनापुर में जिस नगरी में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ अरहनाथ जैसे तीर्थंकर जन्में उस नगरी में। हे भगवन्! क्या उपाय है, आप बताइए। सागरचन्द्र बोले – जाओ विष्णुकुमार मुनिराज पर्वत पर विराजमान हैं, उस पर्वत पर जाकर के उनसे निवेदन करो, उनको ज्ञान नहीं है कि उनको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई है और ऋद्धि के बल से आप उपसर्ग दूर कर सकते है।

धन्य हो मुनिराज साधना करते हैं, ऋद्धि के लिए नहीं करते हैं, तपस्या से ऋद्धि सिद्ध हो जाती है, उन्हें पता भी नहीं पड़ता हैं। लेकिन आप तो धर्म करते हैं तो पहले माँगते हैं।

प्रिय आत्मन्!

पुष्पदंत क्षुल्लक रातों रात पहुँचे ओर जाकर मुनिराज विष्णुकुमार के पास बोले–महाराज ध्यान छोड़िए अब ये ध्यान करने का समय नहीं हैं, विष्णुकुमार बोले – क्या बात हैं क्षुल्लकजी। क्षुल्लकजी बोले मुझे सागरचन्द्राचासर्य ने भेजा है, आपकी सेवा में। विष्णुकुमार की आँखे खुलती हैं, सुनाईए हस्तिनापुर में सात सौ मुनिराजों के ऊपर घोर उपसर्ग हो रहा है, ये तारामण्डल काँप रहा है। विष्णुकुमार ने कहा सागरचन्द्राचार्य के वचन सत्य हैं, पर मैं क्या उपाय कर सकता हूँ। हे महाराज! आप के लिए विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो चुकी है और आप ही इसका उपाय करेंगे। परीक्षण किया तो एक हाथ फैलाया, तो फैसला गया जान लिया सागरचन्द्रगाचार्य का एक–एक वचन सत्य है, और अब उपसर्ग निवारण मुझे करना है। चले आए सबसे पहले राजा पद्मरथ के पास, मानो स्वयं सम्यग्दर्शन ही आया हो, या स्वयं सम्यग्ज्ञान ही आया हो।

वह ज्ञान की प्रतिमूर्ति आ गए, लेकिन समझाया। हे पद्मरथ तुझे याद है, तेरे पिता मुनिराज, तेरा छोटा भाई मुनिराज और तेरे राज्य में ये क्या हो रहा है? भाई मैं क्या करूँ? मैंने राज्य दे दिया है। तुमने राज्य दे दिया, इसलिए तुम स्त्रियों की शरण में इधर महल में बैठे हो, अच्छा होता

कि तुम जहर खाकर मर जाते, अच्छा होता कि चुल्लु भर पानी में डूब जाते, अच्छा होता कि तुम काला मुँह करके इसर देश से निकल जाते। लेकिन तुम्हारे रहते हुए मुनिराजों पर उपसर्ग, धिक्कार है। तुमने ये चूड़ियाँ कहाँ से पहन ली। ये कायरता कहाँ से आ गयी तुम जैसे वीर पुत्र, तुमने पिता पर कलंक लगाया, तुमने माँ पर कलंक लगाया, और तुमने अपने भाई पर कलंक लगाया।

जैन धर्म, जैन संस्कृति पर कलंक लगाया, धिक्कार है तुम्हें वह पद्मरथ चरणों में गिरता है, भाई आप ही रक्षा कीजिए आप जो करेंगे वो मुझे स्वीकार है, आप जो कहेंगे वो मुझे स्वीकार है। विष्णुकुमार कहते है – तुम जैसे कायरों से अब मैं क्या कहूँ। चल देता है, जहाँ पर यज्ञ चल रहा था। वे जानते हैं, जीतना किससे है छल को भी छल से जीता जाता है, लोहे को लोहा काटता है, और देखते ही देखते, ऋद्धि के द्वारा छोटा सा रूप बनाया ब्राह्मण का, जाकर के पहुँच गए विष्णुकुमार ब्राह्मण आया है, इतना सुंदर रूप बलि बोला – कहिए तुम्हें क्या चाहिए है, जो माँगोगे वह मिलेगा।

हे मंत्री! जो माँगूगा वह मिलेगा, आप सत्य बोलते हैं आप को देखकर के तो मेरा मन प्रमोदित हो रहा है। हे विप्र तुम जैसा विप्र इस धरा पर और कौन होगा। माँगो, माँगो हे विप्र। विप्र ने माँगा मात्र मुझे अपनेस पैर से तीन डग जमीन चाहिए। हे विप्र! तू छोटा, तेरी बुद्धि छोटी। माँगा तो क्या माँगा अरे माँगना था, तो दिन-तीन नगर माँग लेता, गाँव माँग लेता। नहीं मैं विप्र हूँ, ब्राह्मण हूँ, एक बार बोलता हूँ, दो बार नहीं बोलता हूँ, तुमको हो तो दो, नहीं तो मैं चला। नहीं-नहीं-नहीं आप स्थल से नहीं जाईए, आपको जो चाहिए लीजिए।

तीन डग का क्या करेंगे, कम से कम दो तीन एकड़ ले लो ज्यादा नहीं तो। नहीं तीन ही डग चाहिये। मैं अपने डग से नाप लूँगा। अरे विप्र धिक्कार तुमको, कम से कम मेरी डग से लेता तो ठीक था, नहीं मंत्रीवर आपको देना है, तो वचन दीजिए और अंजली जल दीजिए और शास्त्रोक्त मंत्र बोलते हुए दीजिए, जल संकल्प लीजिए, मैं बिना संकल्प के कोई चीज नहीं लेता। संकल्प दिलाया, तीन डग जमीन अपने डग से नाप लो।

विष्णुकुमार जी ने ज्यों ही पहला पैर फैलाया पहला पैर मानुषोत्तर पर्वत पर दूसरा पैर सुमेरु पर्वत पर, पूरे पैंतालीस लाख योजन प्रमाण मनुष्य लोक को नाप लिया, दो डग में। बोलो मंत्री- अब तीसरा मेरा पैर कहाँ रखा जाए? बलि बोला – ये तीसरे पैर की जगह तो मेरी पीठ के सिवा और क्या हो सकती है? ज्यों ही विष्णु कुमार ने तीसरा चरण रखना चाहा, सारी धरती काँप उठी, सारे आकाश में जय जयकारों के साथ क्षमा याचना, हे मुनिराज क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए और दया से मुनिराज ने अपना पग ऊपर उठा लिया।

मुनिराज किसी को देखते नहीं है, किसी पर अपना पैर नहीं रखते है, मुनिराज के पैरों पर

सब अपना माथ जरूर रखते हैं, पर मुनिराज अपना पैर किसी छोटे से छोटे जीव पर भी नहीं रखते हैं, फिर बलि तुम पर क्या रखते, लेकिन जनता को दिखना था और बलि का अभिमान मिटाना था। सारे नगर में वह वार्ता तत्काल पहुँच गयी, वह उपसर्ग दूर होने लगा, तत्काल उपसर्ग दूर हुआ, मुनिराज के ऊपर से पूरी जनता ने वह उपसर्ग दूर किया, जहाँ-तहाँ से मुनिराजों को निकाला। निकालकर के शुद्ध प्रक्षाल किया, आज के दिन सात दिन बाद आहारचर्या के लिए पूरा संघ निकला। इस तरह जो मुनिराज संकट में पड़े थे, सात दिन से जैन धर्म संकट में पड़ा था, वह दूर हुआ।

प्रिय आत्मन्!

ध्यान दो मुनिराज विष्णुकुमार ने कुछ समय के लिए अपने मुनि वेष को तो छोड़ दिया। लेकिन धन्य हैं उनके मन में विचार नहीं जागा कि अकंपनाचार्य का संघ है अपना नहीं है, अपना होता तो अपन उपसर्ग दूर करते। धन्य हैं वे अकंप विष्णुकुमार जो कहते हैं, कि संघ किसी नाम का नहीं होता, ये श्रमण संघ तो भगवान आदिनाथ का संघ है, और ये संकट मात्र आदिनाथ के संघ पर आया है, और ये संकट रत्नत्रय पर आया है। संघ न किसी संत का होता है संघ तो मात्र रत्नत्रय का होता है। **''गुण संघाओं संघो''** गुणों के समुदाय का नाम संघ होता है।

प्रिय आत्मन्!

आज के दिन सम्यग्दर्शन की रक्षा हुई थी, सम्यग्ज्ञान की रक्षा हुई थी, सम्यग्चारित्र की रक्षा की थी मुनिराज विष्णुकुमार के द्वारा। धन्य है ऐसा वात्सल्य, जिन्होंने अपने कुछ समय के लिए मुनिपद का त्याग करके भी मुनियों की रक्षा की थी। ऐसे वात्सल्य अंग के धारी विष्णुकुमार इस धरा पर सदा जयवन्त रहें। वे हमको प्रेरणा देकर गए हैं, कि प्रिय आत्मन् अगर प्राण भी देना पड़े तो प्राण दे देना लेकिन संस्कृति, सभ्यता संत की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर करके अने धर्म की रक्षा कर लेना। यह हमारे आचार्य महाराज ने कहा हे मित्रो! सम्यक् धर्मगुरु या धर्मायत्नों पर कभी-कभी यदि दुष्ट लोग आक्रमण करें, तो पीछे नहीं हटना। चाहे धनमाल लुटाना हो, चाहे वचनादिस पलटना हो, अथवा सर्वस्व समपर्ण कर खुदको ही जीवित मरना हो।

प्रिय आत्मन्!

तब भी अपने आप में चाहिए कि इन रगों में ऐसा रक्त बहाएँ, कि आपकी प्रत्येक रक्त की धमनियों में धर्म के प्रति समर्पण रहे। प्रत्येक नसों में सम्यग्दर्शन दौड़े और जब आस्था का (श्रद्धा का) दर्शन दौड़ता है, तो देव शास्त्र गुरु की रक्षा में यह समर्पण बन जाता है। ध्यान दीजिए, इस क्रम में आज के दिन मुनिराजों की आहारचर्या यह हमको दर्शाती है। आज हमारे चाहे गिरनार हों,

चाहे शिखर जी हों, चाहे संत हो। किसी के ऊपर पर कोई उपसर्ग आता है, तो हमें किस तरह से उसे हिलमिल करके किस तरह से विवेक पूर्वक दूर करना हैं।

प्रिय आत्मन्!

अवसर आये तो वरदान और दान की अपेक्षा कभी बलिदान देने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, क्योंकि ऐसे अवसर पर भी हमें यदि मुनिराज विष्णुकुमार ने एक बलिदान न दिया होता, तो काश हमारे पास वे सात सौ मुनिराज न होते और आगे कोई दीक्षा लेने वाला भी कोई तैयार नहीं होता, इसलिए प्रिय आत्मन् आपके सामने यदि मुनिराज खड़े हैं तो मात्र वह विष्णुकुमार।

हे माँ – जिनवाणी जग–कल्याणी आपकी कृपा से हम सभी जीव संसार समुद्र से पार हो रहे हैं। हे गुरुदेव! आपका प्रसाद अक्षर–अक्षर से अक्षय की ओर ले जा रहा है। हे गुरुजी! मेरे पास नेत्र तो थे, पर देखने की कला न थी। आपने सम्यग्दर्शन की कला दी। पांव थे पर चरण नहीं थे, आपने एक नहीं तेरह प्रकार के सम्यक् चरण दिए। मेरे पास करकमल थे, पर ये करकमल प्रभु की प्रार्थना में कब काम आते थे आपकी कृपा से ये करकमल प्रभु की प्रार्थना में उपयोग आए। माथा तो था पर आपने इस मस्तिष्क को झुकना सिखाया। सद्विचारों से भरना सिखाया और भरा भी।

हे गुरुदेव! आप अंधकार से प्रकाश की ओर लेकर आए हैं। आपके असीम उपकारों को क्या कोई शिष्य भुला पाएगा? आपने पाप पंक्ति से निकलकर के पंकज बनाया। आपने सीप में रखकर के मोती बनाया और दीपक में ज्योति की तरह प्रज्जवलित किया। हे गुरुदेव! आपकी असीम अनुकंपा इस संस्कृति को इस तरह प्राप्त होती रहे। यह गुरु परम्परा भगवान महावीर के बाद अखण्ड रूप से प्रवाहित होती रही है। धन्य हैं वे भद्रबाहु स्वामी, धन्य है वो शिष्य चंद्रगुप्त, जिस तरह चन्द्रगुप्त ने गुरु सेवा की, उसी तरह हम सभी शिष्य अपने गुरु की सेवा में तन्मय रहते हुए जीवन को सफल करें।

हे गुरुदेव! हाथों में इतनी शक्ति जरुर देना, ये हाथ प्रभु का अभिषेक करते रहें, गुरु को दान देते रहें, गुरु की चरण सेवा कर सकें। हे गुरु! पाँव में इतनी शक्ति देना कि तीर्थ यात्रा अबाध गति से होती रहे। कलम में इतनी स्याही अवश्य देते रहना, कि मेरे कभी कलम आपके गुण गान लिखने में रुके न। जिव्हा में इतनी शक्ति देना, सदा ऊँकार का नाद करती रहे। ये कंठ कुछ निकाल सके, लेकिन अंतिम श्वॉस तक णमोकार–णमोकार–णमोकार का जाप करता रहे। हे गुरुदेव! इतनी शक्ति और देना कि समाधि के पूर्व ये शिष्य आपके चरणों तक आ सकें। हे गुरुदेव! आपने सम्यग्दर्शन दिया क्षायिक सम्यग्दर्शन भी देना। आपने सम्यग्ज्ञान दिया, इतनी कृपा और करना यह सम्यग्ज्ञान केवल ज्ञान में परिवर्तित हो। आपने सम्यग्चारित्र दिया इतनी कृपा और करना कि

आपकी कृपा से ये सम्यक्चारित्र, यथाख्यात् चारित्र में परिणमन करे। हे गुरुदेव! आपने साधन देकर साधना सिखाई, अब सिद्ध बनने का मार्ग भी आपके द्वारा ही प्राप्त हो। आपके पद् हमारे लिए पूज्य है, अतएव आपके पदों को हृदय में धारणा करते हुए हम पूज्यपाद के पूज्य पदों को कर्णांजली से पान करते हुए पावन रक्षाबंधन का पर्व हम सब के लिए महामंगलमय हो।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

संस्कृति के निर्माण में साहित्य का महत्व

पूज्य बड़े बाबा जी मेरे, ये वरदान वरो।
हम भक्तो को अपने जैसा, हे भगवान! करो।।
भक्त आपके कुंडलपुर में, कुण्डल से झूमें।
कुण्डलपुर के भव्य जिनालय, लोक शिखर चूमें।।
दर्शन का फल, सम्यग्दर्शन, है अज्ञान हरो।
हम भक्तों को अपने जैसा, हे भगवान्! करो।।
पूज्य बड़े बाबा जी मेरे, ये वरदान वरो।
हम भक्तों को अपने जैसा, हे भगवान! करो।।

प्रिय आत्मन्! शास्त्र संत की संतान होते हैं। जिस तरह आपके घर में नन्हा शिशु आपको आनदं दे सकता है, पर काम कब आएगा? 25 साल के बाद आता है। शास्त्र की रक्षा, शास्त्र का संवर्द्धन शिशु की तरह करना होता है। उसके जन्म के लिए जिस तरह एक माँ को नौ माह तक पीड़ा के द्वार से गुजरना पड़ता है, उसी तरह जब साधु संत या साहित्यकार अर्न्तमन की पीड़ाओं से गुजरता है, तब एक कृति का जन्म होता है, और जब वह कृति जन्म ले लेती है, तो पूरे विश्व की संस्कृति को जन्म देने में समर्थ हो जाती है।

प्रिय आत्मन्! लेखन मन का प्रकाशन केन्द्र है। जो लिख सकता है, वह मन को प्रकाशित कर सकता है और जो लिख नहीं सकता है, वह मन को प्रकाशित नहीं कर सकता है। जितना उज्ज्वल अर्न्तमन और अन्तरात्मा है, लिख करके अपनी आत्मा के साथ विश्व की अनेक आत्माओं को हम उज्ज्वल व निर्मल बना सकते हैं। यद्यपि लेखक चार दीवारों के अंदर लिखता है। उसके द्वारा लिखी गई जिनवाणी उसको अनंत चतुष्टय दिलाने में समर्थ हो जाती है।

आर्यिका ज्ञानमति माताजी कहती है – जिनवाणी का एक अक्षर लिख देना भी सरस्वती की महान अनुकम्पा का प्रसाद है। साहित्य वह है जो हित से सहित हो। जिसमें विश्व हित की भावना भरी होती है वह साहित्य होता है। सच्चा साहित्य तो हमारा साहित्य होता है। जिस आत्मा ने विश्व के हित की भावनाओं को अपने अंतस् में भर लिया है, तब उसकी आत्मा से निकली हुई वर्गणाएँ साहित्य हो जाती हैं।

प्रिय आत्मन्! भगवान् महावीर स्वामी ने हमें कितना दिया है और हम उसमें से कितना बटोर पाये। भगवान् महावीर स्वामी की वाणी ऐसे समय में थी, जबकि हमारे हाथ में कोई घर नहीं था रहने को, क्योंकि कहीं – जैसे आप वन विहार करने जाएँ, वहाँ पर बादल बरस जाए, तो आप पानी भर पाते हैं क्या? महावीर स्वामी की वाणी के समय श्रोता इतने प्रबुद्ध थे कि उन प्रबुद्ध श्रोताओं को लिखने की आवश्यकता नहीं हुई। पर महावीर स्वामी के पश्चात् जब धरसेन आचार्य ने देखा कि ज्ञान ह्रास को प्राप्त हो रहा है और इसी तरह ह्रास को प्राप्त होता रहा, तो फिर संस्कृति, सभ्यता, समाज का क्या होगा? जहाँ का साहित्य अमर है, वहाँ की समाज, संस्कृति समृद्ध होती है। साहित्य ही समग्र संस्कृति का संस्थापक या निर्माता होता हैं।

साहित्य का आदित्य जहाँ उदय को प्राप्त होता है, वहाँ समाजोदय और सर्वोदय होता है। प्रकृति के द्वार साहित्य के लिये खुले हैं। भारतीय साहित्य में जैने साहित्य न हो, तो भारतीय साहित्य अधूरा है, चाहे वह जैन ज्योतिष हो, चाहे जैन गणित। जैन गणित ने भारतीय साहित्य ही नहीं विश्व के समग्र साहित्य पर सिमौर बनकर के स्वर्णिम कलश स्थापित किया है।

प्रिय आत्मन्! हमारे आचार्यो ने वन में रहकर के जो विशुद्ध ऊर्जा प्राप्त की है आत्मा के चिंतन, मंथन और वीतरागता के परिवेश में अपने आप को डालकर जो विशुद्ध वर्गणाएँ प्राप्त की, उन विशुद्ध वर्गणाओं के साथ यह चिंतन आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। और वह चिंतन कितना अमर चिंतन बन गया, जो प्राणी मात्र को सदा जागृत करता रहता है, प्रकाश देता है, अंधकार से हटाता है, पुण्य का पथ दिखलाता है, सभ्यता और संस्कार की गोद में प्रवेश कराता है।

प्रिय आत्मन्! एक–एक अक्षर हमें अक्षय पद देने में समर्थ है। जिनवाणी का मात्र एक पद हमारी हर आपद को नष्ट करने में समर्थ है। माँ जिनवाणी के पदों को जो हृदय में धारण करता है वह तीन लोक के शिखर पर पहुँचता है।

जिनवाणी स्तुति में मैंने पढ़ा – माता तू जगा देना। माता अच्छी है, जगा देती है। जगाती है। पर बेटे तू माँ के पास सोयेगा, तो जगा देगी। यदि तूने माँ को घर से निकाल दिया, या तू माँ के घर में ही नहीं रहेगा अथवा माँ को घर में ही नहीं रखेगो, तो माँ कहाँ जगाने पहुँचेगी।

शब्द रचना इतनी प्यारी है! माता तू जगा देना। माता कहती है– बेटे तुम मुझे हृदय में जगह दो रहने के लिए, तो मैं तुझे जगा दूँगी और ऐसे जगाऊँगी जिस तरह से महावीर के अंदर केवलज्ञान जागा और महावीर ने सारे जग को जगमगा दिया था। उसी तरह तुमको मैं जगाऊँगी। माँ जगाने के लिये ही होती है। तुम माँ को जगह दो। माँ तुम्हें जगा देगी।

हे साधु! प्रभावना की क्रिया के पीछे साधना की माँ को मत छोड़ देना। ख्याति की प्रिया के पीछे सम्यग्ज्ञान रूपी जिनवाणी माँ को नहीं छोड़ देना। संसार में माँ जिनवाणी ही, अवलम्बन है, सहारा है। जो हमारे लिये जीवतत्त्व का प्रबोधन देती है। अजीव देह का विवेचन कराती है, कर्म के आस्रव को रोकती है, बंध को नष्ट करती है, संवर पथ प्रदान करती है, निर्जरा करती है, विश्व के कल्याण को देने वाली है।

जिनवाणी माँ की अनुकम्पा है आज हमारे सामने गुरु हैं, जिनवाणी की अनुकम्पा है कि हम भगवान् की अमृतवाणी रूपी पेयजल का पान करेंगे। ये भगवान् जो प्रतिष्ठित हुए हैं, जिनवाणी की अनुकम्पा है, यदि जिनवाणी में भगवान को प्रतिष्ठित करने की विधि न होती, तो आप भी कोई पाटा लगाकर रख देते। जिनवाणी की कृपा है कि तुम्हें भगवान मिले हैं और जिनवाणी – जिन की कृपा से मिली है। पंचमकाल में वह मात्र एक दिगम्बर साधु की कृपा से मिली है।

मैं आपसे प्रश्न करता हूँ, आप व्यापारी हैं, क्यों भाई? आपने अपनी पच्चीसवीं पीढ़ी के लिये क्या किया। आपने जीवन में इतना कमाया, आप अपने बेटे के लिये दे जाएँगे, लेकिन पच्चीसवीं पीढ़ी के लिये, पचासवीं पीढ़ी के लिये, क्या दे जाएँगे?

प्रिय आत्मन्! मैं कुंदकुंद स्वामी की पच्चीसवीं – पचासवीं पीढ़ी का साधु हूँ। मेरी परम्परा के अधिनायक कुंदकुंद स्वामी ने समयसार लिखकर दिया, जो पूरे विश्व के लिये प्रकाश दे रहा है। कुंदकुंद स्वामी ने नियमसार लिखा, प्रवचनसार लिखा, अष्टपाहुड लिखा, जानते थे मेरी इस पीढ़ी में कोई पैदा होगा, उसको मार्गदर्शन कौन देगा? उस समय कुंदकुंद देकर गये थे, बोलो–क्या आप इस समय ऐसा कुछ कर पाए कि आप अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए इतना दे पाओगे। मकान बनवा देंगे तीसरी पीढ़ी के काम नहीं आएगा, लेकिन संत के द्वारा लिखा गया साहित्य अभी साढ़े अठारह हजार वर्ष जिएगा। कितना? पंचमकाल के अंत–अंत तक ये साहित्य हमको लेकर जायेगा।

प्रिय आत्मन्! कुंदकुंद स्वामी ने हजार ग्रन्थ नहीं लिखे, समयसार एक ही लिखा था दूसरा नहीं। कितना? एक ही लिखा था। कोई भी लेखक अपनी दो प्रतियाँ अलग–अलग समय में एक सी नहीं लिख सकता। किसी से पूछ लेना, क्योंकि जब भी दूसरी लिखने बैठेगा उसमें नया

परिवर्तन हो जाएगा। इसलिए प्रतिलिपि करने वाले अलग होते हैं और लेखक अलग होते हैं।

कुंदकुंद ने एक लिखा, लेकिन कुंदकुंद के समक्ष ऐसी दूरदर्शिता, सूझ-बूझ वाले कुछ ऐसे श्रावक होंगे, जिन्होंने कुंदकुंद के साहित्य का प्रतिलेखन करवाया। ध्यान देना गुरु की पूजा करना अलग चीज हे, लेकिन गुरु को स्थायी रखना एक अलग चीज है। जो गुरु तुम्हारे लिये मिले हैं, चाहे आचार्य विराग सागर हों चाहे कोई भी गुरु हों, मिले हैं। अपने गुरु को सौ साल तक जीवित नहीं रखोगे क्या ? जब किसी का जन्म दिवस आता है तक कहते हैं तुम जिओ हजारों साल, साल के दिन हो कई हजार। ध्यान देना - आपकी वाणी तो सही होती है, लेकिन आपकी चर्या में अंतर आ सकता है।

कुंदकुंद स्वामी को लगभग 2000 साल निकल गये हैं। हमारे पूर्ववर्ती ज्ञान मूर्तियों ने और हमारे पूर्ववर्ती दान मूर्तियों ने कुंदकुंद स्वामी को हजारों साल चलाया है। जीते-जीते कुंदकुंद स्वामी को आज तक दो हजार वर्ष हो गए और अमर हैं। इसी तरह से हमारे कुंदकुंद जैसे आचार्य आदि वर्तमान के हैं। **पंडित हीरालाल जी कहते थे - मूर्ति अगर खराब हो जाएगरी, तो मूर्ति नई बन जाएगी,** यदि मूर्ति खण्डित हो जाएगी, तो नयी प्रतिष्ठित हो जाएगी, यदि मंदिर पुराना हो जाएगा, तो मंदिर नए स्थान पर और अच्छा बन जाएगा, लेकिन यदि एक शास्त्र या विद्वान हमसे बिछुड़ गया, तो शास्त्र लिखने वाले को नया जन्म आप नहीं दे सकतेर हैं। इसलिए मूर्ति जितनी महत्त्वपूर्ण है, मंदिर जितना महत्वपूर्ण है उससे ज्यादा महत्वपूर्ण संस्कृति, सभ्यता और समाज के लिये, राष्ट्र-विश्व के लिये शास्त्र है।

प्रिय आत्मन्! शास्त्र हमारे पुरातत्त्व हैं। कुंदकुंद स्वामी ने कोई मंदिर नहीं बनवाया, पूज्यपाद स्वामी ने कोई मंदिर नहीं बनवाया, लेकिन पूज्यपाद स्वामी ने एक सर्वार्थसिद्धि लिखी, इष्टोपदेश लिखा वह पचास श्लोक का ग्रंथ आज पाँच लाख हो गए। जिनके पचास श्लोक के ग्रंथ की आज देश में पाँच लाख प्रतिलिपि मिल जाएगी।

प्रिय आत्मन्! देखो जो साहित्य है, वह सदा रहेगा, जितने भावों से बनाओगे। मंदिर एक जगह बनेगा, मूर्ति एक जगह रहेगी, लेकिन साहित्य चलता फिरता रहेगा। किसी ने कहा था - आप तो ऐसे जिओ कि आपके जीने पर लोग लिखें या ऐसा लिखो की लोग आपके लिखने पर जिएँ। व्यक्ति को दो ही काम करना चाहिए कि आपका जीवन ऐसा हो कि आपके जीने पर लोग लेख लिखने तैयार हो जाएँ कि मुझे कैसा लिखना है या ऐसा लिखूँ कि आपके लिखनेस से अन्य लेखक प्रेरणा पाएँ।

यदि हमारे पास समन्तभद्र स्वामी न होते और श्रावकचार न दे गए होते, तो आपसे मैं यह बात नहीं कह सकता था कि आप रात्रि भोजन का त्याग करो, आपसे नहीं बोल सकता था कि आप पानी छानकर पियो, आपसे नहीं कह सकता था कि मंदिर जाओ, क्यों ? आप कहते महाराजश्री ये किस शास्त्र में लिखा है। कितनी दूरगामी सोच के साथ पूरी संस्कृति और सभ्यता का निर्वाहन कर गई ऐसी वसीयत। शास्त्र वह वसीयत है, जो एक के नाम नहीं पूरे विश्व के नाम लिखी जाती है। शास्त्र वह संदेश है जो समाज, देश, राष्ट्र, विश्व के नाम लिखा जाता है।

प्रिय आत्मन् ! कितने पवित्र विचारों का जन्म होता है, जब एक कमरे के अंदर साधु बैठता है और जब लिखने बैठता है, तो पूरा विश्व उसके सामने होता है। जब आप बैठते हैं, तो आपके सामने पत्नी की चिंता होती है कभी परिवार की चिंता होती है या दुकान की चिंता होती है। लेकिन जब साधु लिखने बैठता है तो उसके सामने चिंता नहीं होती है। विश्व कल्याण का चिंतन होता है। विश्व कल्याण के चिंतन से जब वह भरते हैं, तब अपने चिंतन को उड़ेलने की कोशिश करते हैं और यों कहिए कि अन्तरात्मा की अनुभूतियों का पंजीकरण है – शास्त्र। जो उन्होंने अनुभव किया है, आपको देने का प्रयास करते हैं, कभी तो ऐसा लगता है – शास्त्र क्या है, '' आत्मघट साधु ने अपने अन्दर जितना भरा है उसमें से कुछ छलक गया तो आपको शास्त्र के रूप में मिल गया। जो छलक गया वो आपको मिल गया, जो नहीं छलका वो उन्होंने अंदर में कर लिया।

प्रिय आत्मन् ! मैंने लार्डगंज में कहा था आप पंचकल्याणक करा लीजिए पंचकल्याणक के पांच दिन के बाद छठवें दिन आपको मंदिर में प्रतिमा मिलेगी। लेकिन एक शास्त्र लिख दीजिए, शास्त्र लिखने के बाद आपको पांचवे दिन से संस्कृति, सभ्यता और एक उच्च शिक्षित समाज का निर्माण मिलेगा। शास्त्राभ्यास समाधि भक्ति का प्रथम शब्द है, ''शास्त्रों का अभ्यास हो।

आचार्य देव कहते हैं –

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपति–नुतिः संगति सर्वदार्येः।

सद्वृत्तानां गुणगण–कथा, दोषवादे च मौनम्।।

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से निर्वाण की सिद्धि होती है, इसलिए आप अभ्यास करो। शास्त्र की पूजा में हम रोज पढ़ते हैं, क्या पढ़ते हैं ? प्यारा सा शब्द पढ़ते हैं – रवि शशि न हरै सो तम हराय। **''शास्त्रो का हो पठन सुखदा''**

सुख को देने वाला है – शास्त्रों का पठन। आचार्य देव से पूँछा– हे भगवन् हमारा दुःख कब

मिटेगा? आचार्य देव कहते हैं – कभी नहीं मिटेगा। क्यों नहीं मिटेगा? तत्त्व ज्ञान हेय। **तत्त्वज्ञान हीनानां, दु:खमेव शाश्वतम्।** यदि तुम्हें तत्त्व का ज्ञान नहीं हुआ तो तुम्हारा दुख संसार में काई मिटा नहीं पाएगा और अगर तत्त्व का ज्ञान हो गया तो तुम्हें संसार में कोई दु:ख नहीं दे सकता।

प्रिय आत्मन्! शास्त्र क्या हैं? तत्त्वज्ञान का संग्रह हैं। तत्त्व ज्ञान से परिपूर्ण हैं ये अरिहंतों की वाणी, तीर्थंकारों की वाणी। पूर्वाचार्यों की परम्परा से चली आयी है और वह परम्परा चलते-चलते ऐसे जीवित हो उठती है। आप यदि उसे देखें आज से पचास साल पहले आपके पास षट्खण्डागम ग्रन्थ नहीं था, दुर्लभ था। पचास साल पहले मात्र मूढ़बद्री में मिला था और पूरे भारत वर्ष में नहीं था। नहीं था तो पढ़ नहीं पाए। लघुतत्त्वस्फोट ग्रन्थ आपके पास पचास साल पहले नहीं था, पच्चीस साल पहले नहीं था। पंडित पन्नालालजी ने उसकी खोज की और ग्रन्थ पाया तब उसका प्रकाशन हुआ। इस संस्कृति में जब से साधु आए। साधुओं की प्रेरणा से साहित्य का प्रकाशन हुआ, तब से ये मानकर चलिए भारतीय संस्कृति हजारों साल के लिए जीवित कर दी साधुओं ने।

आचार्य विमलसागर जी, आचार्य विरागसागर के गुरु थे, विमलसागर जी का एक नियम हर चातुर्मास में एक शास्त्र के प्रकाशन की प्रेरणा देना था। आचार्य अजितसागर महाराज का नियम हर चातुर्मास की उपलब्धि में एक शास्त्र का प्रकाशन कराना। ये वही शास्त्र सुरक्षित रूप से आए, ताकि उन्हें हम पढ़ सकते हैं ये ध्यान रख लेना, जो शास्त्र आप नहीं पढ़ सकते हैं, वे शास्त्र ही आपने सँभालकर रखे थे और वह सन्मार्ग दर्शन थे।

अधिकांशत: प्रकाशक संस्थाएँ वह शास्त्र प्रकाशित करती हैं, जिनकी बिक्रि हो और जिनकी कम बिक्री हो, वह प्रकाशित नहीं करती, ये जानकारी ले लेती हैं कि इससे अर्थलाभ कितना होगा। हित तो हो ही रहा, लेकिन संस्कृति को बढ़ाया जाए यह अपेक्षा नहीं करती।

प्रिय आत्मन्! साहू शांतिप्रसाद जी ने ज्ञानपीठ की स्थापना कर दी, उन्होंने अभूतपूर्व कार्य किया है। ज्ञानपीठ के माध्यम से जैन साहित्य का पूर्ण उद्धार हुआ। जिसके साथ ही जीवराज जी का नाम लिख चुका जिन्होंने सोलापुर से ज्ञान की गंगा निकाली। जिस तरह से हिमालय की श्रेणियों से गंगा नदी का प्रवाह हुआ है उसी तरह से सोलापुर से इस जिनवाणी की गंगा का प्रवाह हुआ है।

जीवराजजी ने अपने जीवन की सम्पूर्ण संपत्ति ग्रन्थ माला को सौंप दी थी, शांतिसागर जी के पास गये। महाराज श्री मैं अपनी संपत्ति का उपयोग करना चाहता हूँ। कैसे करूँ? याद रखना- तुम्हें संपत्ति का उपयोग करना है, तुम्हारी ये संपत्ति सैकड़ों वर्ष नहीं हजारों वर्ष तक अमर रहेगी। आप ग्रन्थमाला में लगा दीजिए और आज सोलापुर के यह ग्रन्थ सब के हाथ में रहते हैं।

प्रिय आत्मन्! विदिशा के श्रीमंत सेठ लक्ष्मीचंद्र सितावराय पंचकल्याणक कराने वाले थे,

अपने परिवार की ओर से, ऐसे समय में साढूमल के पंडित हीरालाल जी को ज्ञात हुआ कि विदिशा में कोई पंचकल्याणक होने वाला है। जब हीरालालजी ने उनसे निवेदन किया कि सेठ जी पंचकल्याणक तो कभी भी हो जाएगा, लेकिन षटखण्डागम ग्रन्थ का आज तक प्रकाशन नहीं हुआ है, आपकी कृपा से प्रकाशन हो जाए। क्योंकि पंचकल्याणक का आनंद आने वाले पाँच सौ साल के लिये हो जाएगा। वहाँ के सेठ जी ने वहाँ के पंचकल्याणक का आयोजन लघुरूप करके षट्खण्डागम ग्रन्थ का प्रकाशन कराया। पंचकल्याणक रद्द करके यह कह दिया था कि हम जितना पैसा पंचकल्याणक में लगाना चाहते हैं, उतनी समग्र राशि शास्त्र के प्रकाशन में देते हैं और प्रकाशन होकर आया।

प्रिय आत्मन्! हम पूर्वाचार्यो पर ध्यान दें, आज आपके पास सुन्दर कलम आ गई है तो आप मिनटों में आलेख लिख सकते हैं, पूर्व आचार्यो के पास तो काँटे की लेखनी थी। कांटे की लेखनी से लिखने में अधिक समय लग जाता था, एक अक्षर लिखने के लिये लेखनी को दस बार घुमाना पड़ता था, यदि अ अक्षर लिखना है तो। जैसे आप सुई से लिखते हो न, सुई वाली मशीन वाले से कहें कि इस पर हमारा नाम लिख दो, कितने बार सुई चलती है, या फिर आप यदि अपने हाथ से लिखें, अपने लिये कपड़े पर नाम लिखकर देखना कितनी मेहनत होती है, सुई धागे से। उससे भी अधिक हमारे आचार्यो ने की है। ताड़ पत्र पर काँटे की लेखनी से लिख-लिख कर, कैसे सुरक्षित रखी गई।

प्रिय आत्मन्! कलिकाल सर्वज्ञ वीर सेनाचार्य ने 60 हजार श्लोक प्रमाण सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की है, कितनी की ? 60 हजार श्लोक प्रमाण, जबकि उनके पास काँटे की लेखनी थी। काश इस समय वो वीर सेनाचार्य होते तो पूरे विश्व के एकाधिपत्य लेखक माने जाते। उस समय के कलिकाल सर्वज्ञ थे, वीरसेन स्वामी।

प्रिय आत्मन! हमें जो कुछ मिला है, बहुत कम मिल पाया है, कितने ग्रन्थें का लेखन किया होगा, सोच लीजिए। हीरालाल जी का कहना था कि शास्त्रों को सुरक्षित रखना है तो इसे पूरे विश्व में वितरण कर दो। पूरे विश्व में वितरण हो गया तो सुरक्षित हो गये। क्यों ? न जाने कब, किस देश पर संकट आ जाए ? लो सुन लो। भईया जी बता रहे हैं, आचार सार की पाण्डुलिपि जर्मनी से आयी है, हमें भारत में नहीं मिली। मुनियों के आचरण की विधि, तात्पर्य ये है कि जितने साहित्य का मूल्यांकन विदेशियों ने किया, उतने साहित्य का मूल्यांकन हम नहीं कर पाये। अभी भी आपको जैन शास्त्रों की खोज है, अभी भूवलय नाम का ग्रन्थ आया है। भूवलय ऐसा ग्रन्थ है, जिस पर चर्चा हुई, यदि दो हजार विद्वान् एक साथ ग्रन्थ की व्याख्या में लगे तो पंच साल तक उसकी पूरी व्याख्या नहीं कर पायेंगे। ये एक पंक्ति यतिसम्मेलन की चर्चा में आयी थी। एक ग्रन्थ की टीका लिखने के लिये, एक ग्रन्थ को खोलने के लिये दो हजार विद्वान एक साथ लगें, पाचं से आठ घंटे का समय दें

प्रतिदिन तो पाँच साल तक पूरा कार्य सम्पन्न हो पायेगा।

इन्दौर के डॉ. महेन्द्रकुमार जी 'मनुज' इस ग्रन्थ पर कार्य कर रहे हैं। ऐसा महान् ग्रन्थ है जिसमें यदि एक ग्रन्थ को उसमें पूरा खोला जाए और कार्य किया जाए तो इतना बड़ा हाल बराबर कागज लग जाएगा, जिस तरह छोटी सी सी.डी. होती है। उस सी.डी. होती है। उस सी.डी. में बहुत सारा विषय होता है। उसी तरह एक-एक पत्र में मात्र अंक-अंक से लेखनस है। उन अंकों के चार्ट बने हैं, हर कोई पढ़ ही नहीं सकता अंकों से पूरा लिखा है। इस ग्रन्थ में 718 भाषाओं में लिखा है, कितना ? आप जिस भाषा के जानकर हैं आप जाएँ अपनी भाषा में अर्थ निकाल लीजिए। जैसे दिव्यध्वनि का आता है दिव्यध्वनि 718 भाषाओं में परिणित होती है, उसी तरह वह ग्रन्थ 718 भाषाओं में परिणित हो जाता है। जो जिस भाषा जानकार हो उस भाषा में अर्थ निकाल ले। जैसे मैंने लिख दिया 1, 2, 3, 4 ये लिख दिया इसका क्या अर्थ हुआ ? उदाहरण के लिए 2, 4 का अर्थ क्या है। अब 24 का अर्थ पहले नम्बर दूसरा अक्षर लिखिए फिर 24 के पश्चात् 4 नम्बर संख्या लिखिए 4 अक्षर लिखेंगे, 4 चौथे को पहले करने 2 को बाद में रखेंगे हो जाएगा। B जैसे ये 24 लिखा है य, र, ल व पहला अक्षर य, र दूसरा क्रम का अक्षर। दूसरे क्रम का अक्षर र हुआ चौथे नम्बर का अक्षर व हुआ उर्दू में बन गया रव और हिन्दी में गिनती उल्टी होती है तो क्या हो जाएगा पहले नम्बर 4 अक्षर आएग फिर दूसरा अक्षर आएगा क्या बन गया वीर, क्या ? वीर बन गया अंकों का इस तरह से लिखा गया ग्रन्थ है। इस तरह से अंकों का समावेश है कि एक पेज में तत्वार्थ सूत्र है, उसी में गीता, उसी में रामायण है उसी में पाण्डवपुराण हो जाएगा आप को मात्र पढ़ते जाना है। ऐसे ले लीजिए चारों तरह से घूमते जाइए और आप एक-एक ग्रन्थ निकालते जाइए। तत्वार्थ सूत्र में एक सूत्र आया -

क्षेत्रवास्तु हिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदास-कुप्यप्रमाणाऽतिक्रमाः।।26/7।।

इसमें नौ आए अभी तक नौ ही सुनते आए, लेकिन भूवलय ग्रन्थ में भाण्ड शब्द का प्रयोग आ गया उसमें भाण्ड अर्थ होता है बर्तन। परम पूज्य आचार्य विरागसागर जी को महेन्द्र जी ने दिखाया-महाराज श्री इसमें भाण्ड शब्द का प्रयोग हो गया। महाराजश्री बोले महेन्द्र जी आपकी मेहनत पूरी सफल हो गई। हमारी संस्कृति ने यदि एक करोड़ रुपये भी खर्च करके एक शब्द की भी खोज कर ली जिनवाणी को ठीक कर लिया तो हमारे वह करोड़ो की संपत्ति सफल हो गई।

प्रिय आत्मन् ! ऐसे महान-हान ग्रन्थ हैं जिन ग्रन्थों को सुरक्षित कर लिया वो हमारे पास रह गए। अधिकांशतः भारत में जितने ग्रन्थ बिके हैं और विदेशों में गए हैं, यदि कोई ग्रन्थ चाहिए तो विदेशों मे मिल जाएगा। अपने यहाँ खोजने की कोशिश मत करो। अभी मोतीलालजी कोठारी ने तिलोयपण्णत्ति को सात हजार रुपये में बेचे। कितने सात हजार रुपये में। 50 पृष्ठ की सात हजार

रुपये की एक किताब आपको चाहिए तो 100 रुपये में मिलेगी, फिर भी आप शायद न पढ़े हो सकता आप न पढ़े, लेकिन विदेशियों ने उचित रकम सात हजार रुपये दिए एक पुस्तक के। 50 सेट पुस्तक के साढ़े तीन लाख में गए, वो भी माँगकर। आपके जबलपुर से गए हैं। प्रो. एल.सी.जैन की लेखनी से लिखित होकर के। ध्यान रहे आपको यह जबलपुर किस तरह विद्वानों को गढ़ रहा है। चाहे हीरालालजी हो, बाद में आपके प्रो. एल.सी. जैन, ये ऐसे विद्वान् हैं, सारा विश्व जिनके लिये नतमस्तक होकर पूजता आया है और नतमस्तक होकर पूजता रहेगा।

आज मैं यह कहता हूँ – जैसे हीरालाल जी के समय जबलपुर में जब आप गये हों, आपने देखा हो, चाहे न देखा हो, लेकिन जिनके षड्खण्डागम् के कारण इस समय चाहे विरागसागरजी हों चाहे विशुद्धसागरजी हों यदि विरागसागरजी आपको ज्ञान दे रहे हैं तो उसमें हीरालाल जी की मेहनत का फल है। ध्यान देना – क्योंकि साधु, कहाँ से लाएँ? यदि आपने ग्रन्थ न दिये होते तो ग्रन्थ कहाँ से आते। ये ध्यान रखो – हे श्रावक! साधु का कार्य तो ग्रन्थ को लिखना है और श्रावक का कार्य उसको प्रकाशन करके भेज देना। जिस तरह सूर्य का काम है पुष्प को खिला देना और पवन का काम है खुशबू को बिखरे देना।

प्रिय आत्मन्! इस तरह हम जैन संस्कृति के लिये जियें। हम परिवार के लिये बहुत जीते हैं, समाज के लिये और संस्कृति के लिये सोचें। हमारी सोच इतनी दूरगामी हो जैसे आचार्य विरागसागरजी ने देखा श्रेयांसगिरी में भव्य जिनालय का निर्माण करायें। दूरगामी सोच, कोई सोचता इतने मंदिर थे एक मंदिर और निर्माण की क्या आवश्यकता थी? पर अंत में सोचेगा, कि इनमें से जब कोई मंदिर प्राचीन नहीं बचेगा तब वह एक मंदिर ही त्रिलोक का परिचय देता रहेगा हजारों वर्ष के लिये उस मंदिर को जीवित किया है।

मंदिर जीवित हो तो संस्कृति जीवित होगी। साहित्य दोनों जीवित रहेंगे। दोनों का मूल्यांकन मंदिर से ही होगा। दक्षिण भारत का हमारे ऊपर बहुत उपकार हैं। वह हमें वरदान दे गये हैं। जितने भी ग्रन्थ आये हैं, हमारे पास कुछ भी नहीं था। बोलो क्या था? यदि आप इतिहास उठाकर देखें, तो हमारे उत्तर भारत के पास कुछ भी नहीं था, सब का सब दक्षिण भारत के उदर से आया है, जितने भी ग्रन्थ थे दक्षिण भारत से आए।

प्रिय आत्मन्! यदि वर्तमान में इस दिशा में कार्य करना है तो भट्टारक चारुकीर्ति जो बहुत कार्य कर रहे हैं। जिनके यहाँ पर निरन्तर 10-15 विद्वान कम से कम 25-30 साल से काम कर रहे हैं और एक-एक विद्वान् को योग्यत्तम मानदान देते हैं। यदि तुम्हें किसी भी कला का सम्मान चाहिए तो चारूकीर्ति से जाकर मिल लीजिए। प्रत्येक कला का सम्मान, प्रत्येक कला के उत्कर्ष की भावनाएँ और इस तरह से उन्होंने जो कार्य किये हैं चाहे प्राकृत का संस्थन हो और सरकार से भी

जितना उन्होंने लिया है, उतना हमारा समाज नहीं ले पाया। चाहे आपका कहीं का भी समाज हो हम नहीं ले पाए, न हमारे पास प्राकृत के ग्रन्थ का संस्थान है, कुछ भी नहीं है। जबलपुर जैसा समाज चाहे तो कुछ ऐसे कार्य करे कि हमारी संस्कृति, कैसे जीवित हो ऐसे विषय में सामने आए। आपको चाहिए कि एक बार चारुकीर्ति जी से मिलें और उनसे पूँछें कि हम अपने मध्यप्रदेशर में क्या करें, वो आपको मार्गदर्शन देंगे। किस तरह से तुम्हें जमीन मुफ्त में मिलती है। मात्र आपको बुद्धि लगाना है और कुछ नहीं करना है। जिससे हमारी संस्कृति, समाज का पूरे विश्व में नाम पहुँचता है। ध्यान दें आप ''प्रभावना के बैण्ड बजायेंगे तो आपकी गली में गूँजेंगे, आप लेखनीस चलायेंगे तो वह लेखनी आपको पूरे विश्व में पहुँचायेगी है।''

पाँच पैसे की स्याहीर में वह ताकत है कि सात समुद्र पार चली जाती है और तुम्हारे पाँच हजार के बैण्ड की आवाज तुम्हारी गली पार नहीं कर पाती है। प्रियस आत्मन्! ऐसे उद्देश्य बनाओ, कि हम अपने पूर्वाचार्योर की लेखनी को संदूक में बंद करके न रखें, लेखनी के लिये पूरे समाज को दें और पूरा विश्व जैनमय बने। यह जैन धर्म विश्व धर्म तब बनेगा जब जैन धर्म का परिचय विश्व से हो। जैन धर्म पहले विश्व धर्म रहा है, लेकिन फिर बीच में नहीं हो पाया है। जब से जैन ग्रन्थ गये विदेशों में, तब से पूरे देश आपको नत मस्तक होते हैं, नत मस्तक होते आए हैं।

ज्ञानमति माता जी ने हस्तिनापुर में बहुत अच्छे कार्य किये हैं, प्रशंसनीय कार्य किए हैं। विदेशी लोग वहाँ पर भी आते हैं। जैनत्व का अध्ययन करते हैं। आज आपने शास्त्र, साहित्य, और समाज संस्कृति के निर्माण में साहित्य के महत्व पर एक विस्तृत निबंध मुझसे सुना है बहुत गरिमा के साथ, शांति के साथ सुना है और यह आपके लिये सदा प्रेरित करता होगा।

एक बात मैं आपसे कहूँगा कि आप कितने अच्छे हैं, 24 घंटे में एक विचार आप भी लिखना शुरु करें, साल में 365 विचार होंगे। आप बोलते हैं-महाराज श्री कितना अच्छा बोलते हैं, भईया बोलते हैं एक बार लिख तो दो। यदि हमें लगता है कि इनका अच्छा व्यवहार है। लेकिन इनके आज के व्यवहार में से एक बात लिखकर रख दो।

मैं जब द्रोणगिरि में था, मैंने देखा विश्वराम बब्बा एक डाल को लगा रहे थे, मैंने कहा बब्बा ये क्या कर रहे हो? महाराज! कलम लगा रहे हैं, मैंने कहा इससे क्या होगा? महाराज श्री अभी इसमें कड़वे फल लगते हैं, लेकिन अब मैं मीठे वृक्ष की ये डाली लाया हूँ और इसमें जोड़ रहा हूँ मैंने कहा अब इससे क्या होगा? बोले महाराजश्री अब इसमें मीठे फल लगेंगे। क्या? मीठे फल लगेंगे। मैंने कहा- ये तीन चार प्रकार के क्यों लगा दिये? बोले कि एक-एक वृक्ष में 40-40 प्रकार की कलमें लगाई जा सकती है और एक वृक्ष में 40 प्रकार की जाति के फल लग सकते हैं। आम के पेड़ में 40 प्रकार के आम लगा सकता हूँ। यहाँ पर 40 प्रकार के आम एक जगह हो सकते हैं। अगर

तुम कलम लगा सकते हो तो मैं भी अपने जीवन में कुंदकुंद की कलम लगा सकता हूँ। मैं भी अपने जीवन में पूज्यपाद की कलम लगा सकता हूँ। समन्तभद्र की कलम लगा सकता हूँ।

प्रिय आत्मन्! जो कुंदकुंद स्वामी ने दिया है, जो पूज्यपाद ने दिया है, जो समन्तभद्र ने दिया है, जो विरागसागर ने दिया है, उनकी कलमें अपने जीवन में लगायेंगे। हममें अभी तक तो विषय कषाय के खट्टे फल लगते हैं जीवन में। लेकिन जब तुम गुरु की शरण में पहुँचो तो उनकी कलम, उनका एक विचार अपने जीवन में जोड़ लेना। उनकी कलम अपने जीवन में लगा लेना आप ध्यान दें- पूज्य आचार्यों का एक विचार अपने जीवन से जोड़ लेना उनकी कलम लगा लेना। फल अब तुम्हारे नहीं लगेंगे वृक्ष तुम्हारा होगा।

इस महत्वपूर्ण बात को सुनकर के अपने जीवन में विषय कषाय के खट्टे फल नहीं लगाना है, हमें मीठे फल लगाना है, उन पूज्य आचार्यों की अमृत कलम अपने जीवन से जोड़कर रखना है। संस्कृति के निर्माण में साहित्य का महत्व अनिर्वचनीय और ध्यातव्य है।

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

लय का सार

प्रिय आत्मन्! हम सभी भगवान् महावीर स्वामी की दिव्य देशना से माँ-जिनवाणी का श्रवण करने आये हैं। यहा माँ जिनवाणी जीव तत्व प्रबोधिनी, अजीवतत्व-विवेचिनी, सर्वास्रव-निरोधिनी, कर्मबन्ध-विमोचिनी, संवरपद-प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्षमहल-धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणि, विश्वकल्याण-कारिणी, सर्वसुख-सारणी, महामंगलकारणी है।

प्रिय आत्मन्! माँ-जिनवाणी की अर्चना अरिहंत की अर्चना है, माँ-जिनवाणी की अर्चना भगवन्त की अर्चना है, इस कलिकाल में सर्वज्ञ भगवान् दृष्टिगोचर नहीं होते। साक्षात् केवली के वचन सुनने नहीं मिलते पर जिनवाणी की अर्चा ही केवली की पूजा है। उस जिनवाणी के अवलम्बन निर्ग्रन्थ गुरु हैं, निर्ग्रन्थ गुरु की पूजा ही जिनवाणी की पूजा है।

प्रिय आत्मन्! लय विलय होने से पहले लय में लवलीन हो जाऊँ, इस महा मंगल भावना से जिन और जिनालयों में लवलीन हो जाता हूँ। प्रकृति का कण-कण लय में लीन है। नदी की धारा कल-कल करती हुई लय में लीन है। जल की अपार जलधारा लय में लीन है, झरते हुए झरने लयबद्ध हैं, बहता हुआ झरना लयबद्ध है, पैरों में लय है तो गति प्रशस्त हो जाती है, हाथ में लय है तो कल-कल ध्वनि उत्पन्न हो जाती है। लय का अपना एक महत्व होता है। लय ही जीवन है, लय का टूटना ही मरण है। जब तक श्वासों की लय है, तब तक जीवन है। श्वासों की लय टूट जाए तो मरण हो जाए।

प्रिय आत्मन्! लय को साधना है, संगीत बनाना है तो लय को साधो, जीवन सध जायेंगा।

शब्दों में लय हो तो गीत बन जाता है।

भावों में लय हो तो प्रीत बन जाता है।।

व्यवहार में लय हो तो नीति बन जाता है।

आचरण में लय हो तो रीति बन जाता है।।

प्रकृतिशील जो पैदा हुई है, लय पुदगल है इसका हमें स्वत: पता नहीं है। ये शब्द वर्गणाएँ पुद्‌गल हैं और कब गीत का अंत हो जाए, यह जो जीवन है, ये गीत की भांति चला जा रहा है। तीन, चार अंतरा की तरणी है इसमें, तीन–चार पड़ाव आ जाते हैं और अन्त में गीत समाप्त हो जाता है। लयबद्ध होते हुए कुछ पलों के बाद विलय हो जाते हैं।

प्रिय आत्मन्! लय के भीतर एक और छ्य छिपी होती है, कि लय को सुनते–सुनते कब हम अपने इष्ट देव में लीन हो जाएँ, अपने स्वरूप में लीन हो जाएँ, तब वह लय सिद्धालय तक ले जाती है। शब्द, स्वर यदि जिन और जिनालय में समाहित हो जाएँ तो यह शब्द परमस्थान को देते हैं। यदि यही शब्द स्वर अशुभ भावों में ओतप्रोत हो जाएँ तो यह शब्द नरक स्थान देते हैं।

पंचम स्वर जब कोकिला अपने हृदय से प्रस्तुत करती है, तब वह किसी की साज की मोहताज नहीं होती है। हृदय से उद्‌भूत सरस वाणी में शुभ भावनाओं का रस मिश्रित हो जाता हैं, तो वह ठीक वैसी ही हो जाती है जैसे अन्न में मीठा डाल देने से मिष्ठान्न बन जाता है। दही और मीठा डाल से श्रीखण्ड बन जाता है। उसी तरह वाणी में जिन समा जाते हैं, तो वाणी जिनवाणी बन जाती है।

वाणी को बाण बनाने वाले बहुत मिल जाएँगें लेकिन वाणी को वीणा बनाने वाले दुर्लभ होते हैं। हाँ, इस संसार में वाणी को वीणा बनाने वाले भी कुछ मिल जाएँ पर वाणी को जिनवाणी बनाने वाले इस संसार में बहुत दुर्लभ ही मिलते हैं। यदि वो मिल जाएँ तो समझ लेना चाहिए हमने चिंतामणी रत्न पा लिया, हमने कामधेनु और कल्पद्रुम को पा लिया है।

धन्य है यह काल जिसमें वाणी को वीणा बनाने वाले नहीं। अपितु वाणी को जिनवाणी बनाने वाले संत भी इस धरती पर आज हैं। हम इस युग में पैदा हुए हैं जबकि हमारे समक्ष पौरुष के प्रतीक आचार्य विरागसागर, विशुद्धसागर जैसे संत, मातृ ममता की प्रतीक आर्यिका ज्ञानमती जैसी ज्ञान मूर्तियाँ इस देश को मिली हैं, जिन्होंने वाणी को वीणा ही नहीं जिनवाणी भी बनाया है।

प्रिय आत्मन्! गणधर स्वामी रूपी रसायन को, वर्तमान के आचार्यगण खोज रहे हैं। यह कार्य प्रकृति में समाए रहते हैं। संत प्रकृति में जीते हैं। प्रकृति से प्रेरित होते हैं, लेकिन फिर भी कर्म प्रकृतियों से भय खाते हैं, क्योंकि उनकी प्रकृति धर्म प्रकृति होती है। धर्म प्रकृति वाला जीव कर्म प्रकृति से भय खाता है तथा जो धर्म प्रकृति वाला नहीं है वह कर्म प्रकृति बांधता है। जितनी–जितनी हमारी धर्म प्रकृति, वृद्धिगत होती हैं कर्म उतने–उतने दूर होते चले जाते हैं। प्रकृति में आओ, तो पर प्रकृति डूब जाएगी।

धन्य है! महावीर की वाणी में चरित्र के निर्मल परमाणु थे, इसलिए उनका एक–एक शब्द

अभिनंदनीय हो गया, वंदनीय हो गया, अजर, अमर और शाश्वत हो गया। **प्रिय आत्मन्!** मानव एक कृति है, यह जिंदगी एक कृति है पर मनुष्य प्रकृति को बना न बना पाए मनुष्य के पास वह योग्यता होती है कि प्रकृति में वो अपने को ढाल करके, प्रकृति को जन्म दे देता है। जिससे सम्पूर्ण प्रकृति भी बदल जाती है। कृतियाँ समय का मूल्यांकन हैं।

समय महाधन क्रियाशील का।

समय महा धनयतियों का है।।

समय सदा मूल्यांकन करता।

कृतियों का आकृतियों का।।

जैन दर्शन या विश्वस के जितने दर्शन हैं, सम्पूर्ण दर्शनें में कृति, कृतिकार ऐसे रहे जो प्रकृति से जुड़े रहे। प्रकृति सहज निर्जरा की ओर ले जाती है, यदि निजता और सहजता है, तो आप प्रकृति में जी सकते हैं। सरलता आत्मा का गुण है, हृदय का गुण है। रवीन्द्रनाथ टैगोर पुष्प चुन रहे थे। पूँछा! आप क्या कर रहे हैं? मैं फूलों को चुन रहा हूँ। क्यों? क्योंकि मैं फूलों से रस को निकालूँगा। पुष्परस की कोमल स्याही से काव्य लिखूँगा।

प्रिय आत्मन्! कोमल लेखन के लिए कोमल मन भी चाहिए, वचन भी कोमल चाहिए, तन भी कोमल चाहिए, हृदय भी कोमल चाहिए, बाह्य तत्त्व भी कोमल चाहिए। इतनी कोमलता, कोमल पुष्पों के रस से मैं कविता लिखूँगा। वे पुष्प रस से कवितार लिखते थे, ताकि मेरे अंदर कोमलता समाहित हो जाए। मेरे अंदर इतनी कठोरता जन्म ले लेती है, तो काव्य कठोर हो जाते हैं और सरलता जन्म से हो तो,स काव्य सरल हो जाते हैं।

जो नैसर्गिक होगा, वह न तो अलंकार की विधा जानता है, न वह रस की विधा जानता है, न वह विज्ञान की विधा जानता है, न शब्द की शक्तियों को पहिचानता है। लेकिन लिखते समय वे सब शक्तियाँ अपने आप अवतरित हो जाती हैं। वे शब्द शक्ति की तरह। ये शब्द सरस्वती की कृपा, माँ जिनवाणी के प्रसाद से न जाने कौन से शुभ देवता हृदय में आपके विराजमान हो जाते हैं और ज्यों ही कृति लेखन का अंतिम अक्षर होता है, न जाने वह देवता कहाँ चले जाते हैं। एक कृति लिखने में दो माह लगते हैं। मालूम चला कि एक कृति लिखने के बाद कोई कृति नहीं लिखी गई। क्यों? वह शुभदेव जब मेरे अंदर में विराजते हैं तो वह प्रसन्न होकर ऐसे वरदान साबित हो जाते हैं। शब्द-शब्द में माँ जिनवाणी मिश्रित हो जाती है, अक्षर मंत्र बन जाते हैं।

प्रिय आत्मन्! ध्यान देना साहित्यकार, कृतिकार, कवि बनारसीदास आप में से पैदा हुए,

रवीन्द्रनाथ टैगोर आप में से पैदा हुए, मैथिलीशरण गुप्त आप में से पैदा हुए,स धन्यर कुमार जी ''सुधेश'' कवि, दौलतरामजी, द्यानतराय जी ऐसे महान कवि हमें इसी श्रावक समाज से मिले हैं। श्रावक समाज में भी अध्ययन की प्राथमिकता जब पैदा हो जाती है, तो उपक्रम में ढलने की कला प्राप्त हो जाती है। अपने मन का शुद्धिकरण करने के लिए कलम से बड़ा कोई और सार नहीं हो सकता है। **अपने भावों का चित्रण जब कोई कृतिकार कलम से कागज पर उतार देता है, तो वह मन को थकाता नहीं, मन को आनंदित महसूस करता है। एक-एक शब्द के साथ स्वंय में पहुँच जाता है क्योंकि स्वयं को रचे बिना रचना नहीं होती है। स्वयं में रचे बिना रचना नहीं होती है।''**

स्वयंर के द्वारा, स्वंय को, स्वंय में, स्वयं के लिए जो रचता है वही रचनाकार होता है। पर में रचना, और पर के लिये रचनाा रचयिता की सबसे बड़ी भूल है। **सच्चा रचयिता वही होगा जो स्वयं में रचे, स्वयं के लिये रचे।** कुंद-कुंद देव कहते हैं यह ज्ञान निधि है यदि निधि प्राप्त हो जाए, तो दूसरों के लिए बाँट नहीं देना। एक किसान यदि खेत में सोने का घड़ा प्राप्त कर ले तो बोलो क्या करेगा? रास्ते में बाँटता नहीं जाएगा। वह ऐसे समय में लाएगा ताकि कोई देख न ले साध ु आहार लेता है श्रुत के लिये'' आप आहार देते हैं तन के लिये साधु आहार लेता है चेतन के लिये। आहार साधु लेता है, अन्नाहार श्रावक देता है। अन्नाहार एक दिन के लिए होता है और ज्ञानाहार केवलज्ञान तक के लिए होता है।

प्रिय आत्मन्! इसलिए ''ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण'' सुख का कारण ये ज्ञान है ऐसे ज्ञान की प्राप्ति हमें जब भी होती है, तो हम जानते हैं, कि कोई बहुमूल्य संपत्ति हमें मिल गई। ज्ञान हम साधुओं के पास से पाएँ, लेकिन कोशिश करें, कुछ समय स्वयं ही साधुओं जैसी प्रकृति को बनाएँ, फिर वही ज्ञान मेरे अंदर भी पैदा होगा, तब प्रकृति साधु जैसे बन जाएगी तो साधु जैसी कृति का जन्म हो जाएगा।

प्रिय आत्मन्! विचार-आचार हमारे जीवन के रथ के दो पहिए हैं। विचार-आचारस के पहिए हमारे जीवन रथ को आगे बढ़ाते चलते हैं। हमें चाहिए कि हम अपने विचारों से अपने आचार का निर्माण करें। कृति से प्रकृति और संस्कृति का निर्माण करें। भगवान् महावीर स्वामी ने आचार्य परम्परा में जो हमें कृतियाँ दी हैं। हमारी आकृतियाँ को दिया है। ये जिनेन्द्र की आकृति अपने आप में कृति है, समता की कृति है, वात्सल्य की कृति है। जरूरीर नहीं कि आप कुछ कलम से ही लिखें, मन कहता है भखो, त्यागी मन कहता है चखो, विरागी मन कहता है लखो, वीतरागी मन कहता है परखो। हम बोलते हैं, कि अब परखो, निरखो, परखो, जानो, निरखो, अपने आप को देखो, पर खो, पर को खो जिस दिन पर खो का अर्थ तुम्हारे जीवन में आ जाएगा, उसी दिन तुम्हारी

प्रियता कम हो जाएगी।

जिसने परखा है वह कहता है परखो। महावीर ने एक ही शब्द दिया था परखो, अब हमने क्या किया? पर को हमने परखा नहीं, पर में खोया रहा, पर को खोया नहीं, मैं पर में खोया रहा, पर को खोया नहीं है। जो-जो पर हैं, उस-उस को खो दो, तुम्हें स्वसत्ता मिल जाएगी, भगवत्ता मिल जाएगी, अर्हता मिल जाएगी, सर्वज्ञता मिल जाएगी। पर क्या है? मेरी चेतन आत्मा से जुड़ते परमाणु पर हैं कर्म प्रकृतियाँ पर हैं, आस्रव-बंध पर हैं, संवर, निर्जरा स्व हैं।

प्रिय आत्मन्! आचार्य कहते हैं परखो। महाराज श्री मैंने इतना छोड़ दिया - आलू का त्याग, प्याज का त्याग, रात्रि भोजन का त्याग। ये सब त्याग करते हो और आगे बढ़ो, परखो, जो पर है उसको खो, आस्रवत्यागी बनो, बंध त्यागी बनो। क्या? त्यागी कहता है खो, क्या कहता है? खो, आस्रव को खो, बंध को खो, कर्म को खो।

वह कब घड़ी आएगी जब खोता चलूँगा। जो जितना खोता जाता है। जानते हो खाने वाला पाता चला जाता है। गोताखोर जितने-जितने नीचे जाता है वह उतने-उतने रत्न लेकर के आता है। उसी तरह मैं यदि पर को खोता चला तो निज को पाता चलूँगा।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञानी कहता - निरखो

लोभी कहता - रखो

रागी कहता - भखो

त्यागी कहता - चखो

विरागी कहता - लखो

कवि - लिखो

अज्ञानी कहता - विलखो

वीतरागी कहता - परखो, पर खो।।

जो बीज गढ़ता है वही बीज उगता है। मेरे अंदर मैंने क्या बोया है? वही उगेगा चाहे वह मुख से उगे, चाहे वह आंख से उगे, चाहे वह ललाट पर उगे, चाहे वह कपोल पर उगे। याद रखना-जो चेहरे को पढ़ने वाले हैं वे जानते हैं आपके ललाट पर क्या उगा? जो नयनों की भाषा जानते हैं कि आपके नयनों में क्या लिखा है? चार दिन का वह शिशु जानता है कि माँ की आँखों में क्या लिखा

है वह पढ़ लेता है। अक्षर को पढ़ने वाले भी बहुत पढ़ लेते हैं आपकी अक्षर आत्मा पर क्या लिखा है?

आपका चेहरा आपका हृदय होता है। हृदय के अंदर क्या है चेहरा प्रसन्नता से भरता जाता है। और मन में अशुभ विचार जागते हैं, चेहरा अशुभता से भर जाता है। ''मन मों क्षमा समाती है, चेहरा क्षमा रूप हो जाता है।'' मन में क्रोध आता है चेहरा लाल-पीला हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

जब बर्तन को आग पर रखते हैं, तो बर्तन लाल हो जाता है। पानी गर्म करते हैं तो गीला बर्तन भी गर्म हो जाता है। स्वभाव में आने से विभाव दू हो जाते हैं। विभाव में जाने से स्वभाव आवृत हो सकता है। इसलिए मुझे चाहिए कि मैं अपने जीवन को कैसे पावन ओर पवित्र बनाऊँ, ऐसे विशुद्ध भाव अपने जीवन में कैसे रचें? आचार्यों ने रचना की है, पवित्र रचना की है। एक-एक पद्य की रचना के लिये उन्होंने कितना श्रम किया होगा और ध्यान रख लेना जग में रचने के लिए रचना मत करना। ''पद रचना सिद्ध पद पाने के लिये करना'', पद रचना आपको सिद्ध पद पाने के लिये, पद रचना साधुपद पाने के लिये तभी रचना सार्थक होगी। जब यह रचना आपको सिद्ध पद से मिलाएगी, जब पदरचना सिद्धों के लिए होगी तब वह पद आपकी विपद को दूर करने वाले हो जाएँगे।

ये जिनवाणी का एक पद आपके पथ पर काम आयेगा, पग-पग काम आएगा। जिनवाणी का एक पद आपको अनेक विपदाओंार से बचा करके आपद को संपद में बदलने की क्षमता रखता है। जब मानतुंगा की रचनाओं के पद लोहे की श्रृंखलाओं को तोड़ सकते हैं तो मानतुंग के पदों में ये भी क्षमता है कि आपके कर्म रूपी लोहे की श्रृंखलाओं को भी तोड़ दें।

प्रिय आत्मन्!

जो जीव लोभी की श्रृंखलाओं को तोड़ देता है, उसने सबसे बड़े जेल से मुक्ति पा ली है। बाहर के जेल से मुक्ति पाने के लिए मानतुंग ने अभ्यन्तर के ताले तोड़े और लोहे की श्रृंखलाएँ टूट गई। हम अपने अन्दर ज्ञान और वैराग्य के ताले खोल लें तो मेरे अन्दर से लोभ की श्रृंखलाएँ टूटतीं चली जाएँगी और मैं इस तन के पिंजरे से बाहर आकर के मुक्त पक्षी बनकर के मुक्तगगन की ओर विहार करता हुआ लय में लीन हुआ, जिनालय में लीन हुआ, सिद्धालय की ओर बढ़ता जाऊँगा, यही लय का सार है। अपनी लय अरिहंत से मिलाएँ, हम अपनी लय वीणा, जिनवाणी से मिलाएँ, यह लय का सर है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

जीव का लक्षण

प्रिय आत्मन् !

तीर्थंकरों का उपदेश जिनवाणी में विद्यमान है। यह जिनवाणी द्वादशांगमय, तीर्थंकरों द्वारा विस्तृत हुई। आचार्य श्री ने एक बात कही, आत्मा किसे कहते हैं? आचार्य श्री ने कहा – द्वादशांग को आत्मा कहते हैं, तब प्रश्न हुआ, कि द्वादशांग तो द्रव्य श्रुत रूप है, वह सब पुद्‌गलमय है, तो वह आत्मा कैसे हुई ? आचार्य श्री ने कहा– मैं आत्मा को द्रव्य श्रुत नहीं कर रहा हूँ। द्रव्य जब भाव श्रुत में परिवर्तित कर जाता है, तो जो भाव श्रुत है, वह आत्मा है। यदि आत्मा न हो, तो द्रव्य श्रुत कभी भाव श्रुत रूप में परिणमन न करे। जितना–जितना द्रव्य श्रुत हमने भाव श्रुत रूप में लगाया वही आत्मा है और जितना भाव श्रुत अपनी आत्मा में नहीं पनपा, उसका भी आत्मा से कोई संबंध नहीं है।

हम जो भोजन करते हैं उससे रस मिलता है। बोरा भर अनाज रखा हुआ है, उस रखे हुए बोरे भर अनाज से तृप्ति नहीं मिलती। संतुष्टि तो पाव भर, सौ ग्राम अनाज से होती है। और जब आप रोटी बनाकर खाते हैं, तभी मिलती है। जैसे प्रतिदिन शरीर के लिए भोजन आवश्यक है, उसी तरह से आत्मा के लिए। आत्मा क्या है? कुंद–कुंद स्वामी ने कहा – जो जीता है वह मैं हूँ, जो उपभोग करने वाला है, वह मैं हूँ, जो दृष्टा है, वह मैं हूँ।

आचार्य महाराज का कहना है कि वह आत्मा है, जिस आत्मा के विषय में हमने जानने का प्रयास नहीं किया, उसे हम ज्ञात कर सकते हैं। यदि एक सहयात्री हमें मिल जाता है, उस यात्री से हम पूछते हैं कहाँ तक का सफर है।

मेरे साथ जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य, चेतन और अचेतन, आत्मा और शरीर ये दो ऐसे सहयात्री हैं, जो साथ–साथ यात्रा कर रहे हैं। आत्मा है या नहीं ? क्योंकि पहले से यह जानते हैं कि आत्मा नहीं है, यदि होती तो किसी न किसी को तो दिखती, कोई न कोई तो देखता। भाई संसार में इतने मनुष्य हैं, किसी न किसी को इतनी सी चीज दिखाई देती ? पहले आप यह निर्णय करो कि

दिखता क्या है? क्या नहीं दिखता? आप जो भी देखते आँखो से वह स्पर्श वाला होता है, वह रंग वाला होता है, हाथों से जिसे छूते हैं, वह स्पर्श वाला होता है, जीभ से जिसे चखते है, वह रस वाला होता है, नाक से जिसे सूंघते हैं वह गंध गुण वाला होता है, जिसे आँखों से देखा है वह रंग वाला है, कानों से जिसे सुना वह शब्द है, आँखों ने रंग देखा वह पुद्‌गल है, कानों ने सुना वह पुद्‌गल है, हाथों ने स्पर्श किया वह पुद्‌गल है।

प्रिय आत्मन्!

यह सब पुद्‌गल है, यह शब्द भी पुद्‌गल है, ये पौद्‌गलिक वर्गणायें है। कब तक है? न रहे क्या किसको पता? यह है। केवली भगवान की वर्गणायें नहीं है। आज यह क्षमता है कल न रहे इसलिए इस क्षमता का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। किस जन्म का पुण्य-तुम्हारी आत्मा के कोने में पड़ा है, जिस पुण्य के प्रताप से तुम्हें तीर्थंकर भगवान की वाणी बोलने का सौभाग्य मिल रहा है। कभी ये न सोच लेना कि कोई मेरे पास आके प्रार्थना करें, कभी ये मत सोच लेनार कि कम लोग हैं, तो उपदेश नहीं दें। ये तो भगवान की वाणी बोलने का सौभाग्य जब मिल जाए। जब एक श्रोतार के लिए दो मुनिराज उपदेश दे सकते हैं, आकाश से विमान उतार करके, करूणा भाव से भरकर उपदेश देना।

'अस्ति आत्मा' वह आत्मा है, सबसे पहले आत्मा की स्थापना की, जीव तत्व है, तो कैसा है पहली बात तो निर्देश, वस्तु का स्वरूप आत्मा है, मैं आत्मा का अध्ययन करना चाहता हूँ।

इनको बार-बार जानके रखना परीक्षण सबसे पहले निर्देश होता है, फिर उसके बाद लक्षण होता है फिर बाद में परीक्षा होती है। तो निर्देश क्या आया? अस्ति आत्मा ये निर्देश कथन हुआ। लक्षण क्या हुआ। **सः उपयोग अयम्** वह उपयोग वाला यह आत्मा ही है। एक लक्षण होता है। आत्मभूत और एक होता है अनात्मभूत। आत्मभूत वे कहलातेक हैं जो आत्मा स्वरूप से घुले-मिले हैं, त्रिलोक में तीनकाल में कभी घुले हो जुदे न हो वे आत्मभूत लक्षण कहलाते हैं। जो जुदे हो जाए वे अनात्मभूत लक्षण कहलाते हैं।

ये मनुष्य पर्याय है अनात्मभूत, स्त्रीपुरुष पर्याय है अनात्मभूत लक्षण। जैसे पुरुष का लक्षण सफेद कुर्ता पजामा ये सब अनात्मभूत लक्षण। ध्यान देना लक्षण में भी दोष नहीं आना चाहिए। वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, स्त्री-पुरुष, नपुंसक, संस्थान, संहनन ये सब जीव के नहीं होते हैं, ये सब आत्मा के नहीं। इन्हें आत्मा नहीं मानना ये तो पुद्‌गल के आदान है। मनोज्ञ, अमनोज्ञ जो इन्द्रिय के विषय हैं वे सब पुद्‌गल हैं। तुमको जितना दिखाई दे रहा, नाक से सूंघा पुद्‌गल, अब बचा क्या संसार में यानि ये संसार पुद्‌गलमय है और पुद्‌गल की पर्यायों को ही हम ग्रहण कर पाते हैं। आत्मा

कैसा है? उपयोग वाला। उपयोग जो सदा आत्मा के साथ रहा है। अपने ही परिणाम उपयोग हैं।

उपयोग आत्मा के साथ सदा पाया जाएगा। चाहे आत्मा ऊपर जाए या नीचे आए, चाहे नरक में रहे चाहे स्वर्ग में, चाहे मोक्ष में रहे, चाहे संसार में रहे, किसी भी पर्याय, किसी भी गति में, किसी भी लोक में, यह आत्मा रहेगी, उपयोग सब जगह पाया जाएगा। पुरुषपना सदा नहीं रहेगा, स्त्रीपना सदा नहीं रहेगा, जो सदा नहीं रहे, हम उसको लक्षण नहीं बनायें। लक्षण उसको बनाए जो सदा रहे। जो गुण सिद्धों के पास है वो हमारा है। जो-जो सिद्धों के पास नहीं है वह-वह मेरा नहीं है। इतना सिद्धान्त बनाकर चलना जो सिद्धों ने छोड़ा वह हमें छोड़ना है। छोड़ना ही पड़ेगा। जो-जो सिद्धों ने पाया है, वह-वह मुझे पाना है। उसे मैं पाके रहूँगा।

उपयोगमय-ज्ञानोपयोग और दर्शनापयोग ये पुद्गल द्रव्य के पास नहीं जाएगा और उनका ये मानना है, जैसे दर्पण अपने आपको नहीं जानता है, जैसे दर्पण को जानने के लिए अन्य किसी पदार्थ, आत्मा को जानने के लिए हमें किसी ज्ञान की सहायता लेनी पड़ेगी? आचार्य कहते हैं नहीं यह आत्मा ही स्वयं ज्ञान वाला है, उपयोग वाला है। कितना सुंदर लक्षण दिया है, उपयोग और उपयोग को स्थिर कर लेना ही साधना है और उपयोग को पहचानना और समझना।

आपके साथ जाने वाली मात्र दो ही चीज है ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग। जब ज्ञानोपयोग वृद्धिगत होता जाता है, साधना माध्यम से क्षयोपशमिक ज्ञान प्रकट हो जाता है, क्षायिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। दर्शनापयोग में चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, तीन क्षयोपशमिक हैं, अंतिम क्षायिक है। क्षायिक दर्शन प्राप्त होता है। मतिज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुत ज्ञान ये अशुद्ध द्रव्य के ज्ञानागुण की अशुद्ध पर्याय हैं।

आत्मा उपयोग वाला है। **उपयोग का उपयोग करो तो उपयोगी बन जाओगे,** जो उपयोग का दुरुपयोग करते हैं वे दुरुपययोगी बन जातेक हैं। मेरे पास ज्ञानोपयोग है दर्शनापयोग है। मैंने ज्ञानापयोग का कितना उपयोग किया, भगवान के चिंतन में, धर्मध्यान में, पूजा-अचर्ना में, आत्म-ध्यान में।

सम्यग्ज्ञान में लग गया है तो उपयोग का उपयोग हो गया, यदि इसी ज्ञान के द्वारा मैंने किसी का भला सोच लिया। मेरा उपयोग पंच इन्द्रिय और पंचकषाय में चला गया तो यहरा उपयोग कारस दुरुपयोग हो गया। मैंने अपनेर उपयोग का कितना उपयोग किया। तुम्हारे पास अनादिकाल से है। अनन्त काल तक रहेगा। जो अपने उपयोग का सदुपयोग करते हैं वे शुद्धोपयोगी हैं।

उपयोग शुद्ध भी होता है उपयोग अशुद्ध भी होता है। प्रवचन सार में पढ़ाया गया है जब विषय कषायों में उपयोग करता है, दुःश्रुति श्रवण, दुष्ट चिंतन आदि में अशुभ उपयोग होता है।

दुरूपयोग है। उपयोग भक्तामार सुननेसर में लगा है, उपयोग का सदुपयोग है। यदि आप उपयोग फिल्म, न्यूज देखने, सुनने में कर रहे हैं तो उपयोग का दुरूपयोग है। यदि हम इन इंद्रियों का उपयोग कर लेते हैं तो यह इंद्रियाँ ही हमें पंच परमेष्ठी बनाती हैं और पंचकल्याण की बात रख देती है और इन पंच इन्द्रियों का दुरूपयोग कर लेते हैं तो यही पंच इन्द्रियाँ हमारा पंचनामा बना देती है।

आत्मा क्या है ? जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से गमन करें। परिणमन करें वह आत्मा है। अपनी आत्मा से पूछो कि कितने समय मेरी आत्मा ने सम्यग्दर्शन में परिणमन किया कितने समय सम्यग्ज्ञान में परिणमन किया, कितने समय सम्यक्चारित्र में परिणमन किया। आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का मिश्रण है।

एक आवाज आई **दुनिया बनाने वाले, क्या तेरे मन में समाई तूने में समाई तूने काहे को दुनियाँ बनाई।** आचार्य विरागसागर जी बोले दुनियाँ बसाने वाले क्या तेरे मन में समाई काहे को दुनियाँ बसाई। यानि आचार्य महाराज बोले बसाने वाला दोष बनाने वाले को दे रहे है। प्रिय आत्मन्! जग को बनाने वाला कोई नहीं है। ये अकृत्रिम है। लेकिन बसाने वाले हम और आप हैं। जिनके अंदर विषय बसते हैं, वे दुनिया बसाते हैं और जो विषयों से बचते हैं वे दुनियाँ से बच जाते हैं। हम दुनियाँ बसा रहे हैं।

उपयोग को कैसे बदलें ? देव की पूजा, गुरु की, आचार्य, उपाध्याय, साधु की पूजा, शास्त्र की संलग्नता में लगायें। यही हमारे उपयोग को सुखी बनाता है। इस तरह श्रावक के जीवन में हम अपने उपयोग को, अशुभ को शुभ में कैसे बदले यह प्रधानता रखें। इसलिए आचार्य देव ने कहा ये देव पूजा आवश्यक है। विषय कषायों से बचने के लिए यह पंच परमेष्ठी पूजा-अर्चना की गई है। ताकि अशुभ उपयोग से बचाके शुभ उपयोग में लगाए। अशुभ उपयोग होता है तो ये नरक तिर्यंच आदि गति मिलती है। जब उपयोग शुभ होता है तब मनुष्य और देव गति मिलती है और जब शुद्ध होता है तब निर्वाण हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

अपने ज्ञान को सम्यग्ज्ञान में परिणमन कराने के लिए अशुभ को शुभ उपयोग में परिणमन कराना पड़ेगा और सम्यग्ज्ञान को, केवलज्ञान को परिणमन कराने के लिए शुभ उपयोग को शुद्ध उपयोग में बदलना पड़ेगा। जब अशुभ उपयोग शुभ में जाता है तब मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान में बदल जाता है और जब शुभ उपयोग शुद्ध उपयोग में जाता है तब सम्यग्ज्ञान क्षायिक सम्यग्ज्ञान में बदल जाता है। देखो साधना और कुछ नहीं है। **उपयोग को संभालना ही साधना है।**

प्रिय आत्मन्! यह तत्त्व की दृष्टि पहचानो। यह आत्मा उपयोग वाला है। हमारे पास जो

सबसे बड़ा धन है। वह उपयोग है। जिसके पास उपयोग है उसे योगी कहते हैं। जिसके पास धन हो उसे धनी कहते हैं। हमारे पास उपयोग है। पहले आप उपयोग का उपयोग करो। जिस प्रकार नहर में बहरने वाला पानी लगातार बह रहा है, लेकिन किसान क्या पूरा पानी ले जाता है। थोड़ा सा पानी ले जाता है। उसी तरह हमारे अंदर ज्ञान की नहर प्रवाहित है। ज्ञानोपयोग की नहर बह रही है। दर्शनापयोग की नहर बह रही है। लेकिन जब हम उपयोग की स्थिर कर लेते हैं। उतना ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जैसे बहती हुई नहर में से किसान जब मोटर चालू कर ले तो पानी नहर से खेत तक पहुँच जाता है और नहीं करो तो नहीं पहुँचेगा। जब आत्मा ज्ञान उपयोग वाला ही है तो ज्ञान प्राप्ति क्यों और नहीं करें ? वह ज्ञान और दर्शन तो आत्मा का लक्षण है और वह अनादि से आत्मा के पास है।

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

मैं कौन हूँ

प्रिय आत्मन्! मैं मात्र ज्ञाता दृष्टा हूँ, मैं इन्द्रिय नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं, मैं काय नही, लोभ नहीं, वेद नहीं, कषाय हीं, मैं निष्काय और निष्कषाय हूँ। मैं इन्द्रियातीत हूँ, मैं शरीरातीत हूँ **स्वभाव की पहचान के बिन विभाव विलग नहीं होता है।** स्वभाव की पहचान विभाव के त्याग में कारण बनतीर है। वस्त्र की सफेदी की पहचान, वस्त्र मलिनता के त्याग में कारण बनती है। स्वभाव को पहचाना करके ही स्वभाव प्राप्ति के उपाय में जब हम संलग्न होते हैं तो विभाव जुदा होता है।

हे प्रभु! आप तो वचन का संयम रख लेते हैं, वचन गुप्ति रख लेते हैं लेकिन मैं नहीं रख पाता हूँ, मैं बोलता हूँ। भगवन् कहते हैं– बोलो लेकिन ये तो ध्यान रखो, जो तुमसे बोले तुम उससे बोलो, जो तुमसे न बोले उससे मत बोलो। जो तुम्हें देखे उसको तुम देखो और जो तुम्हें न देखे उसे तुम मत देखो। जो तुम्हें जाने उसको तुम जानो और जो तुम्हें न जाने उसे तुम मत जानो। जो तुम्हें सुने उसकी तुम सुनो, जो तुम्हें न सुने उसकी तुम मत सुनो।

प्रिय आत्मन्! यही है अध्यात्म की यात्रा। जो तुम्हें देखे, मुझे देख कौन रहा है बताओ? आँख मुझे देख रही है क्या? आँख जड़ है क्या मुझे देखेगी? अचेतन क्या मुझे देखेगा? क्या मैं अचेतन हूँ? आँख तो जड़ को देखती है, आँख तो पुद्‌गल को देखती है, आँख तो रूप को देखती है, स्वरूप को कहाँ देखती है? अंग को देखती है अनंग को कहाँ देखती है? अंग को देखती है अंगी को कहाँ देखती है?

ये आँख अचेतन को देखती है, चेतन को कहाँ? शरीर को देखती है आत्मा को कहाँ? मैं शरीर हूँ क्या? मैं तो आत्मा हूँ। मैं तन नहीं चेतन हूँ। मुझे आँख ने देखा, बताओ–क्या मुझे आँख ने देखा। नहीं। आँख ने तो पुद्‌गल को देखा और मैं पुद्‌गल हूँ नहीं। मुझे देखने वाला तो आत्मा है। तुम्हारी आत्मा ने मुझे देखा होगा, तुम्हारी आँख मुझे नहीं देख सकती। मेरी आँख तुम्हें नहीं देखती हैं, मेरी आत्मा तुम्हें देख रही है, निहार रही है। ''यन्मया दृश्यते रूप'' मेरे द्वारा जो देखा गया वह रूप मुझे जानता नहीं।

आँख साधन थी, जब पुद्गल का सहारा लिया तो पुद्गल ने पुद्गल देख लिया। पुद्गल के सहारे से देखा तो पुद्गल को देखा। जब रंगीन चश्मा लगा होता है तो वस्तु रंगीन दिखती है वस्तुत: चश्मा नहीं देखता है, देखने वाली तो आँख है लेकिन चश्मा जैसे रंग का होता है वस्तु वैसी दिखती है।

प्रिय आत्मन् ! ये आँख पुद्गल है इस पुद्गल से हम जितना भी देख रहे हैं वह पुद्गल ही दिखता है, क्या दिखता है। जितने भी रूप दिख रहे हैं ये सब पुद्गल के रूप हैं, ये पुद्गल के आकार हैं। ये पुद्गल के स्कंध हैं, ये पुद्गल के प्रदेश हैं और क्या देखा ? जो पूरणगलन स्वभाव है, विनाशीक जिसका स्वभाव है, क्षणिक जिनकी पर्याय है, जिनका रूप नश्वर है, जिनका सौंदर्य खंडित होने वाला है, ऐसे जो स्थिर न रहे, उसको देखा। पुद्गल ने पुद्गल को दिखाया है, चेतन से देखते तो चेतन दिखता। **''जब पुद्गल की आँखे बंद हो जाती है तब पुद्गल दिखना बंद हो जाता है।''**

प्रिय आत्मन् ! हम सुबह से लेकर सोने से पहले तक पुद्गल को देखते हैं। आँख खोलकर जितनी भी दुनिया देखते हैं सब पुद्गल की दुनिया दिखती है, यह पुद्गलमय संसार दिखाई देता है। सुबह से शाम तक जिस वस्तु को छूते हैं वह वस्तु पुद्गल होती है। जागरण से लेकर निद्रा तक जितना सुनते हैं वह सब पुद्गल होता है। प्रात: से लेकर संध्या तक हम जितनी गंध लेते हैं वह सब पुद्गल होता है।

हम आठों यामों में जितना भी स्वाद लेते हैं चाहे वह रसना इन्द्रिय का स्वाद हो, जितने भी व्यंजनों के स्वाद लेते हैं वे सब पुद्गल के होते हैं। जो मेरे द्वारा देखा गया, देखा ही नहीं जो मेरे द्वारा चखा गया, चखा ही नहीं, जो मेरे द्वारा सूँघा गया, जो-जो मेरे द्वारा सूँघा गया वह सब पुद्गल हैं। बताओ-आपने दिन-भर में किसको देखा ? हमारी आँखों के सामने पुद्गल, हमारे कान में पुद्गल, हमारी जीभ पर पुद्गल, हमारे हाथों पर पुद्गल, पूरा शरीर पुद्गलमय है और ''पुद्गल पुद्गल को ही ग्रहण करता है'' कर्म कर्म का बंध है। पुद्गल, पुद्गल का स्पर्श कर रहा है इस आत्मा का स्पर्श पुद्गल कैसे करेगा ? **आत्माा तो अरूप है, आत्मा तो अरस है, आत्मा तो अगंध है, आत्मा तो अवर्ण है, आत्मा तो संहनन रहित है, आत्मा तो संस्थान रहित है।** इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण नही किया जाता है और जो इन्द्रियों से ग्रहण किया जाए वह पुद्गल।

''जिसे आप इन्द्रियों से ग्रहण कर लें वह पुद्गल है और इन्द्रियों से ग्रहण न किया जाए वह आत्मा है।'' वह चेतन है। अब बोलो जो आपने देखा, आँख से देखा तो पुद्गल हुआ।

प्रिय आत्मन् ! जो रसना के द्वारा चखा जाए वह पुद्गल। इसी तरह पाँचों इन्द्रिय में लगा

लेना। इन पंचेन्द्रिय के 27 विषय हैं, इन 27 विषयों को मैंने देखा सुना, जो भी किया पुद्गल। इस प्रकार पुद्गल परावर्तन व्यतीत होते रहे। इस पुद्गल को प्राप्त करते देखते, सुनते, पाते, छोड़ते ऐसा कौन सा पुद्गल शेष रहा जिस तुमने न देखा है, ऐसा कौन-सा पुद्गल परमाणु है जिसे आपने भोगा न हो।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गला:।

उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा।।30।।इ.

ऐसा कौन सा कण है जिसे तुमने भोगा न हो, भोगकर छोड़ा न हो। फिर उसी पुद्गल का सेवन, एक बार जिसका वमन हो जाए उसको आप दोबारा नहीं खाते हैं। अहो ज्ञानियो! अपने द्वारा खाये पीये गए पदार्थ को तू निश्िंचत होकर सेवन कर रहा है।

आचार्य महाराज की देशना को सुना- **"कौन सा पुद्गल स्कंध ऐसा है जो तुम्हारा शरीर न बन चुका हो"** जिसे आपने अपना भोजन न बनाया हो, अपना शरीर न बनाया हो। विश्व में ऐसा कोई पुद्गल स्कंध शेष ही नहीं है जो आपके द्वारा प्राप्त न किया गया हो। 343 घन राजू प्रमण लोक में ऐसा कौन सा स्थान शेष रहा, जहाँ आपने जन्म न लिया हो, जो आपने शमशान न बनाया हो, जहाँ आपने मरण न प्राप्त किया हो। इस जन्म मरण मृत्यु से भरा हुआ यह संसार जिस स्थान को आप महान् कहते हैं उस स्थान पर कोई जीव पल-पल मरण को प्राप्त हो रहा है और आप उसे पवित्र कहते हैं।

प्रिय आत्मन्! "आत्मा के असंख्यात् प्रदेशों से पवित्र और कोई हो ही नहीं सकता है।" पर को पवित्र करने की चेष्टा मत करो मेरे द्वारा जो देखा जा रहा है, मेरे द्वारा जो सुना जा रहा है वह जानता नहीं, आपके द्वारा किसको देखा गया? पुद्गल को। किसको सुना? पुद्गल को। किसको चखा? बोलो। जिस रसगुल्ले को तुमने अच्छा माना, रसगुल्ले से पूछो कि तुम अच्छे हो क्या? वह तुमको जानता ही नहीं, वो तुमको कुछ मानता ही नहीं है। ऐ, हाँ! जो तुम्हें मिष्ठान में 56 व्यंजन अच्छे लग रहे हैं, उन मिष्ठान्नों से पूँछों कि वह तुम्हें जानते हैं क्या? वह नहीं जानते।

जो सोना-चांदी वस्तुएँ आपको घर में अच्छी लग रही हैं, वो सोना चाँदी क्या तुम्हें जानते हैं? तुम निकल जाओ घर से। जो घर में रहने लगेगा उसका हो जाएगा वो। ऐसे-ऐसे महाराजा राजा हो चुके हैं, जब तक महल में रहे राजा रहे, महल मेरो। महल पर दूसरे ने आक्रमण किया, राजा वहाँ से चला गया। अब महल किसका? जिसका राज्य उसका। बताओ, किस पर अधिकतर है तुम्हारा "एकमात्र आत्माा के प्रदेशों में तुम्हारा अधिकार है? मोह ममता के कारण तुम पर को अपना मान रहे हो लेकिन पर कभी तुम्हारा न हुआ है, वह अपने आपको नहीं मानता तुम्हारा। न सोना तुम्हें

अपना मानता है, न चांदी तुम्हें अपना मानती है।

भैया का मकान कहाँ है? मंदिर के पीछे। भैया! ये तुम्हारा मकान है? लेकिन मकान का भैया नहीं है। हाँ। भैया का मकान हो सकता है लेकिन मकान का कोई भैया नहीं है। तुम मकान के मालिक हो सकते हो लेकिन मकान का कोई मालिक नहीं है। मकान ने आज तक किसी को अपना मालिक नहीं बनाया। तुम दुकान को संचालित कर रहे हो लेकिन क्या दुकान कहती है कि मुझे कोई संचालित करे? फिर तुम किस पदार्थ को अपना मान रहे हो भाई?

कोई पदार्थ कहता है कि मैं आपका नहीं हूँ, आपने धारण कर लिया ठीक है। आप मेरा बोझ उठाइए। ठीक है। जब तक मेरा बोझ उठा सकते हो, उठाओ तुममें ताकत है उठाते रहो। तुम नहीं उठा पाओगे, तो दूसरा उठाने को तैयार रहेगा। मैं तो वह बोझा हूँ जिसे सदियों से लोग उठाते आए हैं लेकिन न कोई पूरा उठा पाया है और न कोई पूरा उठा पाएगा।

प्रिय आत्मन्! ये पुद्‌गल का परिणाम है। ये धरती अनादिकाल से है और अनन्तकाल तक रहेगी। इस धरती को हमने बाँटा है, अपना मान करके लेकिन धरती न बँटी है, न बँट पाएगी। ये सदा कन्या की तरह कुमारी रही है। कन्या की तरह कुमारी रहेगी। इसलिए तो कन्या है कुमारी है।

मेरे द्वारा जो भी देखा जा रहा है वो पुद्‌गल है, जो भी सुना जा रहा है। तुम किस पर नाज कर रहे हो? पुद्‌गल पर नाज़ कर रहे हो। यदि अर्थ तक न पहुँचे, परमार्थ तक न पहुँचे, ज्ञान तक न पहुँचे तो तुम्हारा पुद्‌गल तुम्हें संसार में नचाता रहेगा।

प्रिय आत्मन्! चाहे प्रवचन सुनना, चाहे गीत सुनना लेकिन ध्यान रख लेना शब्दों को सुनकर मत नाचना, अर्थो को देखकर मत नाचना। जब तक ज्ञान के द्वारा यात्रा प्रारंभ न हो जाए तब तक नाचना शुरु मत करना।

प्रिय आत्मन्! ये बात सच है, कि जब हम लिखते हैं, ज्ञान की यात्रा पर चलकर कोई कवि लिखता है, ज्ञान की यात्रा पर चलकर ही कोई गायक लिखता है, कोई कवियित्री ज्ञान की यात्रा पर लिखती है, लेकिन झूमने वाले ज्ञान की यात्रा पर पहुँच पायें, न पहुँच पायें। जब ज्ञान की यात्रा पर पहुँचते हैं, तो स्थिर हो जाते हैं अपने आप में डूब जाते हैं ओर शब्दों की यात्रा पर चलने वाले मात्र झूमते रह जाते हैं।

प्रिय आत्मन्! आपके द्वारा जब सुना गया कि आचार्य क्या कहते हैं? सुरतालों संगीतों से, वाद्य यंत्रमय गीतों से नाम सुना पूजायें की, दर्शन कर चर्चायें की "किन्तु कहता निश्चय, मन से तुम्हें बिठाया न आत्मा भाव से ध्याया न।

आकर्णिताऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,

नूनं न चेतसि मया विधृ तोऽसि भक्त्या।

जातोऽस्मि तेन जन–बान्धव दु:खपात्रं,

यस्मात्क्रिया: प्रति फलन्ति न भाव–शुन्या:।।38।।क.मं.

हे प्रभु ! मैंने आपको सुना है, मैंने आपको जाना है, मैंने आपको देखा है लेकिन हृदय पर नहीं बैठाया। यानि शब्दों को सुना, इसका तात्पर्य आपने आकार को देखा। इसका तात्पर्य पुद्‌गल को सुना है, पुद्‌गल को देखा है। मूर्ति देखी,–पुद्‌गल को देखा। भजन को सुना, पुद्‌गल को सुना।

आप मेरा प्रवचन सुन रहे हैं, कि पुद्‌गल सुन रहे हैं। ध्यान देना, यदि ये प्रवचन आपके अंतस्थ को न छू सका, तो मात्र आपने पुद्‌गल को सुना है। मैं शब्दों का जादूगर नहीं हूँ, जो आपको पुद्‌गल को सुनाता रहूँगा, जो आपको नए–नए पुद्‌गल दिखाता रहूँगा और आपको आकर्षण के लिए बुलाता रहूँगा।

प्रिय आत्मन् ! कभी संत की साधना पर विचार करना चाहिए कि कितनी साधना के पश्चात् वह तत्व ज्ञान लेकर आता है और आपको कितना देने की कोशिश करता है। आप उसके अनुभव तक सोचकर जरा विचार करना। जब कोई साधक 24 घंटे में एक बार भोजन पानी लेता है और आपको इतना देता है और फिर आपके अंदर ये प्रमाद रहे इसका तात्पर्य है– कि अभी आपको मोक्ष बहुत दूर है, अभी श्रोता की पात्रता कोसों दूर है। जब भव्य जीवों का मोक्ष दूर होता है, तो वे विलंब से आते हैं जिनको अविलम्ब मोक्ष मिलना है, वे अविलम्ब आते हैं। देखिए यह शब्द यात्रा नहीं है, यह ज्ञान की यात्रा है, यह अर्थ की यात्रा है, यह परमार्थ की यात्रा है। अहो ! मैं जिसको देख रहा हूँ वह मुझे देखता नहीं हैं, मैंने शरीर को देखा शरीर मुझे देखता नहीं है, तो मैं क्यों देखूँ ? मैं जिससे बोलता हूँ वह मुझसे नहीं बोलता। मैं बोला–कान ने सुना, कान क्या मुझसे बोलता है फिर मैं क्यों बोलूँ। मैंने जिसका स्वाद लिया वह मेरा स्वाद लेता है क्या ? नहीं। नहीं लेता, तो फिर मैं क्यों उसका स्वाद लूँ। मैंने जिसे सूँघा उसने मुझे सूँघा क्या ? बोलो।

फूल से पूँछो– फूल तूमने मुझे सूँघा क्या ? बताओ मेरी आत्मा की संगुधि कौन सी है कितने गुण हैं मेरी आत्मा में, सूँध के बताओ। फूल कहेगा– मैं नहीं जानता, तुम्हीं सूँघते रहो मुझे, मैं तुम्हे नहीं सूँघता, क्या करें भौंरे की पर्याय का संस्कार है आपमें, वह छूटा नहीं, इसलिए मुझे सूँघ रहे हो।

प्रिय आत्मन् ! मच्छर सदा बोलता है, भौंरा सदा गुणगुनाता है। हमारी पूर्व पर्यायों के इतने संस्कार हैं, जो इतनी जल्दी नहीं छूटते हैं। आचार्य देव कहते हैं जो जानता है वह तुझे दिखाता नहीं

आचार्य ने कहा बोलो–क्यों ? ये नहीं कहा, देखो–क्यों ? क्योंकि देखना तो ये बात यहाँ पर, अहिंसा के पालन के लिये थी। यदि मैं कहता देखो क्यों ? तो शायद आप देखना बंद कर देते, ईया समिति का पालन बंद कर देते।

यह रहस्य है इस गाथा में कि **''यन्मयादृश्यते''** जो मेरे द्वारा देखा जा रहा है वह जानता नहीं है और जो जानता है, दिखता नहीं है, तो यहाँ पर यह कहना चाहिए कि देखो जानो, ये नहीं कहा, कि बोलो मत। क्यों, यदि तुम देखोगे नहीं, तो अहिंसा का पालन नहीं होगा। इसलिए देखना तो पर अहिंसा पालन के लिए, पर ईया समिति के पालन के लिए, देखना तो जीवदया करने के लिए। देखना तो कैसे ? निरखनिरख पगतै धरे पाले करूणा अंग कैसे। पहले जो गज पर सवार होकर चलते थे, वे ही आज कैसे चल रहे हैं निरख–निरख कर। **कैसे गजचढ़ चलते गरभ सौ सेना सजि चतुरंग निरख निरख पग ते धरें पालें करूणा अंग।** जो स्वयं तिरते हैं और तुम्हें तार देते हैं, कैसा लगता है ? कैसे प्यारे, सुहाने क्षण होते हैं। जिनकी वाणी तारणतरण है, तीर्थ कहलाती है, शासन है। शासन क्या है ? सत्ता की प्राप्ति का नाम शासन नहीं है। जिस दिन वाणी खिर जाती है, उसी दिन से शासन प्रारंभ हो जाता है, ठीक है न ? भगवान महावीर को 65 दिन हो गए लेकिन शासन नहीं चला।

केवलज्ञान तो हुआ पारसनाथ के शासन में। समोवशरण लगा पारसनाथ के शासन में, इन्द्रभूति गौतम आया पारसनाथ के शासन में, गुरु पूर्णिमा हुई पारसनाथ के शासन में। किस दिन हुई ? पारसनाथ के शासन में गुरुपूर्णिमा हो गई लेकिन दिव्यध्वनि खिर गई तो शासन हो गया। वीर शासन। ये जिनवाणी का शासन है, तो ''जिनवाणी का शासन ही सच्चा शासन है'' और आप इस शासन में रहते कि नहीं ? रहते हैं तो जिनवाणी के शासन में रहना ही शासन है। संघ में रहना, गुरु के शासन में रहना, राज्य शासन है। तत्वार्थ सूत्र में क्या लिखा ? अचौर्य व्रत के अतिचार में। राज्यातिक्रम याने राज्य का अतिक्रम करना, तो गुरुजी से पूँछा, गुरुदेव ! हम लोग संघ में रहते हैं। क्या राज्यातिक्रम करेंगे ? गुरुजी बोले संघ का राजा आचार्य होता है। उस आचार्य के विरुद्ध यदि कोई बिना पूँछे चीज का ग्रहण किया जाए, तो साधु को चारी का दोष लगता है। इसलिए अचौर्य महाव्रत नहीं पालता है। इसलिए साधु को अपने गुरु से पूँछकर कार्य करना पड़ता है, तभी अचौर्य व्रत पलेगा। तो जो वस्तु व्यवस्था जहाँ इष्ट होती है, उसको ध्यान देते हैं। तो मैं किससे बोलूँ ? बताओ, किसके पास बोलने जाऊँ ? जब मुझसे कोई बोलता नहीं तो मैं किससे बोलूँ। मैं जिससे बोलना चाहता हूँ, वह मुझसे नहीं बोलता।

यदि परस्पर में जरा भी कलह हो जाए, बुराई हो जाए उस दिन तो बोलते हो, कि वो हमसे नहीं बोलते, इसलिए हम उनसे नहीं बोलते, वो हमको नहीं देखते, इसलिए हम उनको नहीं देखते हैं।

यही बात निष्कषाय भाव से अध्यात्मभाव में उतरकर आ जाए तो कहना ही क्या है?

आपको याद रहे अधिकांशत: वृद्ध लोग परेशान हो जाते हैं कि घर में कोई सहयोग नहीं मिलता है, बच्चे सहयोग नहीं करते लेकिन सहयोग इसलिए नहीं करते, क्योंकि आप अधिक बोलते हैं। यदि ये गाथा जीवन में उतार लो, तो बच्चे आपकी पूजा करेंगे। बीना में शीलचंद्र जी नम वाले हैं, वह 24 घंटे में मात्र एक घंटे बोलते हैं। उनके सुनने के लिए पूरा परिवार तरसता रहता है, कि मैं कब सुन लूं। सभी बहुएँ आकर बैठती हैं तब एक घंटे स्वाध्याय करते हो और मौन हो गए। घर में रहते हैं पर 24 घंटे में एक घंटे बोलते हैं।

प्रिय आत्मन्! जिन शासन की प्रभावना ऐसी होती है। आप भले ही किसी को पहचान पायें, न पहचान पायें। आपके यहाँ पर एल.सी. जैन प्रोफेसर इतना श्रम करने वाले हैं। जिन्होंने विदेशों में जैन धर्म को फैला दिया। ऐसे-ऐसे व्यक्ति आपके यहाँ पर हैं क्योंकि बोलते नहीं है।

''जब बोलते नहीं हैं तो निज में प्रवेश होता है'' निज में प्रवेश होता है, तो अंदर के सूत्र नि:सृत होकर आते हैं प्रस्फुटित होकर के आते हैं, अंदर से प्रस्फुटन होती है। जब पानी बाहर नहीं निकलता है, तो झिरें और अंदर की फूटती जाती हैं और रिसकर पानी और आता जाता है।

प्रिय आत्मन्! इस तरह से मैं किससे बोलूं। तो बोलने के लिए आचार्य ने मना किया है। कम बोलो, क्योंकि ''बोलना तो चांदी के समान है, चुप रहना सोने के समान है'' सोने की कीमत हमेशा अधिक होती है। यदि बोलना ही पड़े, तो ऐसे जैसे कूँदने के पहले देख लेना चाहिए। ऐसे बोलने के पहले सोच लेना चाहिए। यदि बिना देखे कूदोगे तो क्या होगा? और बिना सोचे बोलोगे तो क्या होगा? समझ रहे आप। जितना जो कम बोलता है उसका उतना व्यक्तित्व निखर के आता है। न बोलना साधना है, बोलना साधना नहीं है। बोलना शब्द आराधना बन सकता है लेकिन मौन रहना साधना है। बोलोगे कितना ही अच्छा आराधना बन सकता है साधना नहीं बन सका है, तो महाराज श्री! यदि मैं बोलूंगा नहीं, तो दूसरे को समझाऊँगा क्या?

प्रिय आत्मन्! भगवान महावीर स्वामी ने किसको समझाया बारह वर्ष, आदिनाथ स्वामी ने किसको समझाया एक हजार वर्ष, जानते थे मैं किसको प्रतिपादित करूं, कोई शिष्य बनने लायक है ही नहीं, मेरा आत्मा ही मेरा शिष्य बन जाए और इससे बड़ा क्या होगा? यदि मेरी आत्मा मेरा शिष्य बन जाए, तो फिर क्या हो जाएगा? मैं भगवान बन जाऊँगा।

सच्चा शिष्य तो मेरी आत्मा ही है, मैंने अपनी आत्मा को अनुशासन का पाठ सिखा दिया वह शिष्य बन गया और यदि आत्मा को अनुशासन का पाठ नहीं सिखा पाया, तो जब स्वयं ही शिष्य न बन पाये, तो दूसरे को शिष्य क्या बन पाओगे? देखिए? **''यतपरै प्रतापाद्योहे यतपरान**

प्रतिपादेहे उन्मत्त चेष्टिं तनमे यद्यिनिर्विल्पक: यत परै प्रतिऊद्योहं'' मैं दूसरे के द्वारा प्रतिपाद्य के योग्य हूँ, कहे जाने योग्य हूँ। बोलो भैया मेरे विषय में, मैं महाराज के विषय में दो शब्द बोलना चाहता हूँ।

प्रिय आत्मन्! यतपरै: प्रतिपाद्योहं मैं किसी के द्वारा प्रतिपाद्य नहीं हूँ। बताओ! आत्मा को वचन क्या कहेंगे? आत्मा को पुद्गल क्या कहेगा? पुद्गलमय वचनावलियाँ, शब्दावलियाँ ये क्या कहेंगी मेरी चेतना के स्वरूप को। कह पाएंगी क्या? अनुभव को कह पाएंगी क्या? इन वचनों के पास अनुभव है कहाँ?'' आत्मा की अनुभूति को पुद्गल कह नहीं सकता है'' आप जो कहते हैं, पूरा-पूरा नहीं कह सकते हैं, ये तो मात्र ऊपर-ऊपर का कह देते हैं। वस्तुत: समुद्र में जितने रत्न हैं दिखाई तो देते हैं, लेकिन गिने नही जा सकते हैं।

रत्नाकार में रत्नों की राशि पड़ी हुई है दिखाई तो देती है, लेकिन गिनी नहीं जा सकती। उसी तरह से अनुभव में तो आत्मा आता है, लेकिन आत्मा को कहा नहीं जाता है ओर जो कहा जाए, समझ लेना कि जिस समय कहा गया, उस समय अनुभव नहीं है और जिस समयर अनुभव है उस समय कहा नहींरस जा सका।

शक्कर कैसी होती है? मीठी। बताओ? खोलो मुख शक्कर रखेंगे तब बताऐंगे। अनुभव तो शब्दातीत है, अनुभव वचनातीत है, अनुभव तो वचन के योग्य नहीं है, उसे तो आप अनुभव कर सकते हैं। शब्दों के द्वारा मैं जितना बतलाऊँगा, उतना अर्थ क्या होगा। बताओ मैं कैसा हूँ यदि बैठ जाऊँ तो हजार व्यक्ति अपनी-अपनी ओर से कहेंगे इसका तात्पर्य क्या है आपने जैसा कहा मैं वैसा आपके अनुसार हूँ दूसरे की अपेक्षा वैसा नहीं हूँ, तीसरे की अपेक्षा वैसा नहीं हूँ।

तो इसका तात्पर्य यह है कि मैं वचनों का विषय नहीं हूँ। आत्मा वचनों का विषय नहीं है ये आत्मा अर्निवचनीय है। इसको तुम वचनों से क्यों प्रगट करते हो? हे साधक! वह भी एक साधक था जो बारह वर्ष तक वन में भी गया, भवन में भी गया, नगर में भी गया, शहर में भी गया, आहार भी किया, विहार भी किया, आचार भी किया, विचार भी किया, क्या उससे किसी ने उसका नाम नहीं पूँछा होगा?

परिणाम बिगड़ रहे हों वह नाम तुम्हारा नहीं है। बताओ, अनंतानंत सिद्ध सिद्धशिला पर विराजमान हो गए तुम नाम जानते हो क्या? किनके नाम जानते हो गिनाओ? क्या कहा? तुम सिद्धों के नाम नहीं जानते, तुम तो बस उन नन्ने-मुन्नो बालकों के नाम जानते हो। 24 तीर्थंकरों को भी अरिहंत अवस्था में तुमने जब वह संसार में निकटतम थे, इसलिए जान लिया, वो भी आगम से।

प्रिय आत्मन्! वे सिद्धावस्था में नामातीत हो गए। उनसे पूँछो (सिद्धों से) तुम्हारा नाम क्या

है? वे बताएंगे क्या नाम है? उनसे क्या कहो–अजितनाथ तुम्हारा नाम है? वे कहेंगे। नहीं। हम अजितनाथ थे, तुम भूतपूर्वनय लगा रहे हो। कौन सा नय लगा रहे हो? भूतपूर्वनय लगा रहे हो। जैसे कोई व्यक्ति का मरण हो जाए और फिर कहा जाए कि स्वर्गीय श्रीमान्।

अब तुम भूतपूर्व लगा रहे हो वे तो नामातीत हो गए हैं, उनके पास कोई नाम नहीं है। ये नाम तो मेरे जिननाम, मेरे परिणाम को सुधारने के लिए है। वे नामातीत हो गए हैं। जितने गुण हैं उतने नाम हैं। जिस चाहे गुण को याद कर लो नाम बन जाएगा ओर हम क्या करते हैं। हम नाम अच्छा रखते हैं, गुण अच्छा रखें चाहे नहीं। लेकिन वे गुण अच्छा रखते हैं नाम जैसा लेना चाहो, ले लो। उन्होंने नाम नहीं लिखाए, अपने। जानते थे **''गुण पालो, नाम तो दुनिया लिखती रहेगी।''** गुण दुनिया नहीं देगी? नाम तो दुनिया में कोई भी दे देगा। गुण नहीं देगी दुनिया। और हम क्या कहते हैं महाराज श्री हमारा नाम दे दो,स हम क्या नाम रख लें।

भैया! आते और कहते महाराज श्री! हमें एक गुण दे दो। क्या? महाराज श्री! हमें एक गुण दे दो नाम तो दुनिया में कोई भी रख देगा। ''नाम बड़ा नहीं होता है गुण बड़ा होता है'' गुण सर्वत्र पूज्यन्ते न नाम न जाति। ''न नाम पूजनीय होता है, न जाति पूजनीय होती है, सर्वत्र तो गुण पूज्य होते हैं।

जब वह गुण तिर्यंच धारण कर लेता है, तो उसका कुल भी बदल जाता है, उकसी जाति भी बदल जाती है। किसके द्वारा प्रतिपादित हो तुम। बताओ, तुम्हारे विषय में कौन क्या कह रहा है? महाराज श्री! वो मेरी निंदा करते हैं, जय भगवान की। तुम्हारी निंदा करने की क्षमता किसी में है? बोलो। महाराजश्री! वो हमको अपशबद बोलते हैं। अरे आत्मन्! तुमको और अपशब्द। क्यो वो तुमको जानते नहीं हैं या तुम उनको जानते नहीं हो? दोनों अज्ञानी हो। वह मेरे विषय में कुछ कहें, क्योंकि मैं अनिन्दत हूँ।

धवला पुस्तक में कहा, मंगलाचरण में ही लिखा है क्या है कि मैं अनिन्दत हूँ, निन्दा से रहित हूँ जो मेरा स्वरूप समझेगा, वह मेरी निन्दा नहीं करेगा। ''जो आत्मा का स्वरूप समझेगा वह निन्दा नहीं करेगा। जो निन्दा करता है वह आत्मा का स्वरूप समझता नहीं है'' इस बात को लिखकर के रखना।

प्रिय आत्मन्! निन्दा को सुनकर के खेद–खिन्न मत हो जाना। ये तलैया है, ये सागर है तलैया कह देने से सागर बड़ा नहीं हो जाएगा और तलैया की निंदा करने से सागर की महिमा नहीं बढ़ जाएगी। स्तोत्र में लिखा है कि यदि कोई निन्दा करे कि ये देव बड़े हैं ये देव छोटे हैं।

प्रिय आत्मन्! उदाहरण दिया, कि कोई कहे कि ये तलैया है ओर ये सागर है। उसके कहने

से सागर की महिमा नहीं बढ़ जाती है, सागर तो अपने आप में सागर ही रहता है उसी तरह से गुणवान व्यक्ति हमेशा गुणवान ही रहेगा। तुम्हारी कोई कितनी भी निन्दा कर दे लेकिन सूर्य की निन्दा करने से सूर्य कभी निन्दित हुआ क्या ? बोलो–कहो सूरज से कि तुम अंधेरा देते हो, तुम जैसा अंधकार देने वाला कोई नहीं है, कहो सूरज से। क्या निन्दा हो गई ? नहीं। जब सूर्य प्रकट होता है तो सारा जग जान जाता है कि सूर्य तो प्रकाश देता है। इसी तरह ''कोई कितनी भी निन्दा करे लेकिन अपने आप में गुणवान बनो।''

आचार्य गुरुदेव विरागसागर जीने मेरे लिए धर्मस्थल क्षेत्र में सूत्र दिया था **अपने प्रति ईमानदार रहना।** क्या? अपने प्रति ईमानदार रहना। तुम्हारी साधना में कहीं कभी त्रुटि नहीं आएगी, शिथिलाचारी नहीं आएगी, मात्र अपने प्रति ईमानदार रहना। हम अधिकांशतः मंच पर आप कैसे हैं, कमरे में कैसे हैं। ऐसा नहीं ? जैसे आप मंच पर बैठे हो वैसे ही आप कमरे में भी उतनी परिणामविशुद्धि से बैठो। अपने प्रति ईमानदार रहो, हो गई साधना।

प्रिय आत्मन्! देखा तुम्हारा कौन वर्णन कर सकता है। ये तो ध्यान रख लेना आपके विषय में जो जितनी प्रशंसा करते हैं, वे आपको नीचे गिराते हैं। आचार्य सन्मति सागर जी ने कहा था औरंगाबाद में, जन्मजयंति 69वीं। आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज से कहा–महाराज श्री आप उद्‌बोधन दो।

भैया! ये जितने प्रशंसक बैठे हैं ये सब मेरे शत्रु हैं, ये सब मेरे संघस्थ साधु नहीं है। क्या बोले ? ये जितने प्रशंसक बैठे हैं ये सब मेरे शत्रु हैं मेरे संघस्थ नहीं है। क्योंकि मेरी आत्मा का पतन इसी प्रशंसा से होता है। इसलिए प्रशंसा कभी सामने नहीं सुनाना चाहिए। गुरु की प्रशंसा गुरु के पीठ पीछे सुनाना चाहिए। पीठ पीछे सुनाओंगे, तो श्रावकों का भला होगा। कहाँ सुनाना चाहिए, जब तक मंच पर महाराज न आयें, तो तुम खूब प्रशंसा सुनाते रहो, लेकिन मंच पर महाराज आ जाएँ तो फिर प्रशंसा सुनाना छोड़ देना चाहिए। क्योंकि प्रशंसा सुनाओगे तो क्या हो जाएगा तुम्हारे गुरु का पतन होगा। ये वस्तुतः आप अपनी कहते हो लेकिन पतन का कारण है गुरुजी के लिए। सत्य तो सत्य ही रहेगा, करना है तो करो न, रात्रि के 12 बजे से उठकर 1 बजे तक करना, किस ने मना किया। इसी समय क्यों करते हो कि सबको विघ्न हो, सबको कष्ट हो।

प्रिय आत्मन्! वो पीड़ा मैं जानता हूँ, जब तुम एक मंगलाचरण करने आते हो तो तुम्हारे मंगलाचरण से 500 लोगों को पीड़ा होती है। जब दमोह में आचार्य श्री विद्यासागरजी विराजमान थे और मैं श्रोता बनके बैठा था, तब मेरी पीड़ा मुझसे पूँछो कितनी पीड़ा होती है। जीवन में पहली बार किसी संत को पाया और 15 मिनट भैयाजी ने आकर ले लिए। अब ये 15 मिनट जीवन में कभी मिलेंगे, किसने देखा ? सोचो–यदि शायद वह 15 मिनट मंगलाचरण नहीं करते, तो 15 मिनट मुझे

आचार्य विद्यासागर जी को सुनने और मिल जाता। तो सोचो। इस विषय पर भी सोचना चाहिए, कि वस्तुत: मैं कहाँ हूँ। हम तो सोचते हैं कि श्रीफल चढ़ाने का सौभाग्य मिल गया लेकिन ध्यान रख लेना कि श्रीफल तो तुमने चढ़ा लिया लेकिन कितनों का शिवफल तुमने ले लिया।

''श्रीफल चढ़ाके शिवफल मत छीनना'' क्योंकि न जाने उतने समय में शिवफल पाने वाले शब्द मिल जाते। वर्गणाएँ मिल जाती। प्रिय आत्मन्! गुणगान करने के लिए जरूरी नहीं है, कि उनके पास जाकर किया जाए। गुणगान तो अंतस्थ की चेतना है। चित्त में भक्ति होती है मुख से स्तुति होती है। क्या होती है? भक्ति हृदय का विषय है। हृदय से प्रगट करो और ऐसे एकांत समय में ब्रह्म मुहुर्त में करके आओ इतना मन लगेगा कि पूरा दिन भर प्रसन्न रहोगे 4 बजे उठ जाना और फिर चिंतन करना।

कोयल कूँकती हैं तो 10 बजे नहीं कूँकती हैं। कोयल कूँकती है तो ब्रह्म मुहुर्त में कूँकती है। पूँछो कोयल से। वे क्या जाने कोयल की आवाज। कोयल जब कूँकती है तो पंचम स्वर में कूँकती है। तुम भी ब्रह्म मुहुर्त में कूँजोगे। पूरे नगर का वातावरण पवित्र हो जाएगा। करो गुणगान, तुम्हारी ऊर्जा पूरे देश में बिखर जाएगी 4 बजे जागोगे तो।

प्रिय आत्मन्! न तो मैं किसी के द्वारा प्रतिपादित हूँ, न मेरे द्वारा किसी का प्रतिपादन हो सकता है सत्य तो ये है कि ये साधन ज्ञान मिला है वह दूसरे को बांटने के लिए नहीं मिला है। एक किसान जिसको हल जोतते समय एक घड़ा मिल गया उसमें कुछ निधि रखी थी वह किसान क्या करता है? बोलो-क्या पूरे गांव में बांटता आता है, क्या बांटता फिरता है? नहीं बांटता है। तो वह किसान यदि रत्नों का घड़ा पा जाए, खजाना पा जाए तो बांटने नहीं आता है। तत्काल तो ऐसे ढककर के छुपाकर के रख देता है। रात्रि के समय छुपाकर लेके आता है ताकि नगर का कोई व्यक्ति देख न ले और धीरे-धीरे परिवार वाले भी न देख लें। ऐसे लुकाकर, छिपाकर रखता है गुप्त धन। मात्र घर में एक दो ही सदस्य को पता है और धीरे-धीरे निकालते-निकालते अच्छे खेत खरीद लिये, मकान खरीद लिया, दुकान बन गई सब बन गया पूरा परिवार सुखमय हो गया किसी को पता भी नहीं पड़ता।

जैसे वह किसान निधि को पाकर के उसका उपभोग अपने लिए करता है। इसी तरह से है ज्ञानियो! यदि तुम्हें ज्ञान की निधि मिल जाए, बाँटने मत फिरना। कि महाराज जी ने अच्छा बोला। ये बात मैं दूसरे को समझाऊँगा। नहीं, सौभाग्यर से मिल गया, कई जन्मों के पुण्य से मिल गया तो मात्र ये अपने लिए उठाकर के ले लेना। वह पपीहा अच्छा होता है कि स्वाति की बूँद को अपने अंदर समा लेता है।

प्रिय आत्मन् ! सीप अपने अंदर में पानी की बूँद समा लेती है, तो मोती बन जाती है पत्थर अपने अंदर नहीं समाता है तो पत्थर, पत्थर बना रहता है और सीप अपने अंदर समा लेता है तो मोती बन जाता है। केला अपने अंदर समा लेता है तो कपूर बन जाता है, गाय अपने अंदर पानी को समा लेती है तो पानी दूध बन जाता है।

प्रिय आत्मन् ! हम पत्थर ह्रदय न बनें, यदि पत्थरर बनेंगे तो यहाँ से सुनेंगे बाहर निकाल देंगे तो क्या महत्व होगा ? मूर्तिकार मूर्ति बेचने आया, एक मूर्ति की कीमत 100 रुपये, दूसरी मूर्ति 10000 रुपये, तीसरी मूर्ति लाख रुपये। मूर्तियों का आकार एक सा है पर कीमत भिन्न है तो ऐसाा क्यों ? जब मूर्ति का रंग एक है मूर्ति का रूप एक है तो फिर मूर्ति की कीमत भिन्न क्यों ? न तो ये सुनके जानती है न बोल के जानती है। इसलिये कीमत 100 रुपये बस मिट्‌टी की कीमत मिल जाये, बस ले जाओ।

दूसरी इसके कान इधर से खुले हुए हैं लेकिन मुख भी खुला है, तो क्या है कान से सुनते हैं और मुख से निकल जाता है, तो कीमत 10000 रुपये की है, तो कमल से कम सुना तो, और सुनकर दूसरे को दे दिया, तो अच्छी बात है तो 10000 की कीमत। लेकिन यह जो तीसरी मूर्ति है, कि इसके अंदर जो कान से स्थान दिया है मुख के पास नहीं गया। कान से ह्रदय की ओर स्थान गया है। कहाँ से ? कान से ह्रदय की ओर सीधा गया है इसमें। आवाज करोगे तो ह्रदय तक जाती है इसलिए इसकी कीमत लाख रूपए है।

प्रिय आत्मन् !

''मैं जो शब्द बोलूं या कोई भी जिनवाणी का शब्द निकले, कोई भी देशना का सूत्र निकले यदि ह्रदय तक पहुंच जाए तो समझ लेना कि अपने यहाँ आकर लाख कमा लिये और ह्रदय तक न पहुंचा तो आपने रिक्शे का किराया व्यर्थ लगाया।

प्रिय आत्मन्! आप ये जानना, कि इस तरह से यह जिनवाणी बड़ी अनमोल है ये उन्मत्त चेष्टा ये पागलपन है यदि किसी को समझने की चेष्टा करते हैं तो आचार्य कहते हैं - पागलपन छोड़ो। इस पागलपन के कारण तुम क्यों कषाय करते फिरते हो। कोई आवश्यकता नहीं है, तीर्थंकर भगवान समय होता है वाणी खिरा देते हैं और श्रोताओं के पुण्य उदय से होती है लेकिनर सदा उसके लिए ही नहीं बैठे रहते हैं। ये कोई उद्‌देश्य नहीं है। **प्रवचन करना साधको का उद्‌देश्य नहीं है ''साधना ही परम उद्‌देश्य है।''**

प्रिय आत्मन् ! यदि परोपकार का भाव जागे तो, थोड़ा सा कर देना चाहिए परोपकार के पीछे उपकारर मत छोड़ देना ये आचार्य पूज्यपाद स्वामी का वचन है। परोपकार ये पागलपन की

चेष्टा है जो तुम प्रवचन करने बैठ जाते हो। क्या है? ये वस्तुत: पागलपन की चेष्टाएँ हैं, तुम्हें तो अपने स्वरूप में लीन रहना चाहिए। ध्यान में लवलीन रहो क्या आवश्यकता है प्रवचन की।

ये आचार्य का उपदेश है। आचार्य कहते है''ज्ञान ध्यान में लवलीन रहो, **परोपकार तुम्हारा उत्कृष्ट धर्म नहीं है उत्कृष्ट धर्म तो अपनी आत्म साधना है।** ध्यान में जो निर्जरा होती है वह ज्ञान में नहीं होती है'' ज्ञान तो ध्यान के लिए है। किसके लिए है? ज्ञान तो ध्यान के लिए है। तुम नगर में रहते हो, शहर में रहते हो। मैं तो सच कहता हूँ जो विशुद्धि मैंने द्रोणगिरि में प्रतिदिन पाई वह विशुद्धि जबलपुर में मुझे एक भी दिन नहीं मिली। जो विशुद्धि ध्यान में मिलती है वह विशुद्धि किसी शहर से नहीं मिल सकती।

प्रिय आत्मन्! जो ध्यान उत्कृष्ट वहाँ क्षेत्र पर होता है विशुद्ध स्थानों पर होता है वो एक अनुपम रस होता है वो एक अनुपम अनुभव होता है। पूर्व में हमारे साधुओं ने जो अनुभूत किया है और वह अनुभव यद्यपि नहीं लिखा जा सकता, लेकिन फिर भी मैंने जो अनुभव किया है। वह आज भी सदियों-सदियों अमर रहेगा। हो सकता है विभवसागर इस दुनिया में रहे न रहे। लेकिन वो द्रोणगिर के अनुभव वो द्रोणगिर विधान वो निर्ग्रन्थ गुरु पूजा सदा गाती रहेगी, कि सिद्ध क्षेत्रों में जो रचनाएँ होती हैं, वो रचनाएँ सदा अमर हो जाती है।

प्रिय आत्मन्! कहने का तात्पर्य है**''उन्मत्त चेष्टम''** ये चेष्टा मत करो आवश्यकता नहीं है बोलने की। परोपकार की बुद्धि जागे, यदि कोई माँगने लगे तो सुना देना। जरूरी नहीं है कि बाजार श्रोता आ जाएँगे तब प्रवचन शुरु हो, यदि दो श्रोता भी हो तो उपदेश देने बैठ जाना। मैं तो चेन के लिए आया और चेतन से मुझे वेतन होना है - ये तन भी मेरा नहीं है इससे भी वेतन होना है, तुम लोग वेतन वाले हो इसलिए सदा तने-तने रहते हो लेकिन इधर मैं न तना रहता हूँ बस सदा अपने आप में रहता हूँ, आपके द्वारा आपकी शुरु की साधना नष्ट नहीं होना चाहिए।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

व्यवहार- निश्चय नय

प्रिय आत्मन्!

मैं समय हूँ,आप सभी समय हैं और सिद्ध भगवान समयसार हैं, मैं समय हूँ। समय यानि आत्मा। आप भी समय हो, आत्मा हो।

आत्मा को आत्मा जानना अत्यंत कठिन है, क्योंकि हम पर समय में इतना रहते हैं, कि स्वसमय को जान ही नहीं पाते हैं, वह समय जब राग-द्वेष, कर्मप्रदेश में परिभ्रमण करता है, तो आत्मा परसमय हो जाता है। वस्तुतः मैं तो एक ज्ञायक मात्र हूँ, जिस ज्ञायक दशा में किसी प्रकार की अशुद्धता नहीं। जिस ज्ञायक दशा में प्रमत्तपना है, न अप्रमत्तपना है। जिस ज्ञायक दशा-में न शुभरूप प्रवृत्ति है, न अशुभरूप प्रवृत्ति है। सत्यरूपतः मैं ऐसा ज्ञायक स्वभावी हूँ। शुद्ध नय की दृष्टि में है क्या ? कर्म बंध की बात तो दूर रहे, मेरे स्वभाव में तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी नहीं है, स्वभाव तो ज्ञायक है, इसमें भिन्नता कहाँ है, इसमें भेद कहाँ है, इस ज्ञायक स्वभाव ने तो अनंत गुणों को पी लिया है।

हे आत्मन्! जहाँ भेद है वहाँ व्यवहार है, जहाँ अभेद है वहाँ निश्चय है, जो स्व के आश्रय से है वह निश्चय है, जहाँ पर का आश्रय है वहाँ व्यवहार है, ऐसा यह समयसार जी की पावन देशना में हम निज का आश्रय क्यों और कैसे लें ? ये परम अनिवार्य होता है हमें निज का आश्रय इसलिए लेना है, क्योंकि मेरी ही आत्मा का मोक्ष होना है और मेरी आत्मा ही नरक जाती है। यदि मुझे मेरी आत्मा को दुर्गति के पतन से बचाना है, तो पराश्रय को छोड़ना पड़ेगा। निज आत्मा का आश्रय लेने से आत्मा उर्ध्वगामी बनती है और पर का आश्रय लेने से आत्मा भारभूत हो जाती है, तब वह अधोगामी बनती है। आत्मा जब आत्मा का आश्रय लेती है तब आत्मा सार को प्राप्त करती है, तो त्रैलोक्यसार सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती है। समयसार रूप सिद्धत्व अवस्था को प्राप्त करती है।

प्रिय आत्मन्!

तुम्बीफल कड़वा है, उस पर जब मिट्टी का लेप कर देते हैं, तो वह पानी में डूब जाती है और जब लेप उस पर हट जाता हैं, तो वह ऊपर जाती है। सिद्ध हुआ, पर के आश्रय से मैं नीचे जाता

हूँ और जब पर का आश्रय छोड़ता हूँ, तो ऊपर जाता हूँ। मैं जिस समय निज का आश्रय लेता हूँ उस समय पराश्रयपना छूट जाता है। स्वाधीनतापना आ जाता है। पर का चिन्तवन करते हैं, तो विचार पराधीन हो जाते हैं। जिस समय मैं पर का स्पर्श करता हूँ, तो स्पर्श पराधीन हो जाता है। जिस समय पर की गंध लेता हूँ, तो गंध पराधीन हो जाती है। ज्ञान में पर आता है तो ज्ञान पराधीन हो जाता है। ज्ञान में स्व आता है, तो ज्ञान स्वाधीन हो जाता है। वस्तुत: आप कहेंगे प्रभो! केवलज्ञानी के ज्ञान में तो तीनों लोक आ रहे है, क्या वे पराधीन हो गए? मैं वहाँ की बात नहीं कर रहा मैं यहाँ की कर रहा हूँ, कि जिस समय तुम्हें निज को आश्रय बनाना चाहिये और पर को आश्रय बना रहे हो तो पराधीन बन रहे हो।

हमारे पास इतना ही तो बर्तन है, चाहे उसमें दूध भर लो या पानी भर लो, या पंक भर लो, जो भी भर लो। हमारे मस्तक में जितनी बुद्धि है, प्रज्ञा है उस प्रज्ञा के द्वारा चाहे पर की चिन्ता कर लो, चाहे स्व की चिन्ता कर लो, चाहे पर कल्याण कर लो, चाहे स्व कल्याण कर लो। घड़ी के चौबीस घंटे हैं, जिस समय जिस सेकण्ड में तुम पर का उपकार करोगे, पर का आश्रय लोगे, उस समय तुम स्व का आश्रय नहीं ले सकते हो, निज का कार्य नहीं कर सकते हो आप ये अच्छी तरह से समझते हैं। इसी तत्त्व को आचार्य आगे दर्शा रहे हैं कि यह आत्मा वस्तुत: न तो अप्रमत्त होता है। यह कैसा है?

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।

एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव।।6।।स.सा.

जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त नहीं है और न प्रमत्त ही है इस तरह उसे शुद्ध कहते हैं और जिसे ज्ञायक भाव द्वारा जान लिया वह वही है, अन्य कोई नहीं। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि, द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय, पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नय को निश्चय नय कहते हैं और पर्यायार्थिक नय को व्यवहार नय कहते हैं। शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, अशुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

''न द्रव्य पर्यायर पृथक् व्यवस्था''।।यु. अनु.।।

यदि गुण शुद्ध है, तो पर्याय शुद्ध है, द्रव्य शुद्ध है। मान के चलिए एक त्रिभुज है और पूरे में तार लगा हुआ है। अब तार के ऊपर करंट होगा, तो यहाँ भी करंट है, वहां भी करंट है। उसी तरह से समग्र द्रव्यपना में पर्याय है, समग्र द्रव्य में गुणपना है, समग्र गुण में द्रव्यपना है, समग्र पर्याय में द्रव्यपना है। इसलिए यदि द्रव्य अशुद्ध होगा तो गुण, पर्याय भी अशुद्ध होंगे। गुण, द्रव्य पर्याय इस

तरह से ये तत्त्व जाने। मैं अपनी अशुद्ध पर्याय को देखकर, यह अवलोकन कर लूँ, कि मेरा द्रव्य अभी अशुद्ध है। अब मुझे अपने द्रव्य को शुद्ध कैसे बनाना है। ध्यान देना–सोना जो है अभी खान में उस पर मिट्‌टी चढ़ी हुई है, तो ऐसा नहीं है, अकेली पर्याय ही गंदी हो उसके पर्याय ही गंदी हो उसके जो गुणपना है उसमें भी विमलता नहीं है, जो द्रव्यपना है, उसमें भी मिश्रणपना है। अकेली पर्याय में मिश्रण नहीं है, वह मिश्रण गुण में भी वह मिश्रण द्रव्य में भी है।

अणोण्वणं पविसंता देंता ओगासमण्ण मण्णस्स।

मेलंता वि णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।7 पं.का.।।

एक द्रव्य दूसरे में प्रवेश करते हैं, अशुद्धता पर्याय मात्र में नहीं। पंचास्तिकाय में ये द्रव्य का सूत्र है। परस्पर में मिल रहे हैं लेकिन स्वभाव से अलग है फिर भी सोना और कालिमा अगल है। यानि एक दूसरे मिले जुले हैं लेकिन स्वभाव किसी ने नहीं छोड़ा। अपना–अपना स्वभाव कोई नहीं छोड़ता है ये विशेषता यहाँ पर दर्शायी है कि मिल तो गए हैं लेकिन फिर भी स्वभाव दोनों का पृथक्–पृथक् है। हमें ये जानना है, कि द्रव्य भी अशुद्ध हुआ है, गुण भी अशुद्ध हुआ है और पर्याय भी। गुण शुद्ध हो जाए तो ये मति श्रुत अशुद्ध ज्ञान केवलज्ञान बन जाए। क्या है? ज्ञान गुण है पयार्य, मतिज्ञान श्रुत ज्ञान है। मतिज्ञान की जो पर्याय है यदि ये शुद्ध होगी तो केवलज्ञान आ जाएगी। ज्ञान गुण शुद्ध होगा तो अनंतज्ञान रूप हो जाएगी। द्रव्य शुद्ध होगा तो सिद्ध पर्याय आ जाएगी। इस तरह की अवस्था है तो जो ज्ञायक स्वभाव है वह शक्तिरूप से सदा शुद्ध ही है। उस ज्ञायक स्वभावपने में जो मेरा त्रैकालिक स्वभाव है उस स्वभाव में रोग नहीं है द्वेष नहीं है, विकार नहीं है, शुभ, अशुभता नहीं है, कुछ भी तो नहीं है, लेकिन मैं फिर भी शुभ को, अशुभ को, पुण्य को, पाप को, क्रोध को, मान को, राग को, द्वेष, इत्यादि जो भी विभाव हैं इन विभावों का संचय करता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

देखिए शुभ अशुभ परिणमन का अभाव है क्योंकि जो ज्ञायक स्वभाव से प्राप्त हो जाता है, एक बार सिद्ध दशा प्राप्त हो गई, उस सिद्ध दशा में न तो शभ का परिणमन है न अशुभ का परिणमन है। ध्यान देना जो शुद्ध ज्ञायक दृष्टि है, वहाँ तो न शुभ रूप परिणमन है, न अशुभ रूप परिणमन है। इसलिए प्रमत्त भी नहीं होता है और अप्रमत्त भी नहीं होता है। प्रमत्त शब्द से लेना है मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम्, षष्ठम् ये प्रमत्त यानि प्रमाद सहित गुण स्थान हैं। यहाँ पर प्रमाद की प्रचुरता ओर तारतम्यता रहती है ये सभी प्रमाद सहित गुण स्थान हैं। यहाँ पर प्रमाद पाया जाता है। प्रमाद यानि कुशल कार्यो में उत्साह न होना, श्रेष्ठ कार्यो में, धर्म कार्यो में, उमंग नहीं होना। आलसी, प्रमादी हतोत्साह यानि उत्साह रहित। वृति का नाम प्रमाद है। छः गुण

स्थान ऐसे हैं, मिथ्यात्व गुण स्थान में बहुत ज्यादा आलस्यपना पाया जाता है। शेष – आगे ज्से सम्यग्दृष्टि बनेगा तो उसके अंदर उत्साह जागेगा, धर्म सुनने का, शास्त्र सुनने का, उपदेश सुनने का। वंचम्गुणस्थान वर्ती और ज्यादा उत्साही होगा, षष्टम् गुणवर्ती स्थान और ज्यादा उत्साही होगा। शीघ्रता से जाग रहे हैं, शीघ्रता से तत्परता से कार्य कर रहे है। बड़ी प्रीतिपूर्वक धर्म का सेवन करेंगे, बड़ी रूचि से धर्म का श्रवण करेंगे। बड़ी सावधानी से विहार करेंगे, साधना करेंगे, बड़ी रुचि से ध्धर्म का श्रवण करेंगे। यह सब धीरे–धीरे प्रमाद घटाते हैं और सप्तम् गुणस्थान में प्रमाद नहीं पाया जाता है बुद्धि पूर्वक वहाँ चेष्टा होती नहीं है, जहाँ तक बुद्धि पूर्वक चेष्टा होती है, वहाँ तक का व्यक्ति अपनी बुद्धि को बदलता है और कभी सीधी करता है कभी विपरित कर लेता है। अब अप्रमत्त से तात्पर्य चौदह गुणस्थान तक से है 7 से 14 तक 7 गुण स्थान अप्रमत्त के हैं, 6 गुणस्थान प्रमत्त के।

"ज्ञायको ज्ञानस्वरूपो शुद्धात्मा भाव:।"

वह कौन है जो प्रमत्त, अप्रमत्त, नहीं होता, वह ज्ञान स्वरूप जो भाव है, वह ज्ञायक है, वह शुद्धात्म पदार्थ है। कैसा है शुद्धात्म ? वह जो सिद्ध भगवान हैं उनकी दशा ऐसी है कि 14 गुणस्थान को पार कर चुके हैं। कैसे हैं, समयसार कैसा है ? ऐसा है जहाँ प्रमाद ही नहीं अप्रमाद गुणस्थानों को पार कर चुके हैं। गुणस्थानातीत हो चुके हैं। **एवं भंणति सुद्धा, शुद्ध नय अवलम्बित** शुद्ध नय का अवलंबन है जहाँ इस तरह से कहा गया है **णाओ जो उ सो उ सो चेवे** वह ज्ञाता तो ज्ञाता ही है, वह तो एक मात्र ज्ञायक ही है, जहाँ किसी भी प्रकार की रागद्वेष की वृत्तियां जन्म नहीं लेती हैं।

प्रिय आत्मन्!

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:" यह आगम वचन है और ये ऐसा आगम वचन है, कि जिस आगम वचन से जैन सिद्धांत की नींव भरी हुई है। जिस नींव पर पूरा जैन सिद्धांत का महल खड़ा हुआ है, स्याद्वाद और अनेकान्त ने जिसको सम्हाला हुआ है।

स्याद्वाद और अनेकान्त के शिल्पी ने जिस सूत्र से नींव भरी है, ऐसा यह आगम वचन है सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता मोक्ष का मार्ग है। ध्यान रखना – व्यवहार का निषेध मत करना ये व्यवहार ही मोक्ष मार्ग है। पहले व्यवहार में पूर्ण सफल हो जाओ और व्यवहार में प्रवृत्त हुए बिना यदि तुम व्यवहार का लोप करोगे तो क्या होगा ? अभी आपने व्यवहार रत्नत्रय को पाया नहीं है यदि तुम मोक्ष मार्ग नहीं मानते हों तो तुमने उमास्वामी को तिलांजली दे दी, तो तुमने अकलंक देव को तिलांजलि दे दी, तुमने भास्कर नंदी को तिलांजली दे दी, तुमने पूज्यपाद देव से बैर ले लिया।

प्रिय आत्मन्!

स्व पर बैरी मत बनो। आचार्य समन्तभद्र लिखते हैं-

कुशलाकुशलं कर्म, परलोकश्च न क्वचित्।

एकान्तग्रह रक्तेषु नाथ! स्वपर वैरिषु।।8 आ.मी.।।

हे प्रभु! जो एकांत में तल्लीन हैं जो मात्र निश्चय को ही मोक्ष मानते हैं, ऐसे एकांत वादियों से मैं क्या चर्चा करूँ? वे पर का घात भी कर रहे हैं और **वे स्व का घात भी कर रहे हैं।**

हे नाथ! कोई एक जीव चींटी की विराधना करता है तो प्रायश्चित ले लेता है लेकिन ये कैसे हैं जो पंचेन्द्रिय आत्मा की एक भगवान आत्मा कर रहे हैं क्यों? ये भगवान आत्मा को भटकाने की कोशिश कर रहे हैं। जो आत्मा अनंत काल के बाद मनुष्य पर्याय में आया और तुमने उसका व्यवहार चारित्र छुड़ा दिया तो क्या रहेगा? **अमृतचन्द्राचार्य भगवन् तो सबसे पहले कहते हैं कि मुनि धर्म का उपदेश देना चाहिए।** और तुम मुनिधर्म को ही यदि कहोगे कि यह व्यवहार है।

प्रिय आत्मन्!

पहले व्यवहार की नींव भरती है, तब ही तो निश्चय का महल खड़ा होता है, पहले व्यवहार के फूल आते हें तब ही तो निश्चय के फल आते हैं, पहले व्यवहार की धान पकती है तब ही निश्चय चावल निकलता है, पहले व्यवहार का कुँआ खुदता है तब हीं निश्चय का जल मिलता है। पहले व्यवहार का फूल खिलता है तब ही निश्चय की सुगंध मिलती है। यह सब है हम सभी व्यवहारी जन ही तो है। संसार के व्यवहारर में हर समय लगे हैं। अरे! वह व्यवहार भी सबसे ज्यादा आपके लिए प्रवृत्ति मूलक है, निश्चयर प्रवृत्ति मूलक तो व्यवहार ही है। जहाँ-जहाँ प्रवृत्तियाँ हैं, वहाँ-वहाँ व्यवहार है।

प्रिय आत्मन्!

पहले तो इनको दुर्व्यवहार छुड़ाने के लिए सद्व्यवहार अनिवार्य है अन्यथा ये दुर्व्यवहार करते रहेंगे। इंद्रिय विषयों का व्यवहार दुर्व्यवहार है। आचार्य जिनसेन स्वामी कहते हैं -

विषय कषाय विवर्जनार्थम पंचपरमेष्ठी आदि जिन पूजादि धर्मोपदेशम् अनिवार्यम्।।

विषय कषाय से बचाने के लिए पंचपरमेष्ठी आदि का स्मरण जिनेन्द्र पूजा आदि परम अनिवार्य है, यदि तुम विषय कषायों आदि के त्यागी बने नहीं और तुमने पूजा आदि का त्याग कर दिया। तो घर के द्वारे पर हम सबसे पहले लिखते है **शुभ-लाभ।** शुभ-लाभ लिखते कि नहीं?

कब से लिखते आ रहे हैं? जब तुम छोटे से होगे तब से लिखते आ रहे हो।

प्रिय आत्मन्!

एक तरफ लिखते हैं शुभ तो दूसरी तरफ लिखते हैं लाभ। ये संदेश है कि शुभ के साथ प्रवेश करोगे तो लाभ लेके निकलोगे। दीवाली आती है त्यौहार आता है आप वंदनवार टाँग देते हैं इसी तरह आप अपने द्वार पर लगा देते हैं वंदनवार यह बतलाता है कि इसमें 24 पत्तियाँ तीर्थंकर की प्रतीक हैं जब अंदर प्रवेश करो तो 24 तीर्थंकर को स्मरण करके प्रवेश करो। शुभ हो जाएगा, तब तुम क्या करोगे? लाभ लेके निकलोगे, लाभ तो सब चाहते हैं और शुभ करेंगे नहीं।

प्रिय आत्मन्!

शुभ करोगे तो पुण्य हो जाएगा। क्या शुभ करना भी छोड़ दोगे? नहीं। शुभ करना नहीं छोड़ना, अशुभ को तो छोड़ो। पहले हम कितने अशुभ को छोड़ पाए है, अभी मलमूत्र विसर्जन की क्रिया भी तो छोड़ी नहीं है, तो फिर तुम ने कौन सी क्रिया को छोड़ा है।

तुम्हारी बुद्धि में तो अभी मलमूत्र जैसी क्रियाएँ भी छूटी नहीं है और फिर यदि तुम शुभ क्रियाओं को छोड़ दोगे, तो तुम कहाँ? तात्पर्य है - जघन्य क्रियाओं का तुमने त्याग नहीं किया और तुम शुभ क्रियाओं का त्याग कर रहे हो तो कल्याण नहीं होगा। अपने अंदर में ही श्रद्धान बनाओ कि कम से कम सात (7) दिन में एक दिन जिन पूजा करे, जिन अभिषेक करें। ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नहीं शुभ बंधते। परिणाम निर्मल होते हैं तो अशुभ नश जाते हैं, पाप बंध नश जाते हैं। जिनके दर्शन से निधत्ति निकाचित जैसे कर्म नश जाते हैं। आप कहते हैं - पर का निमित्त क्या करेगा?

प्रिय आत्मन्!

धवलाकर से पूछो! कि पर क्या करेगा? उठाओ कलिकाल सर्वज्ञ वीरसेन स्वामी की सिद्धांत देशना वीरसेन स्वामी तो इतनी महान बात कहते हैं कि जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से निधत्ति और निकाचित कर्म प्रलय को प्राप्त होते है। भगवान के दर्शन करने से जन्म-जन्म के पाप बंध नश जाते हैं। किसी ने भी दुर्गति बांध ली हो, तो जिनेन्द्र के दर्शन से छूट जाती है।

इसलिए सदा में तो कहूँगा यदि तुम जिनेन्द्र की पूजा करते समय आयुबंध करो तो नियम से देवायु बंधेगी। यदि जिनवाणी सुनते समय गुरु की वैय्यावृत्ति के समय यदि आयु बंधेगी तो नियम से देवायु बंधेगी। ध्यान रखना - जब तक मुनि नहीं बनोगे, तब तक शुद्ध नहीं मिलेगा जिन्हें शुद्ध भोजन नहीं मिलता उसे शुद्ध ध्यान कहाँ मिलेगा।

शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति, शुद्धगुणों की प्राप्ति तो जो अप्रमत्त अवस्था में साधक पहुँचता है तब होती है। सविकल्प ध्यान तो गृहस्थ अवस्था में कर सकते हैं, ध्यान देना निर्विकल्प ध्यान के लिए आचार्य कहते हैं आकाश के फूल गधे के सींग देखे लेकिन ध्यान रख लेना – किसी देश में किसी काल में आकाश के फूल भी हो जाये या गधे के सींग भी हो जाएँ लेकिन ध्यान रखना – ध्यान की सिद्धि गृहस्थ आश्रम में नहीं होती इसलिए तो साधुजन इस मकड़ी का जाल को छोड़कर के चल देते हैं, आप बोलते हैं न दुनिया है मकड़ी का जाल। इस जाल में कोई निहाल नहीं होता है इस जाल के जंजाल को छोड़ने के बाद ही यह जीव अपने भाल को सम्हालता तो निहाल होता है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

कारण कार्य व्यवस्था

प्रिय आत्मन्!

माँ-जिनवाणी! जग-कल्याणी! त्रिभुवन सुखकारणी! पाप ताप संताप हारिणी! जन्म-जरा-मृत्यु के दु:खों से छुड़ाने वाली है। माँ जिनवाणी की मंगलमय आराधना करते हुए पूज्यपाद स्वामी देह और आत्मा की भिन्नता पर विचार कर रहे हैं। सबसे बड़े मिथ्यात्व के किले को भेदने के लिए पहला उपाय यह है कि देह में जो आत्मबुद्धि का जो परकोटा है। वह इतना अभेद्य है कि अनेक वीर योद्धा भी इसका भेदन नहीं कर पाते हैं। अनंतों काल लग जाते हैं इस देहात्म बुद्धि के परकोटे को भेदन करने में लेकिन भेदन नहीं कर पाते हैं। और जब तक परकोटे का भेदन नहीं होगा तब तक मिथ्यात्व रूपी किला का भेदन नहीं होगा। और जब तक मिथ्यात्व रूपी किले पर विजय नहीं होगी तब तक सम्यक्त्व का स्वराज्य नहीं होगा। तो आपके जिनशासन का ध्वज कैसे फहरेगा। जिनशासन का ध्वज तो तभी फहराया जाता है। जब सम्यक्त्व का स्वराज्य अपने अंदरन आ जाता है।

प्रिय आत्मन्!

परकोटा किला भिन्न-भिन्न होता है। लेकिन परकोटे को किला मान लिया जाता है। और किले को परकोटा मान लिया तो अलग हो गया, रास्ता अलग है, किला अलग है, परकोटा अलग है। देहात्मबुद्धि का परकोटा जब तक रहेगा तब तक इस मिथ्यात्व के किला को ढह नहीं सकते और उस पर जीव रूपी राजा राज्य नहीं कर सकता है। मराठी सीख गया। भाई संगति, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये सब कारण बनते हैं। कार्य की उत्पत्ति में अपने आप बोलते, सीखते भाषा आ जाती है, ये कार्य है।

एक वैद्य होता है वह पूछता है कि भाई आपका पेट दर्द कर रहा है न, ठीक-ठीक बताओ आज आपने बेसन कितने ग्राम खाया था ? आज आपने उड़द की दाल कितनी खाई थी ? आपको सर्दी जुकाम हो गया आपने रस के ऊपर पानी पिया था, इसलिए हो गया। तात्पर्य क्या है - पहले कारण है बाद में कार्य है। वैद्यराज पहले कारण बताया है कार्य तो सबको दिखता है लेकिन कारण

नहीं दिखता। कारण न दिखे, कितने भी छुपके करना लेकिन कार्य स्वयं कहता है कि मैं कारण पूर्वक हुआ हूँ।

हे बेटे! तु माँ से छुपाकर रसगुल्ला खा लेना लेकिन मुंह छपा न रहे इसलिए एक गिलास पानी तत्काल पी लेना अब क्या होगा? तत्काल जुकाम हो जाएगा। जब जुकाम होगा, सर्दी होगी, तब माँ पूछेंगी क्यों बेटा क्या हो गया? कुछ नहीं माँ अपने आप हो गया। बेटे–अपने आप नहीं होता, कुछ न कुछ तो हुआ है चलो बेटे डॉ. के पास दिखा दें। अब बताओ? आ गया ध्यान में – अब डॉ. पूछता है बेटे आज तुमने शक्कर खाई थी न, शक्कर के ऊपर पानी पिया था। नहीं डॉ. साहब शक्कर तो नहीं खाई रसगुल्ले के ऊपर पानी पिया था, बस कारण हुआ है तो कार्य हुआ। जितने भी डॉ. हैं जितने भी वैद्य हैं, जितने भी वकील हैं पहले कारण की खोज करते हैं कि ये कार्य हुआ तो इसका कारण का जन्म कहाँ हुआ होगा। यदि मुख्य कारण पकड़ लिया तो सबसे बड़ी नाड़ी पकड़ ली। सर्वप्रथम कार्य को विराम देने के लिए कारण को पकड़ना पड़ता है। मूल को पकड़े बिना क्या होगा? कार्य की निष्पत्ति नहीं होगी। सबसे पहले मूल को देखो, सम्यग्दर्शन का कारण क्या है? सम्यग्दर्शन तो सब चाहते हैं, तीन लोक में दुर्लभ है, तीन काल में दुर्लभ है। भो महाराज! सम्यग्दर्शन तीन लोक में दुर्लभ है, त्रिकाल में दुर्लभ है। अरे आत्मन्! सम्यग्दर्शन दुर्लभ है लेकिन तुझे नहीं, तुझे तो कब तक दुर्लभ था जब तक निगोद में अनंत काल से था। एक इन्द्रिय में था, दो इंद्रिय में था, तीन इन्द्रिय पर्याय में था,स चार इन्द्रिय की पर्याय में जब तक में कर्मफल चेतना को भोग रहा उस समय दुर्लभ था। अब तो कर्म चेतना है, अब तो निमित्त कारण जुटा पूज्यपाद देव कहते हैं–

जिनवाणी, गुरु का प्रवचन, देशना, सम्यग्दर्शन का निमित्त है। सम्यग्दर्शन में कारण है। भैया तुम चश्मा क्यों लगाए है। चश्मा आपकी दृष्टि विशिष्ट करने में निमित्त कारण है। यदि एक तरफ चश्मा रख दे तो पढ़ने में कठिनाई जाने लगती है। यानि निमित्त क्या कर रहा, आपके उपादान को सफल बना रहा। आंखों में रोशनी है, आंखों में रोशनी न होती तो आप देख नहीं पाते, लेकिन वह उपादान निमित्त के बिना प्रकट नहीं हो पा रहा आपके उपादान को निमित्त वैसे ही जगा देता है जैसे आंखों की रोशनी पर चश्मा विशेष। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कितना महत्वपूर्ण प्रसंग जोड़ा है सम्यग्दर्शन के विषय में कि सम्यग्दर्शन होता है। कहाँ होता है? आत्मा में। ये परम सत्य है रत्नत्रय आत्मा में होगा, मोक्ष आत्मार में होगा लेकिन ये सब कारण की अपेक्षा रखते हैं। ये परम सत्य है कि अग्नि लकड़ी में जलेगी, ईधन में जलेगी लेकिन ईधन को जलाने के लिए एक माचिस की तीली आवश्यक होती है। ये परम सत्य है कि ईधन ही अग्नि बनेगा, ईधन में ही अग्नि जलेगी, लेकिन ये भी परम सत्य है लकड़ी कितनी भी रखी रहे लेकिन एक माचिस की तीली के अभाव में

नहीं जलेगी। कभी-कभी ऐसा होता है, बरसात के दिनों में माचिस भी रखी रहे लेकिन यदि लकड़ी गीली रहे तो नहीं जलेगी यानि अनुकूल कारणों का अभाव। अनुकूल कारणों का सद्भाव होने पर कार्य होता है, यदि प्रतिकूल कारण रहे तो कार्य नहीं होगा। भाई आटे से रोटी बनना है। तुमने तो पत्थर का पाउडर रख दिया। तो रोटी बन जाएगी क्या ? मिट्टी का घड़ा बनना है तो सीमेंट से घड़ा बनाने की चेष्टा करोगे तो कुम्भकार की चाक पर नहीं बनेगा, कुम्हार की चाक पर मिट्टी का घड़ा बनता है सीमेंट का घड़ा नहीं बनता है।

प्रिय आत्मन् !

यही तो विशेषता है कि मोक्ष को जानना चाहते हैं मोक्ष को पाना चाहते हैं। हे मुमुक्षुओं ! इतना ध्यान रख लेना पहले कारण कार्य व्यवस्था को समझ लेना। महाराज श्री ! समझते न होते तो, हम अपने बच्चे को K.G. में पढ़ने न भेजते। यदि कारण कार्य व्यवस्था को न समझते तो बच्चे की स्कूल फीस न भरते।

प्रिय आत्मन् !

आप समझते हो लेकिन मानते नहीं हो। आपका शिशु, शिशु भारती में पढ़ करके अपने उपादान को विकसित करता है। अ अनार का सीख लिया, अरिहंत का अ सीख लिया, सिद्ध का सीख लिया, आचार्य का आ सीख लिया। आप के बेटे का उपादान अपने आज जाग्रत नहीं हुआ। स्कूल में गया। शिक्षक-शिक्षिका के निमित्त से आपके बेटे का उपादान जाग्रत होता है। उसी तरह से धर्मसभा में आकर के गुरु के पास जिनवाणी को सुनकर के इस तत्त्व देशना को सुनकर के आपका उपादान जाग्रत होता है। आप उपादान को जगाने के लिए ही तो बैठे हो।

प्रिय आत्मन् !

आप कह सकते है यदि उपादान जाग्रत होता तो मैंने तो हजारों बार प्रवचन सुने हैं, 60 साल से प्रवचन सुन रहा हूँ। आज तक उपादान क्यों नहीं जागा ? उपादान बाहर के निमित्त से जागता तो कितने साधु संत आ गए जीवन में ? समाधान पर ध्यान दो उपादान तो भीतर में ही जगेगा। अभी तक नहीं जगा तो इसका तात्पर्य आज भी नहीं जागेगा क्या ? ध्यान देना आचार्य समंतभद्र स्वामी जैसा तार्किक चूड़ामणी इस जगत में दूसरा नहीं हुआ और वे लिखते हैं-

बहिरंग हेतु - द्वयाड.विष्कृत-कार्यलिंगा।।33।। स्तोत्र स्वयंभू

कार्य का आविष्कार दो लिंगों से होता है, चिन्हों से होता है, अंतरंग लिंग और बहिरंग लिंग, अंतरंग चिन्ह और बहिरंग चिन्ह, अंतरंग कारण और बहिरंग कारण। जब दोनों कारण मिलते हैं तब

कार्य उत्पन्न होता है। जिस समय कारण मिला उस समय तुम्हारे परिणाम अनुकूल नहीं थे। अंतरंग का उपादान उस समय तुम्हारे परिणाम अनुकूल नहीं थे। अंतरंग का उपादान उस समय तुमने जाग्रत किया नहीं। अंतरंग निमित्त मिले तो तुम उस समय जाग्रत नहीं हुए। अंतरंग निमित्त भी आत्मभूत अनात्मभूत दो प्रकार का। बहिरंग निमित्त भी आत्मभूत और अनात्म भूत दो प्रकार का। ये अंतरंग निमित्त-एक तो कर्म के उदय से होने वाला और एक है तो अनात्मभूत हो गया, आत्मा के आश्रय हुआ तो आत्मभूत। इसी तरह बहिरंग निमित्त बाहरी वस्तु के निमित्त से हो वो अनात्मभूत।

प्रिय आत्मन्! संसार मार्ग के कार्य हों, चाहे मोक्ष मार्ग के कार्य हों, चाहे पाप के कार्य हों, चाहे पुण्य के कार्य हों, चाहे साधना का पथ हो, चाहे विराधना का पथ हो, चाहे हिंसा हो, चाहे अहिंसा हो, कारण के बिना कभी कोई कार्य त्रिकाल में नहीं हुआ। ऐसा सिद्धान्त बनाना पहले ठीक है और जब यह सिद्धांत आपका परिपक्व हो जाए तब फिर कारण सम्यक् जुटाने में लग जाना। मोक्षमार्ग के कारण कौन हो सकते हैं?

सम्यग्दर्शन के कारण कौन हो सकते हैं? जिनबिंब दर्शन, धर्मोपदेश, देवऋद्धि दर्शन, जातिस्मरण। जिनवाणी श्रवण, धर्मोपदेश ये जो धर्मोपदेश आप सुन रहे हैं ये समझ के चलना कि सम्यग्दर्शन का पहला कारण आप प्राप्त कर रहे हैं। क्या सम्यग्दर्शन में देशनालब्धि पहला कारण है, नरकगति हो तिर्यंचगति हो, देवगति हो या मनुष्यगति हो। चारों गतियों में सम्यक्त्व का पहला कारण है तो वह धर्मोपदेश है। बहिरंग कारण अंतरंग कारणों को जाग्रत करते हैं जैसे अग्नि तवे को गरम करती है तवा रोटी को गरम करता है और वह रोटी पक्व हो करके, आपके शरीर की क्षुधा को शांत करती है। देखिए किस तरह से एक निमित्त दूसरे निमित्त में कारण बनता जाता है। एक ही निमित्त है और वह पूर्ववर्ती कारण अपने आगे के कार्य का उत्पादक होता है।

उत्तरवर्ती कार्य पूर्ववर्ती कारण है। पहले वही कारण था बाद में वह कार्य हो गया। बाद में जो कार्य हुआ वह कारण बना, उसके आगे-आगे वह कार्य होता जाएगा। वैसे पहले आटे की लोई, आटे से आप क्या कर रहे हैं, आटा कारण है, किस में-लोई बनाने में, लोई किस कारण में - बेलने में, बोलना किस कारण में तपने में, कितने कारण हो गए। पहले जो कारण बाद में वही कार्य। अब बताओ बिना कारण के कोई कार्य हुआ क्या? इतना समझ लेना। आप रोटी बनाना जो-जो सामान बचा रहे वह है कारण, जो न बचे वह है कार्य। क्या-देख लेना गैस चूल्हा-ज्यों का त्यों। दु:ख भोगते जा रहे और शरीर ज्यों का त्यों बना है, इस भव में भोग, अगले भव में फिर दूसरा शरीर मिल जाएगा शरीर पर शरी मिलते जाएंगे लेकिन दु:ख आपका बढ़ता जाएगा।

प्रिय आत्मन्! मूल कारण क्या है देह में मेरी आत्मबुद्धि, शरीर में आत्मबुद्धि ये हमारे दु:ख का कारण हैं। ये कार्य कारण व्यवस्था व्यापारी सभी जानते हैं कि कितने कार्य होते हैं।

बिना कारण के तो कोई कार्य करते ही नहीं पहले कारण जुटाया। आज आपको पैसे कमाना है आप कारण जुटाएंगे जाकर के अपनी दुकान खोलेगे कारण हुआ, कमाई कार्य हुई, आ गया ध्यान में। पहले आपने व्यापार में पूंजी लगाई कारण हुआ फिर व्यापार से जो कमाई हुई वह कार्य हुआ। पहले कारण होता है बाद में कार्य होता है। ऐसी व्यवस्था पर जितना श्रद्धान होगा उतने सम्यक् कारण जुटाओ। हम देव के पास जाते हैं, प्रतिदिन पूजा में पढ़ते है, **देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन–रतन करतार। कितने रतन करतार** तीन रतन करतार इसलिए तो पूजा बदल दी। हमें ये **पढ़ना ही नहीं। कारण से बैर है हमारा। कारण से हमारा बैर है कारण को नहीं स्वीकार करेंगे औश्र जब कारण को नहीं स्वीकार करना है तो जहाँ–जहाँ पर कारणों की चर्चा आएगी हम उसको स्वीकार नहीं करेंगे। सो हमने क्या किया ये देव, शास्त्र, गुरु, रतन शुभ वाली छोड़ो तो पढ़ो कौन सी ? अंतर बाहर झुलसा है मेरा अंतस्थल। जिनसे मेरा झुलस रहा है अंतस्थल। किससे झुलस रहा है ? पुण्य पाप की, शुभ और अशुभ की ज्वाला से तुम्हारा अंतस्थल झुलस रहा है ?**

प्रिय आत्मन !

ऐसा पाप करके केवली भगवान के चरणों में कर्म मत बांध लेना पूजा करके। अंजना को तो 22 वर्ष का बधा था, उसने तो 22 घड़ी किया था, प्रतिमा को छुपाया था। एक दिन तुम पूजा करके पाप बांध रहे भगवान के चरणों में। क्यों ? क्योंकि भगवान की जिनवाणी क लोप कर रहे हो। कौन सा लोप कर रहे ? इधर शुभ के लिए क्या बता रहे हैं पूज्यपाद देव–

'आत्मानं पुनाति इति पुण्यं' आत्मा को जो पवित्र करे उसे पुण्य कहते है और तुम क्या कर रहे हो कि वह आग है झुलसा रहा है, जला रहा है, तपा रहा है।

प्रिय आत्मन् !

इसलिए कहते हैं पूज्य आचार्यों की वाणी को पढ़ो। किसके पास कितनी प्रज्ञा थी उसने अपनी प्रज्ञा से लिख दिया उस समय, बाद में वह चीज इतनी प्रसिद्ध हो गई कि अब कैसे बदले। इसलिए इस तत्व पर ध्यान देना कि तुम जिस चीज को पढ रहे हो साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के सामने खड़े होकर के जिनवाणी का लोप कर रहे हो –

केवलि श्रुत संघ धर्मदेवा ऽवर्णवादो दर्शमोहस्य ।।13/6।।त.सू.

महाराज श्री निधत्ति, निकांचित कर्म कैसा होता है ? देवशास्त्र के अवर्णवाद से निध त्ति, निकांचित कर्म का बंध होता है और ध्यान रख लेना जब पूजा करो, हम तो अंतर में तन्मय हो गए। बाहर सभी लोग तो भक्ति में तन्मय हो गए, ताली बजा रहे। जो करे तो भोगे, तो

जो अनुमोदना करे वह भी भोगे ऐसा हो जाता है। हम तो बता रहे हैं कि सम्यग्दृष्टि को पुण्य झुलसता नहीं।

पुण्यफलां अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।

मोहदिहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा।।45।।प्र.सा.

अरहंत पद तीर्थकर नाम पुण्यकर्म के उदय से होता है। और उनकी काय तथा वचन की क्रिया निश्चय से कर्म के उदय से है। परंतु वह क्रिया मोह राग, द्वेषादि भावों से रहित है इसलिये मोहकर्म के क्षय से उत्पन्न हुयी ऐसी कही गई है।

प्रिय आत्मन्!

पुण्य तो तुम्हें अरिहंत बनाता है, पाप नहीं। पुण्य आपको झुलसता नहीं है पुण्य तो आपको अरिहंत बनाता है चूक गए। छंदों में फेर बदल करना ठीक नहीं है पुण्य का प्रकाश तो हमारे लिए। ध्यान रख लेना ये विषय कुछ ऐसे हैं जब तक इन विषयों को सम्यक् तरह से समझोगे नहीं तब तक हमारी धारणा मिथ्यात्व में पड़ी रहेगी हम पूजा को पढ़ते रहेगे। इसलिए समंतभद्र, विद्यानंदी ऐसे महान आचार्य हुए हैं जिन्होंने युद्ध लड़ा है क्या किया है? छः महीने तक अकलंक स्वामी ने वाद-विवाद किया जिन विषयों पर, आज तुम उन्हीं विषयों को स्वीकार करके बैठ गए। आप में से कौन जैन है - मैं नहीं कहता, आपका विचार बताएगा। ऊपर के ड्रेस से, भगवान के दर्शन पूजा करने से आप जैन नहीं हो जाते हैं। आपके विचारों में मान्यता क्या है? विचारों में मान्यता ये रहे कि पुण्य हमें झुलसता है, तो आप जैने नहीं हो सकते सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव यह जानता है कि जिनवाणी में कहा गया है कि -

कुन्दकुन्द स्वामी के वचन को आप कैसेस मिथ्या कह रहे हैं निमित्त को आप ठुकरा रहे हैं। पुण्य तो निमित्त है और ऐसा सातिशय निमित्त है जो आपको मोक्ष दिलाता है। आप किस मुख से बोल रहे हो उसी पुण्य के मुख से बोल रहे है जो हमें झुलसता रहा है। यदि पुण्य न होता तो एकेन्द्रिय की पर्याय में होते तो मुख न मिलता, दो इंद्रिय की पर्याय में होते तो कुछ बोल नहीं पाते, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय की पर्याय में, अरे! कितना पुण्य जुटाके तू इस पर्याय में आया है बोलो, क्या? मनुष्य आयु पुण्य नहीं है क्या? मनुष्य गति पुण्य प्रकृति नहीं है, क्या? पहले तो मनुष्य आयु ही पुण्य प्रकृति है, मनुष्य गति में पुण्य प्रकृति है। यदि तू पुण्य में झुलसता है तो पहले तुझे भगवान की पूजा नहीं करना चाहिए। मनुष्यस आयु समाप्त करना चाहिए। यदि तू पुण्य में झुलसा है तो पूजा करने क्यों आया? ध्यान देना, पुण्य आयु मनुष्य आयु है, पुण्य गति मनुष्य गति है पहले गति को समाप्त करेगा कि आयु को? ऐसा मत करना।

प्रिय आत्मन् !

पुण्य तो आपके पथ को प्रशस्त करने के लिए है। इतना जरूर ध्यान रख लेना पुण्य कार्य करते समय संसार की आकांक्षाएं मत करना। मूल कारण ध्यान दो। हमारे आचार्यों ने पुण्य करने को मना नहीं किया, पुण्य करके तुम संसार के कारण मत जुटाना। भाई भोजन करना मना नहीं है लेकिन भोजन करके दौड़ना नहीं। आपको अनार पीना मना नहीं लेकिन अनार रस पीकर के पानी नहीं पीना। हम मूल कारणों पर ध्यान नहीं देते है और विरोध करते हैं। आचार्य कहते हैं–

विशुद्धि की जड़ पुण्य है और आप पुण्य को ही छोड़ दोगे तो विशुद्धि कहाँ से बढ़ेगी ? वीतरागता कहाँ बढ़ेगी ? पुण्य को यदि छोड़ दोगे, वीतरागता नहीं पाओगे। वीतरागता का साधन है पुण्य। आप जिसको पुण्य कहते हैं मुझसे पुण्य होता है। मैं णमोकार जपता हूँ, मेरी आत्मा पवित्र होती है पुण्य होता है। मैं ईर्या समिति का पालन करके चलता हूँ पुण्य होता है। मैं भाषा समिति से बोलता हूँ तो पुण्य होता है। मैं शोधकर खाता हूँ तो मुझे पुण्य होता है बताओ मैं क्या करूँ देखके न चलूँ क्या ? प्रेम से न बोलू क्या ? मैं सत्य न बोलूँ क्या ? मैं सत्य बोलता हूँ तो पुण्य होता है। मैं ब्रह्मचर्य को पालन करता हूँ तो मुझे पुण्य होता है बताओ क्या किया जाए ? आप सोचिए यदि आप ऐसे पुण्य का कह देंगे झुलसा चित्त अंतस्थल, ब्रह्मचर्य का पालन करने से पुण्य होता है आपसे और आप कह रहे कि व्रत पालन से अंतस्थल झुलसता है।

प्रिय आत्मन् !

इन तत्त्वों को जानना पड़ेगा और जान करके देवशास्त्र गुरु रतन हैं। क्या है ? तीन रतन करतार और ये कैसे हैं देव कारण, शास्त्र कारण, गुरु कारण। तीन रतन करतार, करता बताया। कैसे कारण रूप में करता, कारण में कार्यरूप का उपचार कैसे। देव, शास्त्र, गुरु रतनशुभ तीन रतन करतार। कौन से तीन रतन। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तो सम्यग्दर्शन में कौन कारण है देव, सम्यग्ज्ञान में शास्त्र, सम्यक् चारित्र में गुरु ये कारण हैं। यदि देव न मिले तो शास्त्र से काम हो जाता है, यदि शास्त्र न मिले तो गुरु से लेकिन आपने क्या किया ? इनमें से कोई भी कारण को छोड़ दिया स्वीकार न किया। ध्यान रखना कभी ये गौण कभी कोई प्रमुख रहेगा ये तो हो सकता है लेकिन त्याग किसी का नहीं हो सकता है। यदि त्याग कर दिया कि हमारे देव का त्याग है, हमारे शास्त्र का त्याग है, हमारे गुरु का त्याग है। भाई हम रात्रि भोजन का तो त्याग नहीं कर सकते, हम कुछ और तो त्याग न कर सके, हम गुरु का त्याग कर देते हैं।

प्रिय आत्मन् !

ध्यान दो देव, शास्त्र, गुरु में से एक भी त्याग कर दोगे तो आप कहां जाएंगे, संसार का त्याग

कभी नहीं कर पाएंगे, तुमने गुरु का त्याग करते ही चारित्र का त्याग कर दिया। तुमने शास्त्र का त्याग करते ही ज्ञान का त्याग कर दिया। तुमने देव को छोड़ते ही सम्यग्दर्शन छोड़ दिया। इतना ही मत मान लेना कि मैं देव की उपासना करता हूँ तो नहीं।

जहाँ देव न मिले, शास्त्र न मिले, वहाँ पर भी भगवान महावीर ने सिंह की पर्याय में सम्यग्दर्शन पा लिया है, सम्यग्ज्ञान पा लिया, चारित्र पा लिया। अब बताओ निमित्त कारण से कार्य हुआ कि नहीं। कौन कारण हुआ, दो मुनिराज ऐसे निमित्त कारण बने। कहाँ वो शेर दौड़ा जा रहा है हरिण के पीछे ओर कहाँ निमित्त बीच में आ टपका। उस निमित्त ने यहाँ हिरण की भी रक्षा कर दी और दूसरी ओर इसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का लाभ दे दिया।

प्रिय आत्मन्!

ऐसा ही तो है निमित्त। इसलिए आप निमित्त को तो ऐसा स्वीकारो। यदि निमित्त नहीं स्वीकारोगे तो हमारे डॉ. साहब का हास्पिटल बंद करनी पड़ेगी।

मूलं संसार दु:खस्य देह एवात्मधीस्ततः।

त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त र्बहिरव्यावृतेन्द्रियः।।15 समाधि तंत्र।।

शरीर में आत्मबुद्धि जब तक रहेगी, तब तक दु:ख रहेगा। (धी) बुद्धि किसमें हैं आपकी कहाँ जा रही है, बुद्धि ज्ञान में जा रही है – नहीं, दर्शन में जा रही है – नहीं, चारित्र में जा रही है – नहीं। शरीर में जा रही है कि मैं ही शरीर हूँ। बैरूप सुभग मूरख प्रवीण चित्त हूँ। मेरी बुद्धि ऐसी जा रही है। हे आत्मन्। इस बुद्धि का त्याग करो तुम शरीर नहीं हो, गोरे काले नहीं हो, तुम स्त्री नहीं हो, तुम पुरुष नहीं हो। मैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक नहीं हूँ मैं नारक, तिर्यच नहीं हूँ, बाल्यवृद्धता नहीं हूँ मैं इन पर्यायों से रहित हूँ।

इनको त्याग करके घर को मालिक मत मानो। घर अलग है और घर में बैठा मालिक अलग है। तुम घर को ही मालिक मान लोगे तो कैसे अंदर प्रवेश करोगे। ध्यान रख लेना घर के अंदर मालिक बैठा है और तुम घर को अपना मान रहे हो। और घर से चर्चा कर रहे हो। ये घर ही मालिक नहीं है वह तो मालिक अंदर बैठा है। जैसे मकान के अंदर मालिक बैठा है उसी तरह मेरा आत्मा इस मकान के अंदर बैठा है। इस मकान के अंदर बैठे अपने मालिक को पहचानो इन दीवारों को मालिक मत मानो। मकान को मालिक मत मानो। मकान भिन्नस है और मालिक भिन्न है मकान को मालिक मानोगे तो कार्य सिद्ध नहीं होगा। अंदर में प्रवेश करो। आप लिखते है अंदर आना माना है। क्या लिखते है? अब बताओ आपने लिख दिया कि अंदर आना मना है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य कहते है अंदर आओ तुम लिखते हो अंदर आना मना है। लिख तो देना आज बोल देना क्रोध से कि अंदर आना मना है, बोल देना मान से कि अंदर आना मना, बोल देना माया से कि अंदर आना माना है। बोल देना अपनी कषायों से कि अंदर आना मना है। बोल देना उससे जो-जो आपके अंदर विषय विकार जन्म ले उससे कह देना कि तुम बाहर रहो बिना आज्ञा प्रवेश वर्जित है। अपनी आत्मा पर लिखके रखना है। हे विषय, हे विकार, हे कषाय, हे राग तू किसकी आज्ञान से आया है। सावधान, मतलब चित्त में ध्यान रहे कि बिना आज्ञा के कोई प्रवेश तो नहीं कर रहा है। प्रवेश कर रहा है तो सावधान रहो। गोमटेश विधान में पढ़ा था ज्ञान रूप तलवार लिए खड़े हैं हर समय जाग्रत चेतन बाहुबली इसलिए कर्मयोग उनके पास नहीं आ पाए रत्नत्रय का धन नहीं चुरा पाए। लेकिन हमारा ध्यान मान महा विषरूप माना। हे प्रभु! तुझमें और मुझमें कोई अंतर नहीं है लेकिन अंतर है तो इतना ही है ज्ञान महानिधि लूट रंक निबल कर डारयो, इन्हीं तुम मुझ माँहि भेद जु अंतर पार्‍यो। मुझमें, आपमें भगवान में क्या अंतर है।

सोहं जो परमात्मा है वहीं तो मैं हूँ मैं ही तो भगवान आत्मा हूँ लेकिन अंतर यही है कि मेरी ज्ञान निधि लुट गई है तो क्या करो बहिरव्यावृतेन्द्रिय: बाहरी इन मान्यताओं को रोक दो और अंदर में प्रवेश करो। कहाँ प्रवेश करो ? अंदर में प्रवेश करें, आपनपे कछुआ को देखा होगा। कछुआ जो होता है जब बाहर आता है तो धीरे-धीरे आता है। पानी से बाहर निकलने में समय लगता है ओर उसके बाद अपने शरीर के दो हाथ, दो पैर सिर इन पांच अंगों को बाहर निकालने में 30 मिनिट का समय लेता है कछुआ। तब बाहर निकलता है। ध्यान देना कभी देख लेना जब कछुआ रेत पर आए तो कि कितने धीमे से निकलता है। एक चावल का दाना फेंक देना एक सेकण्ड नहीं लगेगा ओर पांचों अंग, उसके अंदर। बाहरी, हलन-चलन को रोको। अंदर में प्रवेश कर जाओ। लेकिन हम बाहर तो जल्दी दौड़ते है। साधु को कछुआ कहा गया है। हे साधु! तुम कश्यप की तरह रहना। मुनिसुव्रत भगवान का क्या चिन्ह है? कछुआ वो कछुआ चिन्ह बताता है बाहर में अपने पैर मत फैलाओ, अपने अंदर में आओ। पांच इंद्रियों की संवृत्ति करो। कारण ये कि पांच इंद्रिय को साध लोगे तो मन सधेगा तो आत्मा सधेगी। इस तरह से आज आपने निमित्त के ऊपर बहुत अच्छा विषय सुना है। निमित्त को सुनकर देव शास्त्र, गुरु की पूजा आपके लिए उपासनीय है। पुण्य भी आपके लिए श्रावक जीवन में उपादेय है पाप हेय है, अंतरात्मा उपादेय है बहिरात्मा हेय है। मूल शब्द आया था। इस मूल का अर्थ होता है कारण, कारण का अर्थ होता है निमित्त, निमित्त का अर्थ होता है साधन।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

आस्रव तत्त्व की भूल

प्रिय आत्मन्!

हम सभी भगवान् महावीर स्वामी की दिव्य देशना से निःसृत, माँ जिनवाणी का श्रवण करने आये हैं। हे माँ जिनवाणी! जीवतत्त्व प्रबोधिनी! अजीवतत्त्वविवेचिनी! सर्वास्रव निरोधिनी! कर्मबंधविमोचिनी! संवरपदप्रदायिनी! निर्जरानिर्झरणी! मोक्षमहलधारिणी! पाप-ताप-संताप हारिणी! विश्वकल्याणकारिणी! सर्वसुखसारणी! महामंगलकारणी आप जयवंत रहो।

प्रिय आत्मन्!

शुद्ध आत्मा का साधक, शुद्ध आत्मा की साधना से जब आराधना में प्रवेश करता है, तो लक्ष्य शुद्ध आत्मा का ही बना कर रखता है। आचार्य कुंद-कुंद स्वामी ने समयसार के कर्तृ कर्म अधिकार में यह सूत्र दिया। साधु के लिये-अरिहंत सिद्ध तो शुद्ध आत्मा हैं, पर-आचार्य, उपाध याय, साधु शुद्ध आत्मा के साधक हैं। शुद्धात्म आराधना, शुद्धात्म साधना, शुद्धात्म अनुभूति ये तीन विशेषण जिनसेन स्वामी ने विशेष रूप से दिए हैं। अरिहंत शुद्ध आत्मा बन चुके, आप शुद्धात्मा के साधक हैं। आपके लिए शुद्धात्मा साध्य है।

शुद्धोपयोग की अवस्था में तुम शुद्धात्मा को साधोगे, शुभोपयोग की अवस्था में शुद्धात्मा को आराधोगे। इसलिए उस शुद्ध आत्मा के परिचायक, प्रतिपादक, साधुओं के लिये हम इतने समीप में पाकर के उनकी अर्चना करते हैं। दान सम्मान आदि करते हैं। इसका उद्देश्य यही है, कि हे साधु! मैं आपकी सन्निधि में शुद्धात्मा के स्वरूप को जानना चाहता हूँ। मैंने जिस शुद्धात्मा का स्वरूप अनादि से आज तक नहीं जाना है, क्यों? क्योंकि मैं अनादि से आज तक निर्ग्रन्थों की शरण में नहीं आया, अरिहंत की शरणस में नहीं आया। ये मनुष्यस भव ही मुझे अभी मिला है, जिसमें मैंने पंच परमेष्ठी की शरण को प्राप्त किया है और इस शरण को पाकर के मैं आपके पास आया हूँ। मेरे लिए दो घड़ी मिली हैं। इन दो घड़ियों में आपके समीप बैठा हूँ और इन घड़ियों में वह चाहिए जिससे मेरे जीवन की प्रथम घड़ी से लेकर अंतिम घड़ी तक सुधर जाए। हे साधु! आपके उपदेश से मेरा भूत, मेरा भविष्य और मेरा वर्तमान भी अच्छा हो जाएगा।

प्रिय आत्मन् !

जो हो गया उसे कौन बदल सकता है ? अरे भाई ! बदल सकता है। त्रिकाल के पाप त्यागो। भगवान् कुंद-कुंद स्वामी का यही संदेश है कि आलू, प्याज और रात्रि भोजन के त्याग के साथ तुम्हें महत्वपूर्ण त्याग करना है, क्या करना है ? आस्रव और बंध का त्याग करना है। हमने बाह्य वस्तुओं का तो बहुत त्याग किया, रुपये, पैसे का दान, संपत्ति का बहुत त्याग किया, पर महत्वपूर्ण चीज है आस्रव का त्याग करना, क्योंकि आस्रव हमें संसार में डुबाने वाला है। आस्रव के फल दु:ख रूप हैं। कर्मों का आगमन आस्रव है। तुमने कर्मों के आगमन को कितना रोका ?

आचार्य कुंद-कुंद स्वामी का एक मूलभूत सूत्र है ''आस्रव का त्यागी व्रती है''। आस्रव त्यागी बनोगे तो तुम्हारा बंध का त्याग हो जाएगा। आस्रव, बंध का त्याग होते ही तुम्हारा संसार का त्याग हो जाए। आस्रव, बंध का त्याग करते ही संवर, निर्जरा प्रारंभ हो जायेंगे। संवर निर्जरा प्राप्त होते ही मोक्ष का द्वार खुल जाएगा।

प्रिय आत्मन् !

मात्र आस्रव को रोकना है, बंध तुम्हारे पास हो रहा है वह बंद रूक जायेगा संवर निर्जरा एक महत्वपूर्ण तत्व हैं। आस्रव को त्यागने के लिये क्या उपाय करना है ? बहुत अच्छा सद्मार्ग दिया है, समयसार जी में। कुंदकुंद स्वामी ने आस्रव त्याग के तीन उपाय बताए हैं,

णादूण आसवाणं, असुचितं च विवरीय भावं च।

दुक्खस्म कारणं ति य, तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।।72।।

अर्थ :- आस्रवों की अशुचिता, विपरितता और दुख स्वरूपता ये तीन कारण जानकर जीव आस्रव त्यागी होता है। आपको जो भी चीज त्याग करना हो, एक बार त्यागने के बाद उस चीज को दुबारा नहीं अपनायेंगे। इन तीन बातों के चिंतन के ठोस धरातल पर यदि किए जावें। कि पहले तो यह आस्रव अपवित्र है। अपवित्र कैसा ? अपवित्र ऐसा है कि मेरे सिद्धान्त प्रभु इस तन में हैं, इसे चर्म के घेरे में हैं। आस्रव इतना अपवित्र है। यदि आस्रव नहीं होता तो मैं सिद्धालय में विराजमान होता, मैं अपने शुद्ध प्रभु को प्राप्त कर लेता।

आस्रव के कारण मैं आज तक सिद्ध नहीं बन सका, शुद्ध नहीं बन सका। यद्यपि निश्चय नय की अपेक्षा से सब जीव शुद्ध हैं, पर व्यवहार नय की अपेक्षा से मैं कर्म से आवृत हूँ, अशुद्ध हूँ। मेरा द्रव्य अभी अशुद्ध है, मेरे गुण अशुद्ध हैं, मेरी पर्याय अशुद्ध है। मैं शुद्ध गुण - केवल ज्ञान गुण, शुद्ध पर्याय - केवलज्ञान पर्याय रूप हूँ उनको पाने के लिए मैं अरिहंतों की आराधना करता हूँ।

कुंद-कुंद स्वामी से पूँछा -हे भगवान्! ये जिनेन्द्र पूजा उपदेश क्यों है? जिनेन्द्र मन्दिर क्यों आराध्य है? कुंद-कुंद स्वामी पंचास्तिकाय में उत्तर देते हैं -

जो जाणदि अरहंत, दव्वत गुणत्त पज्जयत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं।।80।।प्र.सा.

जो पुरुष द्रव्य गुण, पर्यायों से पूज्य वीतरागदेव को जानता है वह पुरुष अपने स्वरूप को जानता है और निश्चयकर उसी का मोह कर्म नाश को प्राप्त होता है। जो जीव अरिहंत देव के द्रव्य को जानता है, जो अरिहंत देव के गुणों को जानता है, जो अरिहंत देव की पर्याय को जानता है, वह जीव अपनी आत्मा को जान जाता है। अहो, जैसा अरिहंत का स्वरूप है, वही मेरा स्वरूप है। जिस तरह वह विभाव परिणाम से शून्य हैं उसी तरह मैं भी विभाव परिणाम से शून्य हूँ। जिस तरह से वह अनंत चतुष्टय से सम्पन्न हैं, उसी तरह शक्ति रूप से मैं भी अनंत चतुष्टय से सम्पन्न हूँ। जिस तरह घातिया कर्मो के नाश करने पर वह केवलज्ञानादि गुण से युक्त हुए हैं, जब मैं इन कर्मो का नाश करूँगा, तो मैं भी इस अवस्था को प्राप्त कर लूँगा। आत्मा का शुद्धिकरण जिस तरह उनने किया है, उसी प्रक्रिया को यदि मैं अपनाऊँ तो मैं भी अपनी आत्मा को शुद्ध कर सकता हूँ। आत्मशुद्धि की यह प्रयोगशाला है। आप इस प्रक्रिया को अपनाकर परमात्मा के प्रतिबिम्ब को देख कर, अपनी शुद्ध चेतना के निजबिम्ब को देख सकते हैं।

शुद्धात्म तत्त्व की पहचाना ही जीवन की सबसे बड़ी पहचान है, सारे सांसर को यदि पहचान लेने के बाद यदि मैंने इस आत्मा को नहीं पहचाना, तो मैंने किसी को नहीं पहचाना। यदि आत्मा को पहचान लिया, तो फिर संसर को पहचानने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। सारा संसार आपको केवलज्ञान के आलोक में झलकने लगेगा। किसी को पहचानने की कोशिश नहीं करोगे, तो केवलज्ञान के आलोक में सब झलकेगा।

प्रिय आत्मन्!

अरिहंत की अर्चना, सिद्धों की उपासना-उनके लिये नहीं। मैं अपने गुणों को कैसे पहचानूँ, कि मेरे अंदर कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं, मेरे अन्दर कौन-कौन से गुण हैं? अपनी शक्ति को पहचानो। मेरे अनंत गुण हैं- उन गुणों का प्रकटीकरण कैसे हो? यह जानने के बाद, कि जिस तरह जिनेन्द्र स्वामी ने जिनगुणों को प्रकट किया है, तो मैं भी अपनी साधना के बल पर उन गुणों को प्रकट कर सकता हूँ। मेरी क्रिया और चर्या में भले ही शुद्धात्म साधना का आज अभाव है पर ''लक्ष्य में रहे शुद्धात्म साधना ही।'' लक्ष्य में रहे शुद्धात्म की आराधना, कि ये मैं जो पूजा कर रहा हूँ, भक्ति कर रहा हूँ, लक्ष्य है कि मुझे अपने स्वरूप को पाना है। विश्व के दर्शनों में एक मात्र जैन

दर्शन ही ऐसा दर्शन है कि जिस दर्शन में आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि है। अन्य किसी दर्शन में परमात्मा बनने की विधि नहीं है। मात्र परमात्मा को पूजने की विधि है। परमात्मा बनने की विधि, मात्र एक जैन दर्शन में है। जैन दर्शन में महावीर का यह महापथ सबके लिए बना है, महावीर की मूर्ति सबके लिए प्रशस्त पथ बनी हुई है।

प्रिय आत्मन्!

आचार्य, उपाध्याय, साधु के गुणों का स्मरण वस्तुतः हमारे ही गुणों का स्मरण है। ऐसे निजगुण का प्रकटीकरण हो, मेरा स्वरूप मेरे अन्तस में कैसा है? मेरी स्थिति ऐसी है जैसे पशु जब खाता है तो सानी में भूसा भी मिला है, नमक भी मिला है, पानी भी मिला है, और खली भी मिली है। बहुत सारी वस्तुएँ मिली हैं। जिसने मिली हुई वस्तु को खाया है उस जानवर को ज्ञात नहीं रहता है, कि खली का स्वाद कैसा है? ज्वार का स्वाद क्या है? गेहूँ का स्वाद क्या है? क्योंकि सब कुछ मिलाकर खाया गया है। उसी तरह मैंने आज तक जितना वेदन किया है, वह आत्मा के साथ आस्रव को मिलाकर वेदन किया है, आत्मा में बंध को डालकर वेदन किया है, आत्मा में विषय कषायों के खनिज को डालकर वेदन किया है। इसलिए अभी तक शुद्धात्मा का वेदन हुआ ही नहीं। शुद्धात्मा के वेदन के लिए आस्रव का त्याग कई बार किया। क्योंकि अपवित्र है, अपवित्र तो ऐसा है जैसे यदि माँ चौके में भोजन बना रही है और उसके बालक की गेंद खेलते-खेलते, नाली में चली जाए और नाली में से लेकर आए और चौके के पानी से धोने लगे। माँ क्या कहेगी? कि यह अपवित्र है, गंदी है अलग कर दो, मैं तुमको दूसरी गेंद दूँगी, इस को अलग कर दो। अब कितनी जल्दी त्याग होगा कि मुझे दूसरी गेंद मिल जाएगी। इस गंदी को अलग कर दो। अपवित्र को जानने के बाद वस्तु का त्याग होता है।

दूसरी बात है विपरित अर्थ। जानें कि यह मेरे स्वभाव के विपरित है। आस्रव मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव अपना ज्ञान, दर्शन स्वभाव, शुद्ध स्वभाव है और आस्रव विपरित है। जो विपरित है उसे अपने पास में क्यों रखना, उसे क्यों स्थान देना जब दुःख का कारण है, विपरित है। चलो विपरित है तो चलेगा, लेकिन तीसरी बात कम से कम हमें दुःख तो न दे। विपरित भी, गंदा भी और इसके साथ दुःखरूप भी है, तो आप क्या कर रहे हैं? आप जरा सा उदाहरण ध्यान में रखना, यदि आपके पास एक व्यक्ति आकर बैठ जाए और वह गंदा हो और इतना गंदा हो, कि आपको उसकी गंदगी सहन न हो, तो ऐसे समय पर किसी भी तरह का मिलन, कैसे सहन करेंगे? या तो गंदगी को देखते अन्यत्र बैठ जायेंगे, या उसे अन्य स्थान पर बिठा देंगे। अब कदाचित् उसकी अपवित्रता को सहन कर भी लें, तो कहीं विपरित तो नहीं है, हम तो चेष्टा कर रहे हैं, वह कुचेष्टा करे। तो आप क्या करेंगे, भाई उठ। हम शांति से प्रवचन सुन रहे और वह आवाज करने लगे खड़े हो

के। इसके बाद यदि वह आपको रोकने लगे, तो आप क्या करेंगे या तो आप स्वंय उठ जायेंगे या उसको उठा देंगे।

आस्रव छोड़ने के तीन ऐसे समर्थ कारण हैं। इन तीन कारणों को अपनाने से हम आस्रव के त्यागी बन सकते हैं। यह शिवनगर में आना और जिनेन्द्र भगवान् के मंदिर में आना, आज का मंदिर में आना ही, मोक्ष का आमंत्रण है, सम्यग्दर्शन पाना ही सिद्धालय का आमंत्रण है। यदि हम जिन मंदिर में आते हैं तो ये मानकर चलिए कि तुम्हारे पास सिद्धालय का आमंत्रण आ चुका है। क्योंकि सम्यग्दर्शन सिद्धालय का आमंत्रण है और जिनेन्द्र देव की भक्ति कर आत्मा सम्यग्दर्शन से पुरष्कृत हो जाता है।

पूज्यपाद स्वामी ने तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देवगति में सम्यग्दर्शन के तीन आधार बताये हैं। जिनमें जिन बिम्ब दर्शन को प्रमुखता दी है। अन्तरंग कारण तो मेरी आत्मा ही है ओर बहिरंग कारण भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। ये जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा पाँच पाप के नाश में, पाँच व्रत, पाँच अणुव्रत, पाँच महाव्रत को प्रदान करने में समर्थ हैं। जो जीव श्रद्धा, भक्ति, समर्पण और विश्वास के साथ जिनेन्द्र देव की आराधना करते हैं वे बहिरात्मा से अन्तरात्मा में परिवर्तित हो जाते हैं और अन्तरात्मा से उत्कृष्ट अन्तरात्मा की ओर बढ़ते हैं, उत्कृष्ट अन्तरात्मा बनने के पश्चात् वे स्वयं एक दिन परमात्मा बन जाते हैं।

यह जैन दर्शन की साधना का फल इतना महान् है कि यहाँ परमात्मा बनने के लिये जिनवाणी माँ ने बता दिया कि आज दर्शन करो, आज ही सम्यग्दर्शन पाओ। जिनवाणी पढ़ो, आज ही सम्यग्ज्ञान पाओ, गुरु संगति करो और आज ही सम्यक्चारित्र पाओ और तीनों की एकता पाकर मोक्षमार्ग पाओ। हमारे यहाँ देव-शास्त्र-गुरु का ऐसा समावेश है जो विश्व में अन्यत्र नहीं मिलेगा। यहाँ देव के दर्शन सम्यग्दर्शन के प्रतीक हैं, जिनवाणी सम्यग्ज्ञान की प्रतीक है, और गुरु चारित्र के प्रतीक हैं और हमारे यहाँ तीनों एक वेदी पर बैठते हैं। ऐसा नहीं कि हम देव को अलग बैठाते हैं, शास्त्र को अलग और गुरु को अलग। नहीं। तीनों को एक क्रम में रखा है अर्थात् तीनों से हमें एक साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की सीख मिलती है, और प्राप्त हो जाता है अभेद रत्नत्रय। अभेद रत्नत्रय ही निश्चय मोक्षमार्ग है। जब देव-शास्त्र-गुरु की पूजा पढ़ते हैं तो सबसे पहले पढ़ते हैं -

देवशास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।

यहाँ पर बताया तीन रतन करतार। तीन रत्न करने वाले है। - ध्यान रखना। व्यापार में आप 5 के 10 कर सकते हैं, 1 के 2 कर सकते हैं, लेकिन रत्न नहीं कर सकते हैं। अचेतन रत्न हो

सकते हैं, लेकिन चेतन रत्न की उपलब्धि, सम्यग्दर्शन रत्न की उपलब्धि, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रत्न की उपलब्धि इन तीनों से मिलती है।

अहो आत्मन्! जब एक मेंढ़क अर्चना करके स्वर्ग को पा सकता है, तो ये मेरी अर्चना मोक्ष का कारण क्यों नहीं बनेगी ? ऐसी प्रबल भावना रखकर के हम सतसंगति में रहते हैं। नगरा वह नहीं है जहाँ हम रहते हैं, अपितु आत्मा के असंख्यात् प्रदेशों में रहना है, मैं जब दृष्टि बाहर ले जाता हूँ, तो मैं विशाल जग के व्यवहार को देखकर के वहाँ फैल जाता हूँ, लेकिन वस्तुत: मेरा निवास क्षेत्र, वर्तमान निवास, आत्मा के असंख्यात प्रदेश होना चाहिए। मेरा उपयोग जब बाहर से हटकर के आत्मा पर आता है, तो मैं अपने आपको जानता हूँ। जब मैं अपने उपयोग को बाहर निकालता हूँ तो पर को जानता हूँ।

जब टार्च को सामने करता हूँ तो बाहर की तरफ प्रकाश जाता है तो बाहर को देखता हूँ, जब टार्च से भीतर की तरफ देखता हूँ तो भीतर का सारा ज्ञान होता है। उसी तरह जब मैं अपने ज्ञान को बाहर ले जाता हूँ तो बाहर के क्षेत्र के सभी पदार्थ जान लेता हूँ। जब ज्ञान को भीतर लक्ष्य देता हूँ तो आत्मा के अन्दर क्या हो रहा है ये पता होता है। व्यक्ति कहते हैं कि महाराज आत्मा का ज्ञान कैसे हो ? कैसे हो ?

प्रिय आत्मन्!

जिस तरह से आपने टार्च पर बटन देखा है, पर आपने टार्च से अपनी कमीज का बटन नहीं देखा। कितने भी अंधेरे में रहे हो टार्च से अपनी तरफ का नहीं देखा सामने करके देखते हैं, उसी तरह अपने ज्ञान से आप बाहर को देखते हैं। यदि ज्ञान को अन्तर किया जाए, अर्थात् आत्मा को योग क्रिया से देखा जाये तो फिर मैं अपने आप को भी जान सकता हूँ। जिस टार्च के प्रकाश में आप पदपदार्थ को देखते हैं उसी टार्च के प्रकाश में आप अपनी हाथ की रेखाएँ भी देख सकते हैं। उसी तरह जिस ज्ञान के द्वारा आप बाह्य योग, बाहरी परिस्थितियाँ, बाह्य प्रभाव, क्रोध, मान, माया, लोभ देखते हैं, उसी ज्ञान के द्वारा आत्मा के स्वभाव को भी देख सकते हैं।

प्रिय आत्मन्!

स्वभाव पर जब तक हम चर्चा नहीं करेंगे तब तक विभाव का त्याग नहीं होगा। स्वभाव के ज्ञान बिना विभाव का त्याग नहीं होता है। हम जब तक क्रोध-क्रोध कहेंगे तब तक क्रोध का त्याग नहीं होगा, लेकिन क्षमा के आते ही क्रोध का त्याग, विनय के आते ही मान का त्याग, संतोष को पाते ही लोभ का त्याग, सरलता को पाते ही माया का त्याग हो जाता है। स्वभाव में आना सरल है विभाव में जाना कठिन है। पानी ठण्डा होना आसान है, लेकिन पानी को गर्म होना कठिन है। पानी

को ठण्डा करने के लिये कुछ भी नहीं करना पड़ता, जल को शीतल करने के लिये कुछ भी नहीं करना पड़ता, मात्र प्रतिकूल कारण अग्नि के संयोग से हटाइए, जल अपने आप ठण्डा हो जायेगा।

उसी तरह आत्मा के स्वभाव को जानने के लिये आप, जो विभव कारण है उसे हटाइए। विभाव किन-किन कारणों से आत्मा में आ रहा है। क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय, राग-द्वेष, कषाय ये कहाँ से आ रहे हैं? किन विवक्षाओं से आ रहे है? किन निमित्तों से आ रहे हैं, उन निमित्तों से हटिये। अपने स्वभाव में आना सरल है। यदि पानी को गर्म करना है तो कितनी सामग्री चाहिए? आपको पहले बर्तन चाहिए, बर्तन के बाद अग्नि चाहिए, अग्नि के जितने निमित्त हैं, वो चाहिए। लेकिन पानी को शीतल करने के लिये एक भी निमित्त नहीं चाहिए। उसी तरह प्रिय आत्मन्! अपने क्षमा स्वभाव को प्रकट करने के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं है। अपने आप धीरे-धीरे विभाव का त्याग करते जाओ, स्वभाव को पा जाओगे। स्वभाव में आ जाओ तो विभाव का त्याग स्वतः हो जाएगा। अपने स्वरूप का जैसे-जैसे ज्ञान करोगे वैसे-वैसे ध्यान होगा। ''ज्ञान ध्यान के लिये हैं, ध्यान निर्वाण के लिये है'' ये उपदेश जो है इसके द्वारा मुझे बोध हो कि मेरा स्वभाव क्या है? शांति मेरा स्वभाव है, सुख मेरा स्वभाव है, सुख मेरा स्वभाव है, आनंद मेरा स्वभाव है। ऐसे स्वभाव का दर्शन मुझे करना है। इस स्वभाव के दर्शन के लिये बैठे हैं तो विभाव परिणाम कहाँ पलायन हो जायेंगे, ये पता भी नहीं पड़ेगा। हाँ प्रति समय कितने कर्मों का आस्त्रव हो रहा है ये तो पता है, लेकिन जब मैं आत्मा के ध्यान में बैठा, तो वह कर्म कहाँ चला गया, कहाँ विलीन हो गया, पता भी नहीं पड़ता है।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा का सहारा लेने की कोशिश करो। हम जितना लक्ष्य, जितनी शरण, बाहर की ओर लेते हैं, यदि उसका शतांश शरण भी आत्मा की लें तो मुझे ऐसा सुख मिलेगा, जिस सुख की परिकल्पना आपने आज तक नहीं की होगी। वह आपको प्राप्त होगा। ''सुख का उदय पदार्थ के आधीन नहीं, सुख का उदय आत्मा के आधीन है।'' किसके? आत्माधीन। जो चीज आत्मा से मिलने वाली है, वह आत्मा से पाओ। जो चीज आत्मा से नहीं मिले, वह चीज बाहर से पाओ। जो सुख-शांति आत्मा से मिलेगी, वह अन्यत्र नहीं मिल सकती है।

प्रिय आत्मन्!

दूध गाय के स्तन से निकलता है, यदि उसे सींग से निकालना चाहो तो नहीं निकलेगा। उसी तरह सुख आत्मा से निकलता है, यदि तुम पुद्गल से निकालना चाहोगे तो नहीं निकलेगा। ये ध्यान दो-कि सुख का उदय मेरे अन्दर है, सुख चेतना का गुण है, वह चेतना में प्राप्त होगा, वह चेतना में

मिलेगा। खोजो, डूबो। एक गोताखोर समुद्र में डूबता है, तो रत्न लाता है आप जब भीतर में डूबोगे, तो सुख मिलेगा। अपना सुख स्वयं में है। मात्र आपके लिये है। क्या ? जैसे किसी बैंक में आपकी संपत्ति सुरक्षित है। जब चाहें तब निकलवा सकते हैं। निकलवाने की विधि याद हो। आपकी संपत्ति कोई दूसरा नहीं निकाल सकता, जब तक आप हस्ताक्षर न करें उसी तरह अपना सुख कोई दूसरा नही निकाल सकता। आपका सुख आप ही निकाल सकते हैं। आपने ही जमा किया है, किसने जमा किया है ? मैंने ही पहले शुभ कार्य करके सुख को जमा किया, मैं ही इसका भोक्ता हूँ।

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।

बहिरन्तरुपाभ्यां तेषां मुक्तत्वमेव हि।।10।।स्व. सं.

यह जीव कर्म का कर्त्ता है, यह जीव कर्म का भोक्ता है। ये बात अलग है कि कभी-कभी हम शुभ को करते हैं और दु:ख को भोगते हैं। क्योंकि सुख को ही हम दुख रूप परिणमन में लगा देते हैं। जैसे कभी आप अपने खाते के पैसे दूसरे के खाते में डाल दें तो फिर दूसरे की क्या हानि, उसे मिल जाएँगे, लेकिन डालने आपने ही हैं। मेरा सुख मेरे आधीन है। जाओ, लेकर आओ। जैसे बेटे से कहते हो, कि ये तेरा पास बुक है, बैंक से पैसे निकाल लाओ। बेटा कहता है - मैं निकाल लाता हूँ, क्योंकि बेटे का नाम है, तुम्हारा नाम हो तो, तुम जाओ। चैक काटकर दो, साइन करके दो, उसी तरह आप अपने शुभ ध्यान के हस्ताक्षर करो। एकाग्रता के हस्ताक्षर करो। ध्यान और एकाग्रता के हस्ताक्षर जब आप करेंगे तब आपको सुख प्राप्त हो जाएगा। आत्म सुख की संपत्ति प्राप्त होगी, निज गुण की संपत्ति आपके आत्मा के कोषालय में जमा है। कहाँ पर ? मेरे आत्म सुख की राशि आत्मा के कोषालय में जमा है। आत्मा के कोषालय में जब भी जाओगे मिल जाएगी।

अमृतचंद स्वामी ने एक शब्द दिया है। ''आत्मा मात्रा विशेषज्ञ है।'' उतना ही देगा जितना तुम्हारा जमा है अधिक नहीं मिलेगा। जितना आपका जमा है, उतना आपको मिलेगा। आत्मा मात्रा विशेषज्ञ है। आप जब भी आत्मा के ध्यान में रहेंगे, मिलेगा। बाहर की ओर मत जाओ, अपने भीतर में उतरने की कोशिश करो।

यह जिनेन्द्र देशना है। ऐसी देशना प्राणी मात्र के लिये कल्याणकारी हो। आपने शांतिधारा देखी, अभिषेक देखा। ये भगवान् का अभिषेक हमारे पापों का प्रक्षालन करने वाला है। ये शांतिमंत्र के बीजाक्षर आपे सुने। प्रति समयर मेरे शरीर से एक व्यंजन पर्याय निर्माण होती है। और प्रति समय में यह व्यंजन पर्याय अर्थपर्याय में परिणमन कर जाती है। एक अक्षर 'अ' का उच्चारण करते हैं। यह एक पर्याय है। इस पर्याय का इतना प्रभाव होता है कि एक पल में यह पर्याय, दो समय में यह पर्याय तीन लोक के शिखर तक पहुँच सकती है। मैं जिसके विषय में अच्छा सोच लूँ और

एक शब्द वर्गणा को कह दूँ तो वहाँ तक के जीव को शांति हो जाती है।

महाराजश्री! क्या शांतिधारा करने से विश्व में शांति हो सकती है? अवश्य। पहले तो आपके अंदर में शांति होगी, क्योंकि ये ज्ञानपर्याय आपकी आत्मा को प्रभावित करेगी। आपके शरीर को प्रभावित करेगी और इसी के साथ जब ज्ञानपर्याय की तरंगे ऊर्जाओं के साथ विश्व में पहुँचेगी तो सकल विश्व उससे प्रभावित होता है। हमें चाहिए ये पूजा, अनुष्ठान, भक्ति करते हुए शुभोपयोग को साधें, शुभोपयोग के द्वारा अपने आत्म तत्त्व को पहचानें।

शांतिसागर जी महाराज कहते थे, कि ध्यान करो, ध्यान करो, ध्यान करो। यदि ध्यान करोगे तो निर्वाण लक्ष्य प्राप्त होगा। ''ज्ञान-ज्ञान के लिये नहीं, ज्ञान ध्यान के लिये है।'' ऐसी सद्‌भावनाओं के साथ हम सभी पहुँचेंगे, सिद्धालय में पहुँचेंगे। जिनालय का दर्शन हमें सिद्धालय में ले जाएगा। आज जो जिनालय में खड़ा होता है कल वही सिद्धालय में खड़ा होता है। ऐसा जानकर हम सभी जिनालय से सिद्धालय की ओर पहुँचें।

महावीर स्वामी ने कितनी स्वतंत्रता दी है। धन्य हैं साधुओं की गरिमा को, कितना प्रतिष्ठित किया है। हे साधु! मेरा बेटा कहीं किसी से दो रुपये न माँग ले, महावीर के लघुनंदन हैं महावीर की संतान हैं। मेरा बेटा किसी से दो रुपये न माँग ले, इसलिए बेटे को स्वयं कमाना सिखा दिया, यहीं। हे बेटे! तुझे किसी से बाल कटवाने के लिये दो रुपये न माँगने पड़ें, इसलिए बेटे आज कष्ट करके तुझे केशलौंच करना सिखाता हूँ।

प्रिय आत्मन्!

ऐसा मार्ग सिखाया महावीर ने, कि हे बेटे! कहीं तेरा गौरव समाप्त न हो जाए, कहीं तेरा स्वाभिमान समाप्त न हो जाए, कहीं इस महावीर की परम्परा का आदेश विलुप्त न हो जाए। इसलिए महावीर स्वामी ने स्वयं कष्टों को सहा, कष्टों को उठाया और अपने बेटे को विकारी नहीं बनाया। कहा- कि हे बेटे! तू विकारी भी मत बनना और भिखारी भी मत बनना। सदा निर्विकारी बने रहना। ये केशलौंच तुम्हें विकारीपन से बचाता है और यह केशलौंच तुम्हें भिखारीपन से बचाता है।

नाई से कोश बनवाते तो दस, बीस रूपये लगते। प्रिय आत्मन्! मैं इन लोगों को देखता हूँ, कि जब कोई बेटा अपने पिता को सिर नहीं झुकाता है तो मैं कहता हूँ - कि बेटा तूने अपने पिता को सिर नहीं झुकाया, लेकिन बेटा तू नापित (नाई) को सिर झुकाएगा। तू अपने पिता के सामने सिर नहीं झुका पाता है, अपने चाचा के सामने सिर नहीं झुका पाता है और नापित के सामने सिर झुका लेता है।

प्रिय आत्मन्!

हे मुनिराज! तेरे परम पिता अरिहंत देव हैं और इनके चरणों में तूने सिर झुका लिया है, अब ये सिर किसी भी नापित के सामने न झुके, इसलिए स्वयं केशलौंच कर लेना। जिस दिन तुम घर से निकले थे, उस दिन तुम्हारा टेस्ट हुआ था। ये बच्चे त्रैमासिक परीक्षा देते हैं, षट्मासिक परीक्षा देते हैं, हे साधु! तेरी भी साल में तीन बार परीक्षा होगी। हर चार महीने के पहले अपना टेस्ट दे देना और जानकारी ले लेना।

भरतसागर महाराज का केशलौंच हो रहा था शिखर जी में, गुरु विरागसागर जी विराजमान थे, लगभग 70 साधु विराजमान थे। उस समय जब मेरा उद्बोधन हुआ और जब मैंने कहा भाई आप लोग आँखों से आंसू बहा रहे हैं और ये अपनी साधना की परीक्षा दे रहे हैं। क्या? ये तो परीक्षा है, प्रथम परीक्षण है मुनि वही बन सकता है जो केशलौंच में उत्तीर्ण हो जाए। केशलौंच की परीक्षा में जो उत्तीर्ण हो गया, तो ठीक है। ओर नहीं हो पाया तो जो परीक्षा में ही फैल हो गया तो प्रवेश वंचित है।

ध्यान दो ये परीक्षा है। श्रावक लोग कहते हैं - चौके में महाराजश्री जरा सा स्वाद ले लो, और फिर अच्छा लगे तो और ले लेना - अच्छा लगे तो और ले लेना। भैया इसी तरह साधु परीक्षा लेता है, अच्छा लगता है बारम्बार लेता है, 2 घंटे, 3 घंटे तक परीक्षा चलती रहती है।

प्रिय आत्मन्!

साधना का पूर्ण आनंद होता है, ऐसे लगता है मानो काले-काले केशलौंच नहीं कर्मों का लोंच हो रहा हो। पूजा में पढ़ा आपने। ठीक है ये कर्मो का लोंच करते हैं, हमको केशलौंच दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है कि हे प्रभु! जिस तरह से बाल और कर से कर्म कट जाएँ हे प्रभु! केश को उखाड़ने के लिये मुझे 2-4 घंटे लगते हैं, उसी तरह दो-चार भव में मेरा कर्म भी उखड़ जाए। आप महाराजश्री केशलौंच के समय क्या सोच रहे थे? कि हे प्रभु! जिस तरह 2-4 घंटे में ये केशलौंच उखड़ रहे थे, उसी तरह से दो चार भव में मेरे कर्मो का लोंच हो जाए और कर्म धुल जाएं। ऐसा लगता है कि कर्म उखड़ते चले जा रहे हैं बाल नहीं उखड़ रहे हैं। पौद्गालिक सम्बन्ध जो मेरे ऊपर जमा हो गया था, वह पुद्गल स्थली झड़ रहे थे। जिस तरह से सिर से भार उतर जाता है उसी तरह से कर्म का भार उतर जाए।

जिसका चित्त निश्चल है उसकी मुक्ति नियामक है जिसका चित्त निश्चल नहीं, उसकी मुक्ति नियामक नहीं।

नमः सिद्धेभ्यः

मोहनीय कर्म

प्रिय आत्मन्!

जिन्होंने संयम से, आज के दिन, अपने जीवन को महाकाया उनबालब्रह्मचारी नेमीनाथ प्रभु, जिनके जन्मोत्सव और तपकल्याणक पर उनके पावन चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम करते हुये परमसमाधि को हम कैसे प्राप्त करें। सिद्धत्व दशा परमसमाधिदशा है। मेरा स्वरूप, मेरा स्वभाव, मेरा वैभव परम समाधिमय है। मेरा ज्ञान, मेरा सुख, आत्मा के जितने गुण हैं वे सब परम समाधिमय हैं। और इन गुणों की प्राप्ति भी परम समाधिमय होकर ही पाई जा सकती है। उस परमसमाधि की प्राप्ति को ध्येय यह जीव मात्र मनुष्य पर्याय में ही कर सकता है। बहिरात्मा का त्याग, अंतरात्मा को साधन बना करके परमात्मा को प्राप्त करने का जो उपाय है, वह ही परसमाधि प्राप्ति का मार्ग है।

प्रिय आत्मन्!

मोह और क्षोभ से रहित स्वपरणति, अपने आत्मा के निकट में वास, यह समाधि की प्राप्ति, निश्चय रत्नत्रय के धारी साधुगण, अपने आप में पाते हैं। यह समाधि मरणांत में नहीं, अपितु समाधि से तो जीवन की शुरूआत होती है। जहाँ से समाधि प्रारंभ होती है। वहीं से तो जीवन की शुरूआत होती है क्योंकि समता नहीं तो जीवन काहे का। जहाँ समता है - वहाँ ही संयम है, मानवीयता है वहीं श्रमणपना है।

''समदा चारो समणो'' की आराधना करता हुआ मेरा मन कब ऐसे समता को प्राप्त करेगा, कब समाधि को प्राप्त करेगा। हे प्रभु! यह मेरा मन अनंत दु:खों से ग्रसा हुआ है, भव भव के दु:खों में पड़ा हुआ है। यह देह को ही आत्मा मान करके संसार के अनंत दु:खों को पा रहा है। मानसिक दुख, शारीरिक दुख, वाचनिक दुख, क्षेत्रज दुख, आगन्तुक दुख। कितने प्रकार के दु:खों को यह जीव प्राप्त कर रहा है। कभी तो नरक की वेदनायें, कभी तिर्यच गति के दु:ख, कभी मनुष्य पर्याय की पीड़ायें, कभी देव गति के मानसिक दु:खों से यह गुजरता जीव। इस संसार चक्र में निरन्तर परिभ्रमण करता है लेकिन दु:खों की विदाई नहीं हो रही है और भी कैसे? जब तक कषायों को बँधाई मिलती रहेगी, क्रोध, मान, माया, लोभ का आमंत्रण मिलता रहेगा, तब तक

दु:ख विदा होंगे कैसे ? मैंने स्वयं पाला है, मैंने स्वयं पोसा है, अपने दु:खों को, इस शरीर को आत्मा मान करके।

''मूलं संसार दु:खस्य

अंदर-प्रवेश करने पर दु:ख विदा हो जाते हैं, बाहर से इंद्रियाँ जब रुकती है तब दु:ख विदा होते हैं। अपनी इंद्रियों को कछुऐं के समान समेटने की कला जब मेरे अंदर आ जाएगी, तब मेरे अंदर सुख प्राप्ति का साधन आ जाएगा। मेरे पतन का कारण क्या है? मैं संसार में क्यों दु:खी हो रहा है? मैं क्यों डूबता आ रहा हूँ? मेरे ये दु:ख, उस गज के समान हैं, जो कीचड़ में एक बार फंसता है तो फसता ही जाता है, क्यों ? एक तो कीचड़ वैसे ही फंसाने वाला होता है फिर गजराज का भार उसे और फंसा देता है। उसी तरह से वैसे ही इंद्रियाँ और मन हमें संसार में डालते हैं और फिर विषयों का कीचड़ और मिले, तो उसमें यह मन विषयों के कीचड़ में पड़ी हुई इंद्रियाँ और मनरूपी ये गजराज ऐसा धंसता जाता है फसता जाता है कि कोई निकालना भी चाहे तो उसे सामान्यत: निकाल भी नहीं पाता है। हाँ यही तो कारण रहा कि निगोद के गर्त में मैं ऐसा गिरा कि मुझे कोई निकाल नहीं पाया। ये विषयों का गर्त कैसा है?

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।

मत्त: पुमान् पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवै:।।7 इष्टोपदेश।।

मोह से ढ़का हुआ यह मेरा आत्म स्वभाव ही ऐसा है, भले ही मैं मोक्ष-स्वभावी हूँ, मैं कैवल्य स्वभावी हूँ, मैं अनंत सुख स्वभावी हूँ, निर्मोह मेरा स्वभाव है, लेकिन वह स्वभाव भी आज ढका हुआ है। जैसे सूर्य का प्रकाश बादलों में ढक जाता है, चंद्रमा की रोशनी राहु के आच्छादान से ढ़क जाती है, उसी तरह से मेरा स्वभाव मोह से ढका हुआ है। मोह एक ऐसी बला है जो मोक्ष की कला से दूर रखती है, तो यह **''मोहेन संवृतं ज्ञानं ?''** ज्ञान तो है पर कैसा है? ढका हुआ है और किससे ढका है? मोह से ढका हुआ है। तो क्या होगा ?

स्वभावं लभते न हि स्वभाव को प्राप्त करने नहीं देता है, स्वभाव को पहचानने नहीं देता है, जैसे कोई मद्य पाई पुरुष मद्य को पी लेता है, तो उन क्षणों में माँ को माँ रूप में नहीं पहचान पाता। पुत्री को पुत्री रूप में नहीं पहचान पाता। उसका उन्मत्त ज्ञान माँ को बहन मान लेता है, बहन को बेटी मान लेता है। कभी पत्नी को माँ मान लेता है, कभी माँ को ही माँ मान लेता है लेकिन प्रमाणित नहीं होता, उसी तरह से मोह दशा में, मैं जो संसार में अनुभव कर रहा हूँ वह यथार्थ नहीं है।

यह मोह उन्मत्त मेरा मन, उन्मत्त होकर के इंद्रियों के द्वारा विषयों के गर्त में गिराया जाता है और ऐसे गिरता है कि फिर निकलने का नाम नहीं लेता है। कल्पना होती है कि यहाँ सुख मिलेगा,

वहाँ सुख मिलेगा लेकिन दौड़ के गिर तो जाता है, निकलने का नाम नहीं लेता। एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पंचेन्द्रिय की पर्याय में इन सभी पर्यायों में भी गिरा। चार इंद्रिय पतंगा जलती हुई दीपशिखा के ऊपर कैसे पड़ जाता है, मात्र इंद्रिय सुख के कारण। पंचेन्द्रिय मछली मात्र एक रसना इंद्रिय के कारण धीवर के जाल में फंस जाती है अपने प्राणों का बलिदान कर देती है।

प्रिय आत्मन्

यह मृग एक कर्ण इंद्रिय के कारण अपने प्राणों को न्यौंछावर कर देता है। यह सर्प मात्र-मात्र एक कर्ण इंद्रिय के कारण सपेरे की मधुर बीन के कारण अपने प्राणों की स्वतंत्रता की आहुति दे देता है। आखिर ऐसी अवस्थायें क्या मेरी नहीं हैं, मैं सर्प, मृग, मछली और पतंगे जैसा तो नहीं। अपने आप को निहारो।

प्रिय आत्मन्!

यह सहज बात है जब योग का विषय आता है तो डॉक्टर बोलते हैं, वैद्य बोलते हैं, योगाचार्य बोलते हैं, जितने आसन रखे गए वे सब पशु-पक्षियों के नाम पर रख रखे गए चाहे कुक्कुट आसन हो, मकरासन हो, जितने भी आसन देखो। मैंने कहा-भैया ये क्यों रखे गए? क्योंकि ये सब पर्यायें मैंने अनंत बार पाई है। जो सुलभ चीज होती है उसी को तो लेखक लिखता है, जो सबको समझ में आ जाए, जो सरलता से सबके मन में समा जाये। क्योंकि इन पर्यायों में अनंतों बार गया हूँ, तो ये आसन करना मुझे बहुत आसान है लेकिन सिद्धासन, अरिहंतासन।

भो योगाचार्य! क्यों नहीं लिखा तूने ये तो लिखने वाले आचार्य कुन्द-कुन्द हुए, जैनाचार्य हुये। कुन्द-कुन्द देव ने तो मात्र दो-चार ही आसन बताए। वीर आसन क्या बज्रासन, जो आसन मोक्ष के कारण, पद्मासन, कायोत्सर्गासन, जिस आसन से तुमको मोक्ष होता है। कुन्द-कुन्द देव वह आसन बतलाते हैं उन्होंने नहीं बतलाया 84 लाख आसन, क्यों?

प्रिय आत्मन्!

कुन्द-कुन्द देव कहते हैं उन पशु पक्षियों की पर्याय में तुम रहे हो। अब मुझे उनका अभ्यास नहीं करना है। अब मुझे उन पर्यायों का अभ्यास नहीं करना है वे आसन लगाके। मुझे तो तुम्हें अरिहंतों का आसन तीन तीर्थंकर किस आसन से मोक्ष गए? पद्मासन। कितने तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गए? इकबीस। इकबीस तीर्थंकर जिस आसन से मोक्ष गए, आप उस आसन को लगाते नहीं हैं। जरा सा खड़े रहते हो तो मुझे बैठने का नहीं बोला। यदि आप कहीं पर गये, किसी ने बुलाया था और व्यवस्थापक बैठने को नहीं बोल पाये, तो आपका पारा चढ़ जाता है।

प्रिय आत्मन्!

तू तो सौभाग्यशाली था, कम से कम तीर्थंकर के आसन पर तो खड़ा था। यदि कुर्सी पर बिठा दिया तो कौन सा आसन रहा। न अरिहंत का आसन, न सिद्ध का आसन। तू अपने आप पर विचार कर लेता, जब कभी मैं कहीं बैठूं, लोग कहते हैं महाराज आसन-आसन, चौकी, मैंने कहा भाई मैं तो आराम से बैठा हूँ, खड़ा हूँ, तो सिद्धों के आसन में, बैठता हूँ तो अरिहंतों के आसन में। साधु की चर्या खड़े में होती है, तो वह सिद्धासन में खड़ा हो जाता है, बैठता है तो अरिहंतों के आसन पर बैठ जाता है। तीर्थंकर की आसंदी पर बैठ जाते हैं। उनका आसन, हे प्रभु! मैं भी उसी आसन में बैठना चाहता हूँ। जिस आसन से सिद्धदशा की प्राप्ति होती हो।

प्रिय आत्मन्!

इसलिए आसन (आसंदी) भी लेते हैं, तो कयोत्सर्ग आसन में लेते हैं। आहार भी लेते हैं तो कायोत्सर्ग आसन में लेते हैं, ताकि अभ्यास बना रहे।

मेरा मन पशु पक्षियों की प्रवृत्तियाँ करना जानता है और यही कारण है कि जो क्रियाएँ पशु-पक्षी करते हैं, आहार, निद्रा, भय, मैथुन उन्हीं में मेरा मन ज्यादा चला जाता है क्योंकि अनादिकाल से अविद्या के वही संस्कार हैं, जो मैंने सीखा है वही तो मैं सामने लाऊँगा। कल यंत्र में आपने जैसा देखा था वैसे ही सी.डी. लोड करते हैं, वही तो आगे जाकर के प्रिंट होती है। यानि **पूर्व भव में जो मैंने संस्कार पाए हैं, वे संस्कार हम यहाँ पर खोल रहे हैं। जो संस्कार यहाँ पर पाएँगे, वे संस्कार आगे खुलते जाएँगे। जीव कैसी प्रवृत्तियाँ करता है?**

प्रिय आत्मन्! अपने आपको जब हम गिरा हुआ मान लेते हैं, तो उठने की आकांक्षा हो जाती है। जब अपने आप को बंधक मानते हैं, तो छुटकारा की इच्छा हो जाती है। जब अपने वस्त्र को गंदा जानते हैं, तो धोने की, प्रक्षालन की आवश्यकता महसूस होती है। जब पाद में पंक लग जाता है तो प्रक्षालन के जल की खोज होती है।

उसी तरह आचार्य कहते हैं - ''अहं विषयेषु पतिता'' आपसे नहीं कह रहे हैं आप तो सिद्ध स्वरूपी हैं, आपसे क्यों कहेंगे। आप तो सिद्ध भगवान हैं आपसे नहीं कह रहे आचार्य। आपसे क्यों कहेंगे? आप तो सिद्ध परमात्मा है, आपसे नहीं कह रहे। आचार्य तो अपने कह रहे हैं।

मैंने पहले दिन कहा था, जब भी आप प्रवचन सुनना, तो ये समझके चलना, कि ये विभवसागर नहीं बोल रहा है, ये मेरी आत्मा बोल रहीं है। क्या बोल रही है? आचार्य क्या कहते है **''अहं पतिता''** अब उत्तर में क्या मिलेगा, आपको। जब आप अपने-अपने हृदय को टटोलेंगे कि मेरी आत्मा बोल रही है, तो क्या उत्तर मिलेगा? मैं स्वयं पतित हूँ- पतित हूँ, गिरा हुआ हूँ। किसमें

गिरा हूँ? भैया जमीन पर यदि गिर जाओगे, तो थोड़ी सी धूल लगे, छूट जाएगी। यदि कीचड़ में भी गिर जाते, तो कोई बात नहीं धुल जायेगी। ड्रेस गंदी होती है, धुल जाती है, दो-पाँच रुपये में लेकिन कहाँ गिरे हो।

प्रिय आत्मन्! जरा सा विचार कर लेना, यदि कहीं पर आपको किसी के पैर की ठोकर लग जाती है, यदि मल से पैर छू जाता है तो आपको, कितना भयंकर क्रोध आ जाता है। मैं नहीं बोलूँगा, क्योंकि मैं नहीं बोलता किसी को, जानता हूँ कि भीड़ होती है जब चाहे किसी का पैर लग जाता है, लेकिन मैं कभी किसी को नहीं बोलता।

एक पुद्‌गल स्कंध से दूसरा पुद्‌गल स्कंध टकरा गया, ऐसा उस समय सोचना था, लेकिन उस समय तुम लोग क्रोध के अंगारे उगलने लगते हो।

''पतितो विषयेषु'' कौनसे विषय में तुम गिरे हो। बेटा हिंदी में गिरता, हिंदी में फैल हो जाता तो कोई बात न थी, लेकिन तू इंद्रिय में फैल हो गया। संस्कृत में फेल होता तो कोई बात न थी, लेकिन तू संस्कृति में फेल हो गया, विकृति में गिर गया। यदि विज्ञान में भी फेल हो जाता, तो कोई बात न थी लेकिन तू अज्ञान में गिर गया। आत्मज्ञान में फेल हो गया। तू गणित में फेल हो जाता, तो भी कोई बात न थी, लेकिन तू अपने गुणों में फेल हो गया। आत्मा के गुणों को तूने बुझा दिया, सोच रहा है कि अब तो अंधकार हो चुका है कोई नहीं देख रहा। आचार्य देव कुन्द-कुन्द स्वामी प्रवचनसार में लिखते हैं साधुओं के नेत्र तो आगम होते हैं वे आगम से सारी दुनिया को जान लेते हैं, अपने स्थान पर बैठते हैं एक ही आसन पर बैठे-बैठे सारे लोक की यात्रा कर लेते हैं। ब्रह्माण्ड की यात्रा कर लेते हैं बैठे-बैठे! कौन क्या, कहाँ कैसा चल रहा है? सबकी वृत्तियाँ, प्रवृत्तियाँ उनकी सहज वृत्ति में आ जाती हैं।

आगम वृत्ति में आपकी सारी प्रवृत्तियाँ हैं कौन क्या है? सब कुछ झलकता है। आगम चक्खु को देखकर चलते हैं, ये आँखे मेरी नहीं है। मेरी आँखे तो ये हैं पर मैं इन आंखों से देखता हूँ तो आपका पुद्‌गल दिखता है, लेकिन इन (आगम) आंखों से देखता हूँ तो आप में भगवान दिखता है।

प्रिय आत्मन्! आगम की आँखों से देखोगे, तब आपके अंदर ही सब कुछ दिखता है। इसलिए तो कभी बहिरात्मा, कभी अंतरात्मा, कभी परमात्मा तीनों अवस्थाएँ दिखलाता हूँ। तो देखों मैं किससे पतित हुआ हूँ? काश एक विषय में गिरता तो कोई बात नहीं, मैं छः ही तो विषय पढ़ता था और छः के छः में गिर गया। एकाध में गिरता तो सप्लीमेंट्री में पास होके आगे बढ़ जाता। या कहीं एकाध में नहीं, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण और मन सभी में गिर गया। इंद्रियों में गिर गया।

प्रिय आत्मन् ! जो स्पर्शन इन्द्रिय हमें परमात्मा के चरण स्पर्श करने को प्रभु का कलश करने के लिए एवं इन कर कमलों से मुनिराज को आहार दान देने को मिली थी। धन्य हैं वो हाथ जो सदा गीले रहते हैं आहार दान के जल से, सो सदा ऊपर उठे रहे हैं प्रभु का ध्वज लिए हुए जो सदा करतल ध्वनि करे हुए एक दूसरे की प्रशंसा करते रहते हैं। ये हाथ स्पर्शन इन्द्रिय इसलिए मिली थी। ये चरण भी तो स्पर्श इन्द्रिय में आते हैं। धन्य है वो चरण जो प्रभु की वंदना और तीर्थवंदना के लिए चले जाते हैं। संजीवनी वटी जिस तरह हनुमान खोजने चले आए थे, उसी तरह से यहाँ के प्रमोद ज्ञानी चले आते हैं। तो कहीं शिवनगर में बसने वाली भव्यात्मायें सोचती हैं। हम तो शिवनगर में है लेकिन सच्चा शिवनगर तो मोक्ष है, चलो उस शिवनगर के यात्री के पास चले, जो हमें शिवनगर की खोज बतायेंगे और चली आती हैं वे भव्यात्मायें। तो कभी शांतिनगर की भव्यात्मायें दौड़ी चली आती है, कि इन्द्रियों के विषय में शांति नहीं है, चलो सच्चा शांतिनगर तो जूड़ी तलैया में है, जहाँ पर आत्म शांति का उपदेश मिलेगा, तो वह शांतिनगर यहाँ आकर बस जाता है। कभी देखते हैं यहाँ कहाँ है संगम **''संगम तो वहाँ है जहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की त्रिवेणी बहती है''** चलो उस जूड़ी तलैया में चलें जहाँ संगमनगर बसा हुआर है, जहाँ रत्नत्रय का संगम है और वे संगम कॉलोनी की भव्यात्मायें चली आती हैं, तो कभी सराफा की भव्यात्मायें सोचती हैँ अहो! इस सोने में क्या रखा?, इस चांदी में क्या रखा? ये तो पुद्गल के टुकड़े हैं, पुद्गल के कण हैं। इन पुद्गल के कणों में मैं बहुत भरमा लिया, अब तो चलो जीवन के क्षणों को सार्थक करने के लिए, जहाँ आत्मा को कुंदन बनाने की चर्चा मिलती है। ऐसे वे सराफा की भव्यात्मायें अपनी राह को पकड़ती हैं और इस धर्मसभा की ओर चली आती हैं, कभी देखते हैं, तो हनुमानताल की भव्यात्मायें जानती हैं, अहो! इस ताल से क्या प्रयोजन? इस चाल से क्यार प्रयोजन? जीवन के इस हाल से क्या प्रयोजन? चलो अपने हालात को संभालने के लिए, चलो अपने जीवन को सफल बनाने के लिए वह शीतल सरोवर में डुबकी लगाऐंगे, ये क्यों होता है क्योंकि जिनने जाना है कि इन्द्रियों ने मुझे विषयों में पटक दिया है, इंद्रियों ने विषयों में गिरा दिया है। इस संसार में अनंतानत जीव हैं, जो जीवनभर निरंतर इंद्रियों में डूबे हुए हैं। स्त्री कथा, भक्त कथा, राज कथा, चोर कथा। स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय कितना भी दिन में खाओ, रात में खाओ और 24 घंटे खा रहे हैं लेकिन शांति नहीं मिल रही है। स्पर्शन इन्द्रिय की सेवा में लगे हुए हैं लेकिन शांति नहीं मिल रही है। घ्राण इन्द्रिय के सूंघने के लिए कितने पदार्थ घर में रखे हैं लेकिन शांति नहीं है। कर्ण इन्द्रिय है लेकिन कितने संगम, कितने स्वर, कितने गीत भर दिये लेकिन कोई शांति नहीं है। जान रहे हैं, कि शांति यहाँ मिलने वाली है इस तरह से।

प्रिय आत्मन् ! मेरा यह मन अनंतकाल से इन्द्रियों में पड़ा रहा मैंने सोचा था कि इन्द्रियों के विषयों को पुष्ट करने से शांति मिलेगी और उन्हें दोष दे दिया। दु:ख कहाँ से आये इन इन्द्रियों से

नहीं। चाहे आप बेटे को पाल लेना, चाहे बेटी को पोस लेना। आप ये मत सोच लेना कि मैं बहुत बड़ा कर्त्तव्य कर रहा हूँ। कर्त्तव्य नहीं कर रहे हैं। ये तो हमारी ही विषयों का प्रायश्चित है, ये तो हमारे किये अपराधों का दंड है, जो मुझे करना ही पड़ेगा। कर्त्तव्य बुद्धि मत लाना कि मैं अपने बेटे को पाल रहा हूँ, बेटी को पाल रहा हूँ। क्योंकि कर्त्तव्य बुद्धि नहीं लाओगे तो जीवन के अंत में दु:ख नहीं होगा कि मेरा बेटा मुझे सहयोग नहीं कर रहा, मेरा बेटा मुझे पाल नहीं रहा है। क्योंकि पहले निर्णय कर लिया था, जिस दिन जन्म दिया था, कि ये वस्तुत: मैंने जो अपराध किया है, अंधकार में, उस अपराध का प्रायश्चित अब मुझे प्रकाश में ढूंढना है, मुझे सेवा करना है अब, मल भी उठाना पड़ेगा, मूत्र भी उठाना पड़ेगा, लेकिन ध्यान रख लेना उस बेटे से कभी अपेक्षा मत करना लेकिन धर्म की राह पर चलाते जाओंगे, यदि रोज मंदिर लाते जाओगे, तो मैं सच कहता हूँ कि आपको यह बेटा जिनमंदिर भी ले जाएगा, शिखरजी भी ले जाएगा, चंपापुर भी ले जाएगा और यदि आज आपने अपने बेटे के हाथों में अभिषेक के कलश पकड़ाए, तो मैं भी कहूँगा, कि आपका बेटा कभी अपनो हाथों में शराब के प्याले नहीं पकड़ेगा, इन्द्रियों के विषयों में नहीं घिरेगा, आपने अपने बेटे की पूजा की थाली पकड़ा दी, तो आपका बेटा होटल की थाली नहीं पकड़ेगा। होटल की थाली से समझ रहे हैं, न आप। इसलिए कहता हूँ जब साधु आपके नगर में आ चुका है, तो समझ के चलना चाहिए कि न जाने किस जन्म का, कितने जन्मों का पुण्य उदय में आ चुका है। ये जिनवाणी आपको उदय में आ चुकी है और जब आ ही चुकी है, तो अपने बेटे को ऐसे ही ले आना चाहिए जैसे कुँए में बर्तन को डालते हैं। वैसे श्री जी के चरणों में डाल देना चाहिए। कैसे डालते हो, यदि कुएँ में पानी भरने भेजे तो बर्तन डूबे न डूबे, बार-बार डुबोते हो, इसी तरह से साधु के चरणों में लाना चाहिए, किसी न किसी प्रकार से।

प्रिय आत्मन्! यह मेरा मन इस पथ में ऐसा पड़ा हुआ है कि वहाँ से उखड़कर आना ही नहीं चाहता है, वहाँ से निकलना ही नहीं चाहता है। कल मैं आहार के लिए निकला तो मैंने एक ऐसी छवि देखी, कि बस मैं आगे ही नहीं बढ़ पाया, वो छोटी सी तीन साल की बालिका, पड़गाहन में खड़ी थी नमोतु महाराज! नमोतु महाराज! नमोतु महाराज! ओ हो!! तो इतना आनंद आया, कि वहीं पर पड़ग गया। उस छोटी से नहीं पड़गा। पड़गा तो सब बड़ों से पड़गा, लेकिन कहने का तात्पर्य प्रमोद भाव सबसे प्रति रहता है। न छोटी से आहार लिया, लेकिन प्रोत्साहन कहिये, कि संवेग भाव कहिए या कि धर्म के प्रति खुशी।

हमारा इन्द्रिय वाला मन, इन्द्रिय की ओर दौड़ता है, धर्म वाला मन धर्म की ओर दौड़ता है, इन्द्रियों वाला मन धर्म की ओर क्यों नहीं दौड़ता ? तो जो धर्म से संस्कारित मन होता है वो धर्म की ओर दौड़ता है। जो इंद्रियों से विकृत मन होता है वह इन्द्रियों की ओर दौड़ता है। तत्व दृष्टि से

अनादिकाल से मैंने अपने आपको नहीं जाना। क्या है अनादिकाल से मैंने अपने आपको नहीं जाना कि मैं आत्मा हूँ, मैं ये समझा ही नहीं हूँ।

उसी इन्द्रियों को मैं प्राप्त करता रहा। यह मैं हूँ, कौन? आत्मा। इस बात को मैंने जाना नहीं इसलिए बार-बार इन्द्रियों की ओर दौड़ जाता है। मन बार-बार जानता है, कि ये सब पतन के कारण है फिर भी। **''फिर जाग विषय वनधायो, नाना विध विषफल खायो''** ओ हो! आत्माओ! सबको याद है, मैं जानता हूँ, आपको याद है। याद है, कण्ठस्थ है, हृदयस्थ कर लो, आत्मस्थ कर लो। हम ने तो उस तोते की कहानी पढ़ी थी बचपन में। शिकारी आता है जाल फैलाता है दाने का लोभ दिखाता है। जाल में नहीं फंसना चाहिए। लेकिन होता वही है फिर जाग विषय वन धायो। हम पूरा जानते हैं कि ये विषय विष के समान हैं कैसे हैं ''भोग भुजंग समान'' ये भोग भुजंग के समान हैं, ये **विषय विष के समान हैं** लेकिन मैं बार-बार उसी में गिर जाता हूँ, ये कैसा अविद्या का संस्कार है, ये कैसा मोह का संस्कार है। जानता है पतंगा, कि इस अग्नि ने मेरा एक पंख जला दिया है लेकिन फिर भी वह पतंगा उसी अग्नि की ओर दोबारा आ जाता है, जानता है कि दूसरा पंख भी मेरा जल रहा है लेकिन फिर भी लौट के उसी पर जाता है। उस सर्प की स्थिति। जानता है सर्प की सपेरा ने मुझे आधीन कर लिया, लेकिन फिर भी दौड़ जाता है। इसी तरह मेरी स्थिति होती है।

प्रिय आत्मन्! आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी भगवान महावीर स्वामी की वाणी को प्रतिपादित कर रहे हैं। कि अहो आत्मन्! ''तुम इन्द्रियों से दूर हटो।'' तुम ये मत सोचो कि तुम्हें कोई नहीं देख रहा है, चाहे दिन हो, चाहे रात हो।

आगम चक्खू साहू इंद्रियचक्खूणि सव्वभूदाणि।

देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।।234 प्र.सार।

देवों के अवधि ज्ञान चक्षु होते हैं, वे आपको जान रहे हैं कि आप क्या कर रहे हैं? वे अवधि ज्ञान से भी जान पाएं तो ध्यान रख लेना कि सिद्ध भगवान का केवलज्ञान चक्षु, ध्यान रख लेना-यदि यहाँ पर कोई पाप प्रकट होगा तो हजार व्यक्ति जानेंगे कितने जान पाएंगे लेकिन अनंतानन्त सिद्ध भगवान सब जानेंगे। ये मत सोचो कि मुझे कोई जानता नहीं, मेरे पाप को जानने वाले तो अनन्तानन्त सिद्ध भगवान है। चाहे दिन में पाप हो, चाहे रात में पाप हो, अंधकार में हो या प्रकाश में हो बैठते में या चलते में हो।

प्रिय आत्मन्! तुम्हारे छल को, हमारे छल को, कपट को सिद्ध भगवान जान रहे हैं। भगवान से कुछ न छुपेगा, कितना भी छुपके कर लेना लेकिन भगवान से कुछ भी छुपने वाला नहीं है। त्याग करने में ही श्रेठता है, ग्रहण करने में श्रेष्ठता नहीं है। ''इन्द्रिय के विषयों के त्याग करने पर ही

आत्मा की प्रतीति होती है, जब तक मन इन्द्रियों में डूबा रहेगा, तब तक आत्मा की ओर संलब्न नहीं होगा।'' क्योंकि अशुचिता तन में रहे कोई बात नहीं, लेकिन इंद्रियाँ मन में अशुचिता लाती हैं, इन्द्रियाँ चेतना को अशुचिमय बनाती हैं और जब चेतन अशुचित हो जाता है तो ध्यान और ज्ञान नष्ट हो जाता है।

सच है उल्लू मात्र दिन में नहीं देख पाता, कम से कम रात में तो देख लेता है, चमगादड़ दिन में नहीं देख पाती है, रात में देख लेती है। अंधा व्यक्ति बाहर के पदार्थ नहीं देख पाता है तो कम से कम भीतर को देख लेता है लेकिन कामांध व्यक्ति एक ऐसा होता है जो न रात में देख पाता है न दिन में देख पाता है, न भीतर देख पाता है, न बाहर देख पाता है ऐसा यह कामांध व्यक्ति, हम उल्लू नहीं कहेंगे, चमगादड़ नहीं कहेंगे, कौशिक शिशु क्यों कहेंगे ? न कहेंगे। चमगादड़ न कहेंगे उल्लू और न अंध कहेंगे, क्योंकि वो तो कुछ-कुछ देख लेते हें कभी-कभी, देख लेते हैं, लेकिन वह तो सबसे बडा अंध है। जो विषयों में अंध है वह जगत में सबसे बड़ा अंध है जो कामांध है वह सबसे बड़ा अंध है। इसलिए प्रिय आत्मन्! अपने जीवन को अंधकार में नहीं लेना है इसलिए जिन्होंने मेरे नेत्रों को खोल दिया है ऐसे परमगुरु को हम नमस्कार करते हैं।

प्रिय आत्मन्! इन्द्रिय विषयों से निकलो, ये पर्वराज चल रहा है ये चातुर्मास चल रहा है तो कम से कम प्रतिदिन संकल्प लो कि आज इतनी इन्द्रियों के विषय में हम नहीं पड़ेगे, हम चतुर्मास में इतने दिनों के लिए ब्रह्मचर्य से रहेंगे, हम इतनी इन्द्रियों के विषयों का त्याग करते हैं ऐसा संकल्प लोगे तब तुम जीत पाओगे इन्द्रियों को।

ये तो जान चुके हो कि यह इन्द्रियाँ हमारा पतन कराने वाली हैं इसलिए सुधी व्यक्ति इनमें नहीं पड़ते हैं जो आरंभ में ताप को देती है, संताप को देती है, पाप को देती है। ताप, संताप, और पाप को देने वाली ये इन्द्रियाँ, इन इन्द्रियों से बचिए। इन्द्रियों के जो सम्यक् कार्य हैं उन कार्यो मं लगइये।

इन्द्रियाँ ही मोक्ष देती है, इन्द्रियाँ ही संसार देती हैं। ''जब इन्द्रियों को हम सन्मार्ग में ले जाते हैं तो वे मोक्ष पर ले जाती हैं और जब कुमार्ग पर ले जाते हैं तो इन्द्रियाँ नरक मार्ग में ले जाती हैं।''

आप सभी को इन्द्रियातीत बनना है तो जितेन्द्रिय बनिये, अतीन्द्रिय बनिए, इन्द्रियों को सदुपयोग करें, इन्द्रियों के द्वारा पतन की ओर न जायें, इन्द्रियाँ आपकी हैं, आप स्वामी हैं। स्वामी के अनुसार सेवक चले तभी आपका स्वामित्व है। आगे आपकी इच्छा।

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

हेय, उपादेय विवेचना

प्रिय आत्मन्!

कौन सा तत्व कहाँ उपादेय है, और कौन सा तत्व कहाँ हेय है यह जानना अनिवार्य है। यदि नहीं जानें तो काम नहीं चलेगा, ये जानते हैं कि आटे में कितना नमक डालना, जानते हैं कि नहीं? और दूध में कितनी शक्कर डालना। जितनी दूध में शक्कर डालते हैं, उतना आटे में नमक नहीं डालते है। यानि कौन सी वस्तु कहाँ पर उपादेय है। दूध में नमक नहीं डालते हैं और आटे में शक्कर नहीं डालते हैं। ठीक है, कौन सी वस्तु कब, कहाँ, कैसे उपादेय है? उस उपादेय तत्त्व को जानकर ही कार्य करते हैं। हर समय दूध में नींबू नहीं डालते लेकिन जब छैना बनाना हो, तो दूध में नींबू डाल देते हें जब दूध फट जाता है तो क्या करते हैं। उसके दो उपाय हैं या तो आप गुस्सा हो लीजिए, कि दूध फटा दिया है या फिर आराम से थोड़ा सा नींबू ओर डालकर के फिर छैना बना लीजिए।

प्रिय आत्मन्!

कहाँ पर क्या उपादेय है? समग्र उपहार ऐसे ही प्राप्त होता है कि कहाँ पर किस बात को प्रमुख करें और किस को गौण करें। कुछ बातें गौण करके चलना होता है, शांति पाने के लिये, कुछ बातें प्रमुख करके चलना होता है, अवसर को पहचान करके कार्य करना। अवसर माने काल द्रव्य। काल क्या है? क्षेत्र क्या है? भाव क्या है?

कैसे परिवार को चलाना, कैसे घर को चलाना, कैसे साधु संघ को चलाना है। ये सोमदेव आचार्य ने **''नीति वाक्यामृतम्''** में लिखा है। उसको जरूर पढ़ना चाहिए इतना सुन्दर नीतिवाक्यामृतम् है। किससे शांति की प्राप्ति होती है प्रत्येक क्रियाकलाप में संत नही खोजता है, कि शांति किस में निहित है। आत्म शांति को न खोकर के हम कैसे आगे बढ़े, ये विविध महत्वपूर्ण भूमिका होती है। और कभी-कभी ऐसा भी होता है शांति से धर्म नहीं होता है, आया ध्यान में - **''शांति से धर्म नहीं होता है, धर्म से शांति होती है।''** कभी-कभी ऐसा भी मत सोच लेना कि शांति, शांति।

प्रिय आत्मन्!

शांति से सोना होता है। शांति तो आलस्य में होती है, लेकिन धर्म से शांति जागती है। यदि आप शांति कहो, तो घर में किसी भी प्रकार के गलत आचरण आने लगें और फिर भी आप शांत रह जाऐ। नहीं इसके लिये हम क्या करते हैं? अपने विवेक का प्रयोग करते हैं और धर्म करने के लिये आतुर होते हैं ओर धर्म से शांति प्राप्त होती है, अन्य प्रकार से शांति की प्राप्ति नहीं होती है। शरीर से भिन्न आत्मा को संसारी प्राणी कैसे

जानता है?

शरीर कंचुकेनात्मा संवृतो ज्ञानविग्रहः।

नात्मानं बुध्यते तत्समात् भ्रमत्यति चिरंभवे।।68।।स.तं.

आपने देखा ज्ञानावरणादि आठ कर्म बधने के कारण आप अपनी आत्मा को नहीं जानते। जो सर्प आदि होते हैं, उन जीव-जन्तुओं के ऊपर काँचुली रहती है, और वे काँचुली छोड़ देते हैं। क्या? कांचुली छोड़ देते हैं। उसी तरह आचार्य कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर कर्मो की कांचुली चढ़ी हुई है और इस कर्म-काँचुली के कारण देख नहीं पा रहे हैं। इस ज्ञान शरीरी आत्मा के ऊपर कार्माण शरीर की काँचुली चढ़ी हुई है। किस पर? ज्ञान शरीरी आत्मा पर कार्माण शरीर की काँचुली और कार्माण शरीर की काँचुली जब उतरेगी, तब तुम्हें अन्तरात्मा के गुण दिखाई देंगे।

आचार्य महाराज ने कहा किस तरह से आप काँचुली को छोड़े और काँचुली के साथ जहर छोड़ना भी अनिवार्य है। सर्प यदि काँचुली अकेली छोड़ देती है, तो क्या होगा? कुछ नहीं होगा। "वस्त्र का त्यगा करना तो काँचुली को छोड़ने के समान है।" घर का त्याग करना तो काँचुली को छोड़ने के समान है। यदि अन्तर में तुम्हारे विषय कषायों का जहर निकल गया है, तब तो ठीक है और यदि अन्दर से विषय-कषायों का जहर नहीं निकला है, तो मात्र काँचुली छोड़ने से क्या होगा सर्पराज?

प्रिय आत्मन्!

अपने अन्दर में देखो कि वह सर्प अच्छा है, कम से कम जिसने जहर को छोड़ दिया है। लेकिन यदि तेरे अन्दर मिथ्यात्व का जहर रहा तो बहुत बुरा है। सर्प यदि काटता भी है, तो एक ही भव नष्ट होता है, लेकिन मिथ्यात्व का सर्प जिसको काटता है अनंत भव तक जीव भ्रमण करता रहता है। इसलिए अपने में जहर तो नहीं है यदि दंत में विष रहेगा तो फिर हम दान्त नहीं बन पायेंगे। दंत में यदि विषय कषायों का जहर रहा तो दान्त नहीं बन पायेंगे, इसलिए दान्त और शांत बनने के लिये हमें विषय कषायों के जहर का वमन करना पड़ता है, शमन करना पड़ता है - **"समन करते हैं तो शांत बनते हैं, शमन करते हें तो दान्त बनते हैं।"**

प्रिय आत्मन्!

कैसे हम दान्त बने, शांत बने और पल-पल निहारें कि मैंने ऊपर से जो कुछ त्यागा है उस त्याग का कुछ विशेष महत्व नहीं है वह तो मात्र साधन है। अन्तरंग के परिणामों की निर्मलता यथार्थ त्याग है। मुझमें वह निर्मलता कितनी जागी है? यदि वह निर्मलता मेरे अंदर जाग चुकी है तो श्रेष्ठ साधना हुई, निर्मलता नहीं जागी तो क्या लाभ? वह धवलता, वह निर्मलता जैसे माखन पर मृदुता समा जाती है, जैसे - कानों में वाणी समा जाती है, जैसे फूल में खुशबू समा जाती है, जैसे जल में शीतलता समा जाती है, जैसे दर्पण में उज्ज्वलता समा जाती है, जैसे अग्नि में उष्णता समा जाती है, जैसे सरिता में जल की प्रवाहिता समा जाती है, वैसे ही मेरे अंदर में क्या समाया है? ये हमें देखना है, इसी को निहारना है कि मेरे अंदर क्या फल रहा है? सरिता में जो बह जाता है वह तो समुद्र तक पहुँचता है। जैसे बहते हुए पानी में गिरा हुआ पत्ता पानी के साथ बहता जाता है वैसे ही परिणामों के प्रवाह में प्राणी बहता हुआ परिणामों के अनुरूप जाता है। उसी तरह मेरे हृदय में जो बह रहा हे, वही लेके

जाएगा। ध्यान रखो – जब जल बहता है और यदि लाल मिट्टी के ऊपर से जल बहता है तो लाल–लाल हो जाता है, यदि संगमरमर चट्टानों के ऊपर जल बहता है तो जल श्वेत–श्वेत हो जाता है यदि गेरुआ मिट्टी के ऊपर बहे तो गेरु हो जाता है।

इस तत्त्व को क्यों नहीं देखते हो। विचारों का जल किस आधार धरा पर बह रहा है। चिंतन के स्त्रोत किस आधार धरा पर बह रहे हैं। पानी तो श्वेत है, पानी का रंग श्वेत है, लेकिन जब नीचे की मिट्टी लाल होती है, पानी भी लाल हो जाता है। जब नीचे की मिट्टी काली होती है तो पानी भी काला हो जाता है। जब नीचे की मिट्टी मटमैली होती है तो पानी भी मटमौला हो जाता है। जमीन गंदी होती है तो पानी गंदा हो जाता है। आकाश से तो पानी स्वच्छ आता है। प्रिय आत्मन् तेरा आत्म स्वभाव तो निर्मल है, लेकिन तूने आधार किसको बनाया है, अपने विचार किस आधार पर छोड़े हैं। जब आकाश से बरसने वाला पानी यदि चट्टानो के ऊपर बहता है, तो कितना स्वच्छ रहता है, और जब मिट्टी के ऊपर बहता है, तो वह अस्वच्छ हो जताा है।

मैंने श्यामरी नदि में बहतें हुए पानी को देखा, मैंने काठन नदी में बहते हुए पानी को देखा, मैंने धसान नदी में बहते हुए पानी को देखा। जब तीनों नदियों के पानी को देखा तो पाया कि जब धसान का पानी पत्थरों के ऊपर से बहता है, तो कितना निर्मल बहता है, जबकि श्यामरी में बहता है, तो वह कितना गंदा रहता है, क्योंकि वह मिट्टी को साथ लेते हुए बहता है, धसान का पानी अपने साथ कुछ लेकर नहीं बहता। पत्थरों पर गिरता है, पर एक भी पत्थर साथ में लेकर नहीं जाता है। इसलिए वह पानी कुछ ही चार–आठ दिन में निर्मल हो जाता है। लेकिन श्यामरी का पानी चार महीने में निर्मल नहीं होता, क्योंकि वह पानी अपने साथ मिट्टी ढ़ोकर बह रहा है। हे जल! तू कितना स्वच्छ था, यदि तू मिट्टी को साथ में लेकर न चलता, तो मटमौला न होता। हे जल! तेरे मैं तो मेरा प्रतिबिम्ब झलकता है, लेकिन आज तूने बाहर को इतना ओढ़ रखा है कि तुझमें पैर डालना भी पसंद नहीं आ रहा।

जब पानी गंदा होता है तो कोई उसमें पैर भी नहीं डालता है और जब पानी स्वच्छ होता है तो दर्पण में छवि निहारने की अपेक्षा जल में छवि निहारना अच्छा लगता है। तत्त्वज्ञान अपने साथ है। कषायों से रंगा हुआ जब मेरा मन होता है तो तत्त्वज्ञान में अवगाहन नहीं कर पाता है और जब कषायों का मटमैलापन न हो, समता के प्रदेशों में बहने वाला जल, धर्म की भावना पर बहने वाला जल, कौन सा ? धर्म की भावना बहने वाला जो जल होता है वह बाह्य में निर्मल होता है।

प्रिय आत्मन्!

चिंतन का जल प्रतिपल हमारे अन्दर बह रहा है, उस चिंतन को निर्मल बनाए रखने के लिये, उस जल को निर्मल बनाये रखने के लिये, हमें आधार देना होगा धर्म का, हमें आधार देना होगा स्वाध्याय का, हमें आध ाार देना होगा जिनवाणी का। और यह आधार त्रिपुट स्त्रोत से दें, हम सोचें आधी नदी बह चुकी और फिर उसमें निर्मलता आ जाए तो नहीं आ पाती है और ऐसा होता है, कि बीच चट्टानों के पास से मिट्टी आकर के फँस जाती है।

प्रिय आत्मन्!

जहाँ का जल पेय नहीं होता है, वहाँ जल अधिक होता है और जहाँ का जल पेय होता है, वहाँ जल कम होता है। यह भी ध्यान रखो, कि पेय जल बहुत थोड़ा भी हो तो बहुत उपयोगी होता है अपेय जल बहुत अधिक भी हो तो उपयोगी नहीं होता। उसी तरह मेरे पास उपयोगी विचार दो-चार भी हैं, तो वे भी महत्त्वपूर्ण हैं, अनुपयोगी विचार सारे की अपेक्षा, तत्त्वज्ञान पर ध्यान दो। मैं आपके गोल बाजार में प्रभावना के लिये नहीं आया था। ये आप सभी के प्रबल पुण्य परमाणुओं का तीव्र उदय है, इसलिए ये साधु जन आपके पास चले आते हैं और आते हैं तो आप बड़ा प्रेम देते हैं, स्नेह देते हैं, और यहाँ आ जाने के बाद आपका मन ही नहीं होता कि यहाँ को छोड़कर के जाएं।

अब इतना जरूर करो कि आपके यहाँ इतना बड़ा विद्यालय चल रहा हे, बड़ी खुशी की बात है, कि जबलपुर शहर की जैन समाज की नाक को ऊँचा रखा। ऐसे ही विद्यालय खोलना चाहिए आपको, और ऐसे ही चलने चाहिए। आज इस्लाम धर्म का अपना विद्यालय है, ईसाईयों का अपना विद्यालय है, सिक्खों का अपना विद्यालय है, अपना हॉस्पिटल है। इसी तरह जैन समाज की प्रभुता को लेकर के ऐसे विद्यालय होना चाहिए जिनमें पूरे जैन समाज के बच्चे एक साथ पढ़ सकें। जहाँ पर संस्कारों की प्रतिष्ठा बन सके। जब हमारे जैन-जैन बच्चे एक साथ पढ़ेंगे तो वहाँ के संस्कार वैसे ही महान् होंगे।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

येन आत्मन्

प्रिय आत्मन्!

आत्मा, आत्म को, आत्मा में अनुभव करना है। कौन किसका अनुभव करता है? आत्मा–आत्मा का अनुभव करता है। ध्यान देना– जिस समय में पुद्‌गल का अनुभव कर रहा हूँ, मैं आत्मा नहीं अनात्मा हूँ, मैं अंतर आत्मा नहीं, बहिरात्मा हूँ।

प्रिय आत्मन्!

आत्मा को जानने का साधन जड़ नहीं है। आत्मा के अनुभव का साधन जड़ नहीं हो सकता । शांति आत्मा का अनुभव है, लेकिन तुम शांति का अनुभव, चाहो तो क्या होगा नहीं? पंखे का अनुभव आत्मा का अनुभव नहीं है। कला का अनुभव आत्मा नहीं है। जिस तरह पंखा और कूलर तुम्हारी चेतना से पृथक हैं, जड़ द्रव्य हैं, उसी तरह स्त्री पुरुष मित्र इत्यादि भी पंखे कूलर की तरह तुम्हारी आत्मा से भिन्न हैं, ऐसा जानना। यदि कोई पंखा लगाकर माने कि शांति मिल रही है, वह उसका भम्र है। उसी तरह स्त्री पुरुष से शांति की कामना कर रही है, तो यह उसका भम्र है, पर द्रव्य, पर पदार्थ और वह भी पुद्‌गल द्रव्य, क्या शांति देगा मेरी शांति मेरी आत्मा के बधीन है, मेरी शांति पुद्‌गल के अधीन नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

शांति पुद्‌गल के अधीन होती तो चक्रवर्ती 96 हजार रानियों का त्याग करके वन को नहीं जाते। चक्रवर्ती षटखण्ड भूमि को त्याग करके दीक्षा लेने नहीं जाते। वे महापुरुष जानते थे, कि चौदह रत्नों में रहकर गुणस्थान नहीं पा सकते हैं क्या वह 14 रत्नों में रहकर के, 14 वां गुणस्थान पा सकते थे? नहीं। नव निधियों में रहकर हम नवधा भक्ति नहीं कर सकते हैं। नव लब्धियाँ नहीं पा सकते है। एवं नव निधियों में रहकर के हम उन सात तत्त्वों में से एक मोक्ष तत्त्व को भी नहीं पा सकते हैं।

प्रिय आत्मन्!

ये नौ निधियाँ, 14 रत्न जब तक रहेगें तब तक 14वां गुण स्थान तो दूर रत्नत्रय को भी नही पा सकता हैं इसीलिए रत्नों का त्याग किया। आत्मा के द्वारा ही आत्मा का अनुभव होता है, कभी पुद्‌गल के द्वारा नहीं होगा। कभी आंखों से आत्मा को नहीं देखना, कानों से आत्मा को मत सुनना, इन सब को बंद कर लेना पड़ता

है, निज में तल्लीन होना पड़ता है, जब हम द्रव्य कर्ममल, भाव कर्ममल, नो कर्ममल तीनों से भिन्न जैसे अपने आप को देखते हैं तो भीतर महसूस होता है, कि मैं शरीर नहीं हूँ। बहुत सारा सामान रख दिया जाता है कि अपना सामान चुन लो। तब वह कहता है कि यह सामान मेरा नहीं , कि ये मेरा नहीं, ये मेरा नहीं,। मालूम है, किसकी कथा है, जिस सेठ के रत्न सत्यघोष ने हड़प लिये थे, वह वृक्ष पर बैठे-बैठे ये घोषणा कर रहा था कि मेरे रत्न चुरा लिये, रत्न हड़प लिए। राजा ने अंत में क्या परीक्षण किया। बहुत सारे रत्नों में उसके सात रत्न मिला कर कहा अपने रत्न देखों। बहुत सारे रत्नों में से उसने अपने सात रत्न पहचान लिये।

प्रिय आत्मन्!

उसी प्रकार संसार में अनेक रत्न हैं, अनेक द्रव्य हैं, अनेक तत्व हैं उन में से मात्र प्रयोजनभूत सात तत्वों को ही तो पहचानना है। उन सात तत्वों में केवल एक मात्र आत्मा मेरा है। इंद्रधनुष में कितने रंग होते हैं पता है। सात होते हैं, विज्ञान पढ़ा। यदि कोई वैज्ञानिक बैठा हो जिसने प्रयोगशाला में प्रयोग किया हो जब वे सातों रंग गतिमान होते है तो कौन सा रंग दिखता है? एक सफेद रंग दिखता है। इसी तरह मैं तत्त्वों में से एक जीव तत्त्व हूँ।

प्रिय आत्मन्!

हम अनंतकाल से संसार में भटक रहे अभी संसार में भटकने का समय पूरा नहीं हुआ, भैया बहुत भटक लिया अब और पर्यायों में भटकना नहीं है। आपका समय पूरा हो गया कितना और भटकोगें? पर्यायों को अपना मानकर मैंने भटकन की। जिस देह में गया उसी देह में मैंने अपने आप को वैसा माना। स्त्री की देह में जाकर अपने आप को स्त्री मान बैठा। पुरुष की देह में जाकर मैंने अपने आप को पुरुष माना । नपुसंक की देह में जाकर मेंने अपने आपकों नपुंसक मान बैठा।

अहो आत्मन्! क्या तुम यही हो? नहीं यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। ये पर्याय की पराधीनता तुम्हारें परिणामों की स्वाधीनता खो रही है। ये पुद्गल की पर्याय में तुमने चेतना के परिणाम को खो दिया।

तुम अजीव के उपकार में जीव का अपकार कर रहे थे, महाराज जी ने कितनी सुन्दर बात कही हैं। देह का सत्कार आत्मा का तिरस्कार यही तो है। चाहे स्त्री की पर्याय हो, पुरुष की पर्याय हो ,चाहे नपुसंक की पर्याय हो। इन पर्यायों के कारण मैंने पर्यायों का अनुभव किया निज अनुभव नहीं किया, आत्मानुभव नहीं किया, स्वभानुभव नहीं किया ।

ये ध्यान दो तुम्हें निजानुभव करना है, कि स्त्री का अनुभव करना है, कि नपुसंक अनुभव करना है किन अनुभवों को तुम कर रहे हो। तत्काल की परिणति पर विचार करो कि मैंने इस समय स्त्री का अनुभव किया हैं, कि मैंने इस समय पुरुष का अनुभव किया है कि मैंने नपुंसक का अनुभव किया है मेरे परिणाम किस रूप चल रहे हैं।

धर्मसभा में विराजमान भव्यआत्माओ! जब चर्चायें आई धर्मपत्नी की, सभी मुखर हो उठे। तुम्हें पता था कि तुम धर्मयभा में विराजमान हो । तुम्हारी स्त्री नहीं छूटी थी, पत्नी नहीं छूटी थी। जरा सा विचार करो जब

चर्चा आई तो मुखर हो उठे पुलकित हो उठे।

किसी कि जरा सी निंदा सुन कर इतना आनंद मना लिया। तुम्हें पता नहीं कि देखो ये आकृति का नाम नपुंसक नहीं है। अंदर की कृति अंदर के परिणाम तुम्हारें कैसे हैं इससे मालूम चला। ध्यान दो आचार्य पूज्यपाद ही आपको समझायेगें कि हे आत्मन्! तू शरीर की आकृति को स्त्री मान रहा है, तु किसमें आनंदित हो गया, किसमें प्रसन्न हो गया, मुग्धा में मुग्ध हो गया।

अहो आत्मन्!

इन सब पर्यायों की पराधीनता ने, पुद्गल के आकर्षण ने, इन पुद्गल के टापू ने तुझे चेतन के पार नहीं जाने दिया। संसार समुद्र से तिरने के लिए धर्म की नैया पर सवार हुआ लेकिन ये पुद्गल आकर्षण के टापू तुझे जहाँ मिले, चाहे वह स्त्री हो, चाहे वह पुरुष हो, चाहे नपुसंक हो, जड़ के आकर्षण में तू वही पर ढल गया। तेरी अविराम यात्रा में अवरोध तैयार हो गया यात्रा रुक गई। अन्यथा संसार नहीं होता और मैं कभी का संसार सागर से पार हो गया होता।

अहो आत्मन्!

देखो पूज्यपाद स्वामी का मूल श्लोक जब निज परिणमन करता हूँ तो मात्र एक जीव तत्त्व बचता है शेष सब तत्त्व लुप्त हो जाते हैं कौन या तत्त्व बचता है जीव तत्त्व बचता है।

वह सतरंगा चला जाता है मात्र एक रंग अस जाता है। अंतरंग में आते हैं मो एक रंग आता है और बहिरंग में जाते हैं तो सात रंग दिखाई देते हैं।

प्रिय आत्मन्!

इसके माध्य से जानता है कि आत्मा में ही आत्मा दिखाई देती है। आचार्य भगवन् परीक्षा मुख में लिखते हैं-

शब्दानुच्चारणेऽपि स्वास्यानुभवनमर्थवत् ।। 10 प.मु.सूत्र।।

आत्मा के अनुभव के लिए शब्द के उच्चारण की आवश्यकता नहीं हैं। जैसे हम पेन के जानने के लिए हम अपना ध्यान पेन की ओर ले जाते हैं। कापी को जानने के लिए हम अपना ध्यान कापी की ओर ले जाते हैं तो कापी को जान लेते है। उसी तरहर निज आत्मा को जानने के लिए उपयोग को अपनो भीतर ले जाओ, तो अपनी आत्मा को जान जाओगे।

भैया! अनुभव भव-भव में नहीं होता। अनुभव अन्य भव में भी नहीं होता। अनुभव के लिए केवल एक मनुष्य भव ही मिला है। बोलो क्या तिर्यच गति में, नरक गति में, देव गति में होगा? जहाँ दोषों का प्रत्याख्यान नहीं वहाँ क्या अनुभव होगा? जहाँ दोषों का प्रतिक्रमण नहीं है वहाँ क्या अनुभव होगा?

प्रिय आत्मन्!

आत्मा का अनुभव करने के लिए आत्मा में प्रवेशा करना पड़ता है। जहाँ गुरु नहीं वहाँ अनुभव नहीं है क्योंकि स्व पर की संवित्ति गुरु के उपदेशा से हुआ करती है और देव के पास गुरु नही है। इसीलिए आत्मा का अनुभव नहीं है। तिर्यचों के पास गुरु नहीं है इसलिए आत्मा का अनुभव नहीं है। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके पास गुरु है और गुरु होने के कारण उपदेश पाते हैं और उपदेश पाने के कारण अपने आपको अनुभव करते हैं।

प्रिय आत्मन्!

ऐसा है यह निजानुभव। हम गुरु का उपदेश पाकरा के करते हैं तो मैं अनुभव किसका कर रहा हूँ। उपदेश मुझे गुरु का मिला हैं उपदेश मुझे आत्मा का मिला है। लेकिन मैं अनुभव किसका कर रहा हूँ। कहो किसका अनुभव चल रहा है। आप अपनोस आप से पूँछो सुबह शाम तक की यात्रा में, रजनी से दिन की यात्रा में, अंधकार से प्रकाश तक की यात्रा में किसका अनुभव किया? मैंने जड़ का अनुभव किया कि चेतना का अनुभव किया? इसका जवाब तो स्वयं के प्रति ईमानदार बनोगें तो मिलेगा। भैया! मैं नहीं बता सकता। आत्मा का अनुभव तो आत्मा विषय है। तुमने दिन भर में कितनों का स्पर्श किया और किसका अनुभव करते हो। जो तुम्हारे मन में आयाा उसका मन में अनुभव कर लिया। जो तुम्हारे वचनों में आया उसका वचन के द्वारा अनुभव किया व काय से जो किया उसका काय के द्वारा अनुभव किया।

प्रिय आत्मन्!

यह निजानुभव हमसे कोसों दूर रह जाता हैं शब्द कोश में रह जाता है। यह अपने अन्दर में जो है। अपने स्वरूप में आ जाए तो फिर हम कोसों दूर नहीं है फिर सात-राजू दूरी हमारी दूरी नहीं रह जाएगी।

कितनी सी दूरी है। सात राजू पार करना एक समय का काम है मात्र एक समय लगता है सात राजू पार करने में। अनंतकाल बीत गये लेकिन मैं एक समय नहीं निकाल पाया अपने लिए।

मोक्ष जाने में मात्र एक समय लगता है। कितना समय? एक समय। मेरे पास समय नहीं है। पर मेरे पास समय नहीं है। ऐसा आप कह देते हो।

मोक्ष जाने के लिए भी समय नहीं। यदि तुम्हारे पास, एक समय। मेरे पास समय नहीं है। पर मेरे पास समय नहीं है। ऐसा आप कह देते हो।

मोक्ष जाने के लिए भी समय नहीं। यदि तुम्हारे पास, आत्मा के पास आने के लिए समय नहीं, धर्म के पास आने के लिए समय नहीं, संत के पास आनेर का समय नहीं, तो अरिहंत के पास जाने के लिए समय कैसे मिलेगा? भगवंत के पास जाने के लिए कैसे समय मिलेगा?

यदि निर्ग्रंथ के पास आने का सयम हैं तो कहते हैं कि भगवंत के पास जाने के समय मिलेगा। यदि वृक्ष के पास आ सकते हो तो छाँव के पास जा सकोगें। यह सिद्धान्त है। ध्यान दो मैं कौन हूँ? यह अपने अंदर में खोजो। वस्तुतः कभी मैं अपने आपको अबला मान बैठता हूँ तो कभी मैं अपने आप को स्त्री मान बैठता हूँ।

पर्यायों के पास जाओं ये कर्मो का आवरण कब तक रहेगाा कि मैं अपने आपा को स्त्री मान बैठा हूँ।

स्त्री कौन होता है? जो दोषों को ढ़कता है। जो दूसरों के दोषों को ढ़कता हैं वो स्त्री होता है। ये तो नेमीचंन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा है -

जिसका स्वभाव है ढ़कने का वह स्त्री है। ये नहीं कहा कि आकृति का नाम स्त्री नहीं है, आकार का नाम स्त्री नहीं हैं, संस्थान का नाम स्त्री नहीं है।

जब कभी स्त्री की चर्चा आये तो तब ऐसा मत समझ लेना कि मैं पुरूष यह ध्यान रख लेना कि मेरे अंदर कहीं छल-कपट तो नहीं समाया है। यदि मेरे अंदर छल-कपट समाया हैं तो मैं स्त्री हूँ। भले पिच्छीधारी मुनिराज बने रहना। यदि छल कपट समाया है तो मैं स्त्री हूँ और पुरु देव यानि आदिनाथ भगवान के गुणों का सेवन करते हो तो पुरुष हो। दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करते हो तो पुरुष हो। अपने अंदर के पौरुष को पहचानों। तुम अकेले रूष होते हो पुरूष नहीं। रुष यानि क्रोधित। जो रुष हैं वह पुरुष नहीं। रुष होकर के पुरुषता को नहीं पाया जाता है। पुरुष का अर्थ है - आत्मा। बताओ कौन नहीं है आत्मा? सभी है।

प्रिय आत्मन्!

ज्ञान की आँखों से देखो ये मोह का चश्मा उतार दो तो पूरा संसार पुरुष दिखाई देगा। पुरुष यानि आत्मा, आत्मा दिखाई देगी। जब तक हमारे पास मोह का चश्मा लगा हुआ है, यह मोह का चश्मा लगाकर तुम्हें मोक्ष की दूरी दिखाई नहीं देगी। मोक्ष की मंजिल दिखाई नहीं देती हैं।

हम कब ऐसा देखेगे ''सोऽहं'' मैं तो आत्मा मात्र हूँ। और मैं स्त्री को देख रहा हूँ। जिस समय तुम्हें स्त्री में आत्मा दिखाई देगी उस समय क्या दिखेगा? अरूप स्त्री को जिस समय अपने में आत्मा दिख जाएगा कि मैं स्त्री नहीं हूँ। विश्वास रखना यह अरिहंत के वचन हैं। अरिहंत के वचनों पर विश्वास रखो कि मैं स्त्री नहीं हूँ। ये तीर्थंकर महावीर का वचन है कि मैं स्त्री नहीं हूँ। तुम विश्वास तो रखो। जिस समय तुम विश्वास रखोगे। उस समय तुम्हें नहीं परमात्मा दिखेगा, उस समय भाई नहीं भगवान दिखाई देगा। कहाँ देख रहे हो नंद में आनंद दिखाई देगा। जब तक मैं पर्यायों की आधीनता को अपने में मान रहा हूँ। कहा था भैया कम से कम गुरु के पास आओ तो भैया-बहन बनकर आना, स्त्री भाव को लेकर मत आना।

हे आत्मन! पावन परिणतियाँ लेकर आओ। धर्म सभा में आओ तो ऐसे जैसे कि सरोवर में डुबकी लगाने आते हो। सरोवर में प्रवेश करते हो क्या करते हो? जैसे पाद रक्षिका निकालकर अलग रख देते हो उसी तरह थोड़ा मोह का आवरण भी अलग करके आओ ध्यान दो तुम कहाँ पर आये हो निर्ग्रंथ के पास आये हो तो तो संत के पास जाकर इतना संतोष तो पाओ कि थोड़े समय भाई-बहित बनकर तो आओ। आत्मा की चर्चा कर रहे हो और आनन्द मानने लगे जिस समय महाराज श्री ने थोड़ी सी स्त्री के विषय में चर्चा की अर्थात् बोल दिया कुछ लोगों के चेहरे महिला वर्ग की ओर पहुँच गये। कहाँ पहुँच गये, तुम ध्यान देना। इसी समय यदि आयु बंधा हो जाता तो सीधे तिर्यंच गति में होता। जो तुमने निंदा में आनंद मनाया ध्यान देना उस समय गुणस्थान दूसरा हो गया।

प्रिय आत्मन्!

कभी क्रोध मत लाना। क्रोध करके क्रोधी बनना। इस बात का ध्यान रख लेना कि क्रोध का प्रारम्भ अविवेक से होता है और पश्चाताप पर समापन होता है। मैं नपुंसक नहीं हूँ। नपुंसक कौन हैं? जड़ जो चेतन नहीं हैं नपुंसक, जो स्त्री और पुरुष नहीं है ऐसी पर्याय मान लीजिए। लेकिन तुम आत्म स्वरूप से देखो, क्या मैं नपुंसक हूँ? यदि तुम्हारे परिणाम उभय रूप हो रहे तो यह ध्यान रख लेना कि परिणामों से तुम हो लेकिन पर्याय तुम नहीं हो। यह पुद्‌गल की पर्याय है इसीलिए तुम नपुंसक नहीं हो। तुम इन तीनों से रहित हो क्योंकि विभाव परिणाम क्षणि हैं।

प्रिय आत्मन्!

हम वेदी के पास जाते है और वेदज्ञान को ही छोड़ कर जाओगे तो कैसा हो? रोज हम वेदी के पास जाते है। वेदी के पास जाना वेदी पर बैठा विश्ववेदी विश्वज्ञानी है। वेदी के पास जानाा विश्ववेदी के पास जाना, चावल चढ़ाने को, लेकिन वेदी बनकर चाँवल चढ़ाना। पुरुष वेदी बनकर चाँवल मत चढ़ाना, नपुंसक वेदी बनकर चाँवल मत चढ़ाना। उस समय आत्मवेदी और परमात्मवेदी बनकर चावल चढ़ाना।

प्रिय आत्मन्!

वेदी के पास गये प्रतिष्ठा करवाई की नहीं? वेदी इसीलिए बनाई गई कि वेदी यानि ज्ञानी। जरा अब बताओ तुम कौन से वेदी हो? जरा सा विचार कर लेना कि आत्मवेदी यानि आत्म ज्ञानी, स्त्री वेदी यानि स्त्री ज्ञानी तुम्हारा ज्ञान स्त्री की ओर चला गया तुम स्त्री ज्ञानी हो गये। तुम्हारा ज्ञान पुरुष की ओर चला गया तुम पुरुष ज्ञानी हो गये। जड़ में चला गया जड़ ज्ञानी हो गये। मिट्‌टी को ओर चला गया मिट्‌टी ज्ञानी हो गये। पत्थर में चला गया पत्थर ज्ञानी हो गये। परमातम को देखते समय संगमरमर में चला गया उसके ज्ञानी हो गये, पंखे को देखकर पंखे ज्ञानी हो गये।

प्रिय आत्मन्!

आत्मवेदी बनो परवेदी नहीं, निज वेदी बनो, स्वभाव वेदी बनो। आचार्य कहते हैं - जो आत्मवेदी बनता हैं वह शीघ्र ही मोक्ष को पा लेता है। जो कहा था समयसार जी में ज्ञान-भावना कर ज्ञान में भावना करो, दर्शन में भावना करो, चारित्र में भावना करो, ये तीनों भावना करो ये तीनों आत्मा में होती हैं इसीलिए अनुभव करो।

किसका अनुभव करना है? स्त्री पुरुष, नपुंसक तीन का अनुभव कर लो या फिर दर्शन, ज्ञान, चरित्र का अनुभव कर लो। एक ओर खली के टुकड़े दूसरी ओर चिंतामणि रत्न के समान दर्शन, ज्ञान, चारित्र आपके एक हाथा में है। खली के टुकड़े समान तीनों वेद आपके सामने हैं आपको अनुभव करना है। सोऽहं न तत् याने नपुंसक लिंग, सा याने स्त्रीलिंग, सः याने पुलिंग। ये तीनों शब्दों के द्वारा तत् नहीं, सा नहीं, सः नहीं। ध्यान रख लेना मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं सः, सा, तत् भी नहीं हूँ। तत् से हमें वितत् की ओर चलना है। तत् से वितत् यानि नपुंसक लिंग को त्याग करके आगे बढ़ना है। सः को भी त्यागना है, सा को भी त्यागना हैं और इसे आगे

जाकर अदेह देह को प्राप्त करना है।

प्रिय आत्मन्!

''न एकम्'' मैं एक नहीं हूँ। मैं पर में नहीं हूँ। मिला जुला एक नहीं है शरीर और आत्मा एक नहीं है। देह दिखती है किन्तु इन्द्रियाँ आत्मीय है नहीं। इन्द्रियाँ आत्मीय इसीलिए नहीं हैं क्योंकि आत्मा को छोड़ देती हैं। आत्मा चली जाती है इन्द्रियाँ यहीं रह जाती हैं। आत्मा का साथ नहीं निभाती, इसीलिए इन्द्रियाँ अपने स्वार्थ के पीछे आत्मा को कष्ट में डालती है। पराधीनता में डालती है। आत्मा स्वतंत्र होना चाहती है। आत्मीय तो वह कहलाता है जो स्वत: इष्ट आत्मा का ध्यान रखता है। इन्द्रियाँ स्वयं की पूर्ति के लिए आत्मा को परतंत्रता में डालती हैं।

मैं ज्ञानदर्शन स्वरूपी हूँ। मैं रागद्वेष से रहित हूँ। मैं चिदानन्द, चैतन्य हूँ। मैं सहजानंदी हूँ। नित्यानंदी हूँ। मैं विकार से रहित हूँ। मैं विरोध से रहित हूँ। मैं क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हूँ। ऐसा जब ज्ञान में आये आत्मा का यथार्थ स्वरूप जब तुम्हारे ज्ञान में आये तो तुम ज्ञानी आत्मा बने। अन्यथा कौन सी आत्मा शब्द, आत्मा, अर्थ आत्मा, ज्ञान आत्मा। महत्व किसका है? मूल्य किसका है? ज्ञान आत्मा का। तो ज्ञान आत्मा... ....जो ग्राह्य नहीं है। जो शब्दों के द्वारा ग्राह्य नहीं है आत्मा। जो पदार्थो के द्वारा ग्राह्य नहीं है। आप लोगा करते हैं। कोई भी चीज शब्द के द्वारा मँगा लेते हैं। यदि नीचे सब्जी वाला है। उससे बोल देते हैं-सब्जी।

सब्जी वाला आपके पास आ जाता है। कुछ पदार्थ के द्वारा मँगा लेते हैं। आपने टोकरी दे दी, बास्केट दे दी। उसमें सब्जी रखकर आ गई। लेकिन आत्मा को कैसे ग्रहण करें। पर पदार्थ पुद्गल के द्वारा ग्रहण हो जाता हैं लेकिन निज पदार्थ निज के द्वारा ग्रहण होगा। निज क्या है? निज है आत्मा। निज है ज्ञान। निज है दर्शन। तो ज्ञान, दर्शन के द्वारा ही निज का ग्रहण होता है। आत्मा इन्द्रियों के अतीत है। जो भौतिक साधनों के अतीत है। सूक्ष्मदर्शी के द्वारा नहीं देख सकते। लेकिन सूक्ष्म चिन्तवन के द्वारा देख सकते हैं। क्या है? आत्मा है। सूक्ष्मदर्शी यंत्र से नहीं देख सकते हैं। आत्मदर्शी बनकर ही देखा जा सकता है। सूक्ष्मदर्शी के द्वारा पुद्गल के स्कन्ध दिखते हैं। परमाणु भी नहीं देख सकते। आया ध्यान में, स्कन्ध दिखते हैं मेरा आत्मा न तो अणु है न तो स्कन्ध। मेरा आत्मा अणु, स्कन्ध नहीं हैं। अणु, स्कन्ध पुद्गल के भेद हैं।

हे आत्मन्! तुम जो देख रहे हो सूक्ष्मदर्शी से शरीर देख रहे हो। उस शरीर में रहने वाली आत्मा नहीं देख रहे हो। लेकिन शरीर के चलने फिरने से आत्मा का निर्णय हो गया। क्योंकि उसमें इन्द्रियाँ हैं, शरीर में। इन्द्रियाँ आत्मा का बोध कराती हैं। अगर इन्द्रियाँ नहीं होती तो मैं आपको नहीं जान सकता था कि आप कौन है?

''आत्मन: सूक्ष्म अस्तित्त्वं लिंगं इन्द्रियम्''

आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्त्व का ज्ञान कराने वाले चिन्ह को इन्द्रिय कहते हैं। आत्मा को देखिये संसार अवस्थ में आत्माा इन्द्रियों का चिन्तवन क्यों कराती है लेकिन मोक्ष अवस्था में इन्द्रियाँ नहीं हैं। वहाँ अतीन्द्रिय अवस्था है वहाँ आत्मा का परिचय नहीं वहाँ कैवल्य से आत्मा का परिचय होता है। कैवल्य प्रभायें आत्मा का

अवलोकन करती है।

आत्मा को जानने के लिए मुझे पर पदार्थ का सहारा नहीं लेना है। पुस्तक को जानने के लिए, अक्षर को जानने के लिए , शास्त्र लिखे आत्मा को जानने के लिए आप चश्में का, आँख का, प्रकाश का सहारा ले सकते हैं। लेकिन निज आत्मा को जानने के लिये किसका सहारा लेगें। मात्र आँखे बंद करना चश्में की जरूरत भी नहीं पड़ेगी। मात्र ध्यान की आवश्यकता है। एकाग्रता की आवश्यकता है। तल्लीनता की आवश्यकता है। सल्लीनता की आवश्यकता है, लीनता की आवश्यकता है। जितने निज में लीन होंगे। सल्लीन होगे, तल्लीन होगे, उतनी-उतनी आत्मा के करीब होते जायेंगे। ध्यान रखना जब सरोवर साफ होता है गहराई में पड़ी चीज भी साफ दिखाई दे जाती है और सरोवर जब मचल उठता है तो फिर पूरा कचड़ा तैरता दिखाई देता है उसी तरह मेरा मन मचलता तो राग द्वेष का पंक दिखाई देता है और जब मेरा मन साफ हो जाता है तो मेरे अन्तस् में विराजमान जितने गुण हैं वे अनंत रूपी रत्न दिखाई दे जाते हैं।

रत्नाकार जब मचलता है तो सीप भी दिखाई नहीं देता है और जब शांत होता है तो मोती दिखाई देता है। तो मचलने की आवश्यकता नहीं है। चलने की आवश्यकता नहीं। स्व स्वरूप से चलने की आवश्यकता नहीं है और मचलने की आवश्यकता नहीं है। हाँ स्व स्वरूप में निश्छल और अचल होने की आवश्यकता है। जब सरोवर अचल हो गया, शांत हो गया, सौम्य हो गया तो आपने आप सब कुछ दिखता है सारे गुण अपने आप दिख जाते हैं भले गिन पाओ ना गिन पाओ लेकिन दिखते तो लगता है। जैसे सरोवर मे जब लहरें उठती हैं तो पानी बाहर निकल जाता है। जब पानी बाहर निकलता है तो समुद्र में रत्न-रत्न दिखने लगते हैं। उसी तरह जब मोह का कचड़ा बाहर निकल जाता है ज्ञान लहरों के माध्यम से। ये प्रवचन की लहरें, ये ज्ञान की उर्मियाँ हमारे अंदर के मोह के पंक को निकाल फेंकती है। आँख में और समुद्र में कचड़ा ज्यादा देर नहीं रहता है। आँख में कितना ही कचड़ा पहुंचे आँख तत्काल किनारे कर देती है।

अक्ष आत्मा को कहते है। आँख में कहीं भी कचरा पहुँचे तत्काल किनारे पर आ जाएगा उसी तरह आत्मा जो है कचड़े को पसंद नहीं करती। जैसे आँख कचड़े को पसंद नहीं करती है तत्काल बता देगी, लाल हो जाएगी। सबसे पहले यदि शरीर के किसी अंग पर आक्रमण होता हैस तो आँख रक्षा करती है। ध्यान देना यदि कहीं से भी कंकड़ आता दिखे, पत्ता आता दिखे, हवा के झोंखे दिखे तो आप हाथ बंद नहीं करते, पैर बंद नहीं करते, मुख बंद नहीं करते, नाक बंद नहीं करते, सबसे पहले आँख बद होती है, उसी तरह ये आत्मा है। उसी तरह शरीर की सुरक्षा से पहले आत्मा की सुरक्षा अनिवार्य है। अक्ष याने आँख भी होता है। अक्ष याने आत्मा भी होता है। जैसे कचड़ा या हवा आती है तो आप आँख की सुरक्षा करती है उसी तरह संसार में राग द्वेष से आत्मा की सुरक्षा करनी चाहिए। हम शरीर की जितनी सुरक्षा करते हैं उतनी अगर निज आत्मा की करें तो क्या कहना ? जीवन सफल हो जायेगा।

प्रिय आत्मन् !

आप ज्ञान के द्वारा गृहीत हो। कैसे ग्रहित हो

स्वसंवेदन सु व्यक्तम्, तनु मात्रो निरत्ययः।

अत्यन्त सौख्यवान् आत्मा, लोकालोक विलोकनः।।21।।इ.

निज में जितने-जितने तल्लीन हो गये, तो निर्णय होगा, कर्म मैं नहीं हूँ, नो कर्म मैं नहीं हूँ, द्रव्य कर्म मैं नहीं हूँ, भाव कर्म मैं नहीं हूँ। फिर जो शेष बचा वो तुम हो। क्या बचा? भाई जो शेष बचा वो तुम हो। जैसे मैं कहूँ आपका शरीर क्या है? ये चश्मा आप का शरीर नहीं है, ये वस्त्र आपका शरीर नहीं है, वस्त्र चश्मा आदि उतारने के बाद जो शेष बचा, आपका शरीर है, शरीर नो कर्म है।

ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्म हैं। रागद्वेष आदि भावकर्म हैं। जैसे आपने कहा मुकुट को उतार दें! उतार दिया, हार को उतार के रख दिया। स्नान को पहुंचे तो वस्त्र को रख दिया। यह द्रव्य शरीर आपका है। अब ध्यान दीजिये मेरा आत्मा क्या है? तो आत्मा को देखने के लिए द्रव्य कर्म को उतार फेको। कुछ समय के लिए तो पड़ोसी मानो, उतार के फेको और भाव कर्म को उतार दो, नो कर्म को उतार दो और अपने ज्ञान में उतारो ज्ञान से देखो कि मैं नो कर्म नहीं हूँ। 3 शरीर, 6 पर्याप्ति मैं नहीं हूँ। औदारिक शरीर मैं नहीं हूँ। आत्मा शरीर मैं नहीं हूँ। वैक्रियक शरीर देव पर्याय मैं नहीं हूँ। तिर्यच पर्याय कि जितने शरीर हैं वह मैं नहीं हूँ। मनुष्य पर्याय के जितने शरीर हैं वह मैं नहीं हूँ। वैक्रियक, आहारक ये शरीर मैं नहीं हूँ। शरीर, पर्याप्ति, आहार, इन्द्रिय, भाषा, शब्द, शास्त्र, मन ये सब मैं नहीं हूँ। ना तो मैं आहाररूप हूँ, ना मैं शरीर रूप हूँ। शरीररूप क्या है? आहार के पिण्ड से निर्मित एक द्रव्य है। पुद्गल इन्द्रिय मैं नहीं हूँ। इन्द्रिय, श्वासोच्छवास मैं नहीं हूँ। इन्द्रिय भाषा जो बोल रहा हूँ भाषा मैं नहीं हूँ।

प्रिय आत्मन्!

तुम क्या सोच रहे हो? विभव सागर बोल रहे हैं? भाषा विभवसागर नहीं, वाणी विभवसागर नहीं है, वाणी तो पुद्गल है और पुद्गल को तो तुम आत्मा मान रहे हो।

हे आत्मन्! इस पुद्गल का कोई भरोसा नहीं है लेकिन जब तक आत्मा के संबंध से निकल रही है आत्मा के अधीन होकर पुद्गल निकल रहे तब तक ही ये आत्मा का भला करें। ऐसा विचार करना।

वाणी ही जिनवाणी बन जाती हैं जब आत्मा के स्वभाव संबंध से निकलती है यही वाणी जिनवाणी बनती है यही वाणी वीणा और बाण बनती है।

हे आत्मन्! आत्मा से जो तत्त्व निकलता है वह जिनवाणी बन जाता है। वह वाणी वीणा बनती जाती है। ज्ञान के द्वारा ग्राह्य है मेरा आत्मा कर्म से रहित है, नो कर्म से रहित है, भाव कर्म से रहित है, राग से रहित है, द्वेष से रहित है, क्रोध मान, माया, लोभ से रहित है। अब बताओ फिर मैं क्या बचा? आप अपने पास देखना। यदि आपके जेब में 1000रु. हो तो देखो इतने इसको देना, इतने इसको देना इतना-इतना, इसका-इसका चुकना है अंत में मेरा क्या बचा? बोले पर्स मेरा।

मैं अपने आप को देखने की चेष्टा करुँ कि मेरा क्या है? इतना ही बचा नहीं देखता हूँ इसीलिए मे

निरंतर अपने शरीर को ही आत्मा माने बैठा हूँ। इसी को घर कह रहा हूँ इसी को नहला धुला कर इसी की सेवा कर रहा हूँ।

प्रिय आत्मन्!

आप आत्मसेवी बनो आत्मा का सेवन करो। आप लोग दवाईयों का सेवन करते-करते आत्मा का सेवन करना भूल गये। शरीर की सेवा के लिए दवाईयों का सेवन कर रहे हो, लेकिन **आत्मा के सेवन की औषधि क्या है?** स्वाध्याय है। ये आत्मा की दवाई है। आत्मा का सेवन करना है तो आचार्य वैद्य, शिष्य रोगी, स्वाध्याय औषधि है। ये उपदेश औषधि है ऐसी औषधि का सेवन कर रहे हैं। संवेदन करोगे तो आत्मा का वेदन होगा। जैसे कांटा पैर में चुभाओ तो किसका वेदना होगा? कांटो का वेदन होगा।

सुई चुभाओ तो वेदन होगा न, उसी तरह आत्मा के भीतर जाओ तो आत्मा का वेदन हो। निज को, ज्ञान में उतारो तो निज का वेदन होगा। तुम सुई को शरीर में ले गये तो सुई का वेदन किया। बताओ वेदन किसने किया? वेदन करने वाला ही तो आत्मा है। चाहे दु:ख वेदन, चाहे सुख का वेदन हो शरीर नहीं करता है। यदि वेदन शरीर करता तो मुर्दा को भी वेदन होता पर नहीं होता, वेदन करने वाला आत्मा है।

प्रिय आत्मन्!

जिस प्रकार तुम सुई का वेदन संवेदन करते हो उसी तरह ज्ञान का तो संवेदन करो, उसी तरह अपने चारित्र का संवदेन करो, क्यों? जैसे सुई और कांटे का संवेदन करते हो, जिस तरह तुम किसी अपशब्द का संवेदन करते हो उसी तरह माँ जिनवाणी के शब्दों का संवेदन करो। आपके पड़ोसी ने अपशब्द बोल दिया तो उसका संवेदन 24 घंटे चलाता है और 6-6 माह नहीं भूलते क्या कहा था?

प्रिय आत्मन्!

अपशब्द तुम्हें कितना प्यारा है। तुम्हें राह चलते आदमी ने जिसकी कोई कीमत नहीं, जिसकी कीतम 100रु. दिन की भी नहींरा है। ऐसे व्यक्ति ने तुम्हें कुछ बोल दिया, तुम्हें उसके, शब्द याद रहते हैं और तुम्हें भगवान महावीर ने जो शब्द कहे हैं 'तीर्थकर महावीर' ने जो शब्द कहे हैं, वे कुंदकुंद के छंद, ये आचार्य जो तुम्हें सामने बोलते है वो याद नहीं रहते हैं। पाण्डाल से बाहर जाकर हू भूल जाते हैं। दो शब्द उसने बाले दिये, वो याद हैं। यदि अदालत में भी वकील पूछ ले कि भैया क्या बोला था 6 महीने पहले? तो आप 6 माह पहले बोली बात सुना दोगे।

बोलो आत्मन् याद रहता है कि नहीं? जो ग्राह्य है जिन शब्दों के द्वारा आत्मा का ग्रहण हो सकता है उन शब्दों को तुम ग्रहण नहीं करते हो और जिन शब्दों के द्वारा आत्मा का पतन होता है उन शब्दों को ग्रहण कर रहे हो। जो विकल्प पतन के कारण है उन विकल्पों को जानो और छोड़ो।

प्रिय आत्मन्!

जो तुम्हें संसार में गिराते हैं तुम उन्हें ग्रहण करते हो, ऐसा होता कि नहीं? होता है। संसार में जितने भी

जीव हैं यही स्थिति है कि वस्तुत: आत्मकल्याण की बात नहीं सुन पाते हैं। यदि नहीं रख पाते हैं क्योंकि यह बहुत दुर्लभ है।

विरला णिसुणहि तच्चं, विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।

विरला भावहिं तच्चं विरलाणं धारणा होदि।। 2/279 का. अनु.।।

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में आचार्य कार्तिकेय स्वामी लिखते हैं – तत्त्व को सुनने वाले बहुत विरले हैं। मुझे कभी कष्ट नहीं होता है यदि मेरी सभा में कम लोग आयें।

'महावीर स्वामी' का समवशरण 12 किलोमीटर का था आदिनाथ का तो 144 किलोमीटर का था।' महावीर के समवशरणर में 3 लाख श्रावक पहुँच गये। अपने छोटे से पाण्डाल में 1000 लोग बहुत हैं। ये उन से कम पुण्यशाली नहीं ये भी बहुत पुण्यशाली जीव हैं क्योंकि आज धर्म सभा में आये है तो नियम से समवशरण में जाने की पात्रता तो कर ली है। क्या है भाई? यदि ट्रेन आने के पहले आप रिजर्वेशन करा लेते हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि आने वाल ट्रेन में आप बैठ सकते है।

आत्मा कैसा? शरीर प्रमाण है। ऐसा मत मान लेना कि आत्मा बहुत विशाल है। क्या आत्मा वट के वृक्ष के दाने के बराबर है? क्या आत्मा सरसों के बराबर है? ऐसा नहीं है। जितना शरीर है उतना, आत्मा देह प्रमाण है। जितने-जितने में आपका शरीर है, जहाँ-जहाँ पर आपको स्पर्श करने से संवेदन हो जाये। तो समझ लेना कि वहाँ आत्मा है। आपने छुआ संवेदन हुआ। आपको हवा लगी अनुभव हुआ कि हवा चल रही ठंडी-ठंडी। इसका यह अर्थ हुआ कि पूरे शरीर में आत्मा है। इसीलिए पूरे शरीर को संवेदन हुआ। आपने स्नान किया ठंडे जल से, ठंडी लग रही है। क्या है? किसको लग रही है? आत्मा संवेदन कर रही है। बताओ कौन संवेदन कर रहा है। आपके शरीर के ऊपर के बाल संवेदन करते हैं क्या? चाहे ठंडी हो, गर्मी हो संवेदन नहीं कर सकते, आत्मा संवेदन करती है।

प्रिय आत्मन्!

जैसे आत्मा शीत का संवेदन कर रही है उसी तरह तुम ज्ञान का संवेदन करो। यदि आपका बेटा हिन्दी पढ़ रहा है तो आप उससे कहते हो बेटा अब गणित भी पढ़ो। इंग्लिश भी पढ़ो। संस्कृत भी पढ़ो, इंग्लिश मीडियम में भी पढ़ो। क्या-क्या नहीं बोलते। लेकिन बेटे को हिन्दी ज्यादा अच्छी लगती है इसीलिए वो नहीं पढ़ना चाहता है। लेकिन आप कहते हैं नहीं बेटे गणित भी पढ़ो, अंग्रेजी भी पढ़ो।

हे आत्मन्! तुम्हारी आत्मा को स्पर्शन इन्द्रिय का हल्का – भारी, कड़ा-नरम, चिकना-रूखा, ठण्डा-गरम ये तो अच्छा लगता है लेकिन मैं कहता हूँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी पढ़ो। क्या पढ़ो? दर्शन ज्ञान, चारित्र। क्योंकि आत्मा क्या है? दर्शन, ज्ञान चारित्र। अद्वितीय आत्मा है जो दर्शन को प्राप्त करें, जो ज्ञान को प्राप्त करें, जो चारित्र को प्राप्त करे। वह आत्मा जो ठंडे, गरम में लगे रहे तो आत्मा होकर भी अनात्मा है।

कैसी है आत्मा? 'लोकालोक विलाकिन:' यह आत्मा लोकालोक को अवलोकन करने वाला है।

आत्मा जिसको ग्रहण कर लेता, उसको छोड़ता नहीं है। आप जैसा नहीं है कि आज आपने हार पहन लिया अभी जाओगे तो उतार दिया। प्रश्न किया इस सदी में अहिंसा की क्या आवश्यकता है? उत्तर अहिंसा सदी के लिए नहीं है सदा के लिए है। ये शाश्वत सिद्धान्त है, ये कोई वकील का कोट नहीं हैं। किसी अदालत में जाओ तो पहन लेना वापस आओ तो उतार दो यह ऐसा नहीं है ये तो शाश्वत सिद्धान्त है। आत्मा ज्ञान गुणमय है ये कभी नहीं छूटेगा। एक बार जो ग्रहण कर रहे हो वह कभी छूटेगा नहीं। अगृहीत को मैं कभी ग्रहण नहीं करता हूँ और गृहीत को कभी छोड़ता नहीं हूँ।

तुम बाहर से कितना ही बटोर लेना जितनी सम्पत्ति बटोरना हो बटोर लेना लेकिन आत्मा का एक भी प्रदेश उस सम्पत्ति का स्पर्श नहीं करेगा क्योंकि अगृहीत है। आत्मा के लिए और गृहीत जो ज्ञान, दर्शन आत्मा ने ग्रहण किया उसको तीन काल में आत्मा छोड़ेगा नहीं। यानि पर को आत्मा कभी ग्रहण नहीं करता है। मेरा आत्मा, जब परको लेता ही नहीं है तो मैं क्यों लूँ, मैं आत्मा ही तो हूँ। जब मैं पर को स्वीकार करता नहीं हूँ तो मैं पर का संग्रह क्यों करूँ। हमारी ये मातायें बहुत होशियार हैं। उनको यह मालूम चल गया कि महाराज मीठा नहीं लेते। जब महाराज मीठा नहीं लेते तो बनाती नहीं। जितनी आप इसमें चतुराई दिखाते हो, इतनी आत्मा के साथ दिखा दो। जब आत्मा क्रोध, मान, माया, लोभ को ग्रहण नहीं करता तो क्यों करते हो। क्रोध, मान, माया, लोभ। जरा सी बात है समझने की, जब महाराज मीठा नहीं लेते तो मीठा नहीं बनाना, महाराज बेसन नहीं लेते तो बेसन नहीं बनाना।

प्रिय आत्मन्!

यही तो मैं आप से कह रहा था कि जो (अक्षर) महाराज नहीं लेते तो वह आप नहीं बनाते है। आत्मा कौन सा असन नहीं लेती, क्रोध असन आत्मा नहीं लेते है। राग, द्वेष, विकार, परिग्रह, असत्य ये सब आत्मा के असन नहीं है। जो आत्मा न ले वो नहीं बनाना। ये कला आ गई तो तुम सच्चे रसोईयाँ बन जाओगे। सच्चा पाक बनाने वाले बन जाओगे।

रोटी कहती है कि भैया ऐसे रोटी बनाओ जो रत्नत्रय धारण कराये। रटते जाए, रटते जाए का क्या मतलब है? तुमने दस धर्म तो सुन लिया अब रत्नत्रय को बनाओ तो रत्नत्रय ही सबसे बड़ा है। जो ग्रहण कर लिया उसको छोड़ता नहीं है आत्मा। ऐसा मत सोच लेना कि सिद्ध भगवान केवलज्ञान को छोड़कर आ जाएगे? नहीं। एक बार तो प्राप्त कर लो, कभी नहीं छूटेगा। जो तुम्हारा है नहीं, वो पा नहीं सकते हो। लाख प्रयास कर लेना, करोड़ प्रयत्न कर लेना। उसे तुम देख लो, लेकिन वह मिलेगा नहीं। और जो तुम्हारा है, उसे तुमसे कोई छीन सकता नहीं, तो फिर मुझे भय किस बात का? डर किसका? शंका किसकी? खेद किसका? भगवान अस्त्र-शस्त्र नहीं रखते। क्योंकि याद है कि मेरा मुझसे कोई छीन नहीं सकता। मेरे आत्मा के अनन्त गुण है वे सदैव मेरे पास रहते हैं।

प्रिय आत्मन्!

तो इतना ध्यान रखो कि जो मेरा वह मैं लेकर रहूँगा, जो मेरा वह मैं लेकर रहूंगा। वह मुझे नहीं छोड़ना

है, मेरी सम्पत्ति पर मेरा अधिकार है।

बाहुबली कहते हैं मेरे पिता ने जो दियाा है वह मेरा है। उसे मैं नहीं छोडूँगा और भरत तुम्हें अयोध्या मिली है सो तुम अयोध्या का राज करो। उसी तरह अपने शरीर से कहना कि हे शरीर तू इंद्रियों तक सीमित रह। और आत्मा का राज्य है ज्ञान, दर्शन हे आत्मन्! तू अपने ज्ञान दर्शन में राज्य कर।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

मोक्ष मार्ग क्या हैं ?

''मोक्षशास्त्र'' शास्त्र और मोक्ष ये दो ही चीजें हैं, हम तो संसारी हैं, तो संसार हमको चाहिए नहीं। तो हमारे पास क्या नहीं ? मोक्ष नहीं हैं, तो हमें क्या चाहिए ? मोक्ष चाहिए ? मोक्ष के जो इच्छुक हैं, उन्हें कहते हैं- **मुमुक्षु,** और जो मोक्ष को चाहने वाले जीव हैं, वह आचार्य महाराज के पास पहुँचे। हे प्रभु ! सुख कहाँ है ? मोक्ष कहाँ है ? मोक्ष मार्ग के बाद मिलता है। बोले मोक्ष का मार्ग क्या है ? सुख कहाँ है ? इससे ही मोक्षशास्त्र की रचना हुई।

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ।।त.सू.म.।।

जो मोक्षमार्ग के नेता हैं,जो कर्मरुपी पर्वत का भेदन करने वाले हैं। तीसरी बात ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां- जो तत्त्वों के ज्ञाता हैं। चौथी बात ''वंदे तद्गुणलब्धये'' उनके गुणों की मैं वंदना करता हूँ- क्यों करता हूँ ?उन जैसे गुणों की प्राप्ति के लिए । अब देखिए मोक्षमार्ग के नेता,नेतृत्व करने वाले,उपदेश देने वाले, जो नेता होता है, वह उपदेश देता है।

''नयति इति नेता'' जो ले जाता है, उसे नेता कहते हैं। जो मोक्षमार्ग पर ले जाते हैं। जो अरहंत भगवान बैठे हैं उन्होंने क्या किया ? दिव्य देशना दी, तो अनंत जीव मोक्षमार्ग पर चल दिए। जो हितोपदेशी है वे नेता हैं। कर्मरुपी पर्वतों का भेदने वाले हैं। अरिहंत भगवान् कैसे है ? अठारह दोषों से रहित हैं। ''कर्म भूभृताम्'' जो शब्द है वह अठारह दोषों को नष्ट करने वाला बताया है। ''ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां'' यह किसका विशेषण है ? ज्ञाता का। ऐसे जो विश्व तत्त्व के ज्ञाता हैं। '' वंदे तद्गुण लब्धये'', उनके समान गुणों को पाने के लिये मैं वंदना करता हूँ।

मग्गो मग्गफलं ति य, दुविहं जिणसाणे समक्खादं ।

मग्गो मोक्खउवाओ, तस्स फलं होइ णिव्वाणं ।।2 नियमसार ।।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने - नियम सारजी में कहा है कि मार्ग और मार्ग का फल ये दो ही बातें जैन में सार रुप से हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र ये तीन तो मार्ग हैं और निर्वाण मोक्षफल हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में उमास्वामी लिख रहे हैं-

''सर्म्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः''।।1।। त.सू.

सम्यग्दर्शन् ज्ञान चारित्र की जो एकता है वही मोक्षमार्ग है। अकेले सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग नहीं है? सम्यग्ज्ञान व अकेला चारित्र भी मोक्ष का मार्ग नहीं है। सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन भी मोक्ष का मार्ग नहीं हैं।जहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की एकता होती है, वही मोक्षमार्ग है। इसका उदाहरण यह है कि हम शर्बत बनाते हैं,उसमें हम पानी भी डालते हैं, शक्कर भी डालते हैं ,नींबू भी डालते हैं। नींबू अकेला घोल दिया या अकेले शक्कर भी डाल दी तो शर्बत नहीं होगा,बिन पानी के शर्बत नहीं होगा। नींबू, शक्कर से भी शरबत नहीं होगा।नींबू,पानी, शक्कर तीनों की एकता ही शरबत बनाएगी, उसी तरह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता से ही मोक्ष मार्ग बनता है।

सम्यग्दर्शन तो चौथे गुणस्थान में हो गया। सम्यग्ज्ञान भी हो गया। सम्यक्चारित्र नहीं हुआ, तो क्या मोक्ष का मार्ग हो गया? महाराज से पूँछेंगे –कि चारित्र क्या है? कितने भेद हैं? वे कहेंगे पाँच भेद हैं। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात। अब देखिए चौथे गुणस्थान में सामायिक है क्या? छेदोपस्थापन है क्या? परिहारविशुद्धि है क्या? नहीं है। सामायिक सप्तम् गुणस्थान में है, छेदोपस्थापन षष्टम् गुणस्थान में और यहाँ चौथे में क्या है?

चारित्र नहीं हैं,क्यों?, क्योंकि बारह प्रकार की अविरति होती है। छः प्रकार के जीवो का घात भी हो रहा है, पांच इन्द्रिय एवं मन के विषय का वशीकरण भी नहीं हैं। इसलिए चारित्र नहीं है। इसलिए हम संसार में रह रहे हैं। मोक्षमार्गी बने नहीं हैं। सम्यग्दर्शन मिल गया है। लेकिन चारित्र नहीं मिला। इस बात का ध्यान देना जो चौथे गुणस्थान में है वह मोक्षमार्ग का अनुकरण करता हैं जिसमें मोक्षमार्ग की भावना है, वह मोक्षमार्गी नहीं हुआ। अनंतानुबंधी कषाय, जो समाप्त हुई है, उपशम व क्षयोपशम को जो प्राप्त हुई हैं उसके मात्र सम्यक्त्वाचार रुप जो स्थिति है, आचरण की अवस्था बन गई, लेकिन सामायिक की अवस्था नहीं बनी है। टोडरमल जी से पूँछा- मेंढक भी मोक्षमार्गी है क्या?बोले हो सकता है बाद में, जब वह रत्नत्रय को धारण करेगा

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

सम्यग्दर्शन

आज सम्यग्दर्शन पर सम्यक् प्रशस्त, सम्यक् समीचीन, सम्यक् श्रेष्ठ, सम्यक् यथार्थ, सम्यक् वास्तविक, सम्यक् शुभ, दर्शन यहाँ पर देखने अर्थ में नहीं है, दर्शन यहाँ पर किसके अर्थ में है? श्रद्धा के अर्थ में हैं। यथार्थ श्रद्धा, यथार्थ रुचि, यथार्थ प्रतीति, यथार्थ विश्वास का नाम है सम्यक् दर्शन। अब सम्यक् दर्शन का विषय अच्छी गम्भीरता से समझना फिर हम आपको ज्ञान और चारित्र पर ले जाएँगे। सम्यग्दर्शन- मोक्ष रुपी वृक्ष की जड़, यह सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की पहली सीढ़ी है, सम्यग्दर्शन मोक्ष वृक्ष का बीज है, यह सम्यग्दर्शन रत्नों में परम रत्न है, यह सम्यग्दर्शन जीवन का सार है, यह सम्यग्दर्शन परम निधि है, यह सम्यग्दर्शन ही कल्पद्रुम है, यह सम्यग्दर्शन ही चिंतामणी रत्न है, यह सम्यग्दर्शन ही कामधेनु है, यह सम्यग्दर्शन ही केवलदर्शन और केवलज्ञान का बीज है, यह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष प्रदान कराने वाला है। यह सम्यग्दर्शन शरीर में नहीं होता, यह सम्यग्दर्शन निज आत्मा में होता है, इस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ही मानव जीवन की सर्वात्तम प्राप्ति है। मानवीय जीवन की कोई उपलब्धि है तो मात्र एक सम्यग्दर्शन के पाने में हैं। हे प्रभु! कैसे प्राप्त हो ? मैंने अनतों वार सुना है या मैंने जब से जन्म लिया तब से संतों के उपदेश का सुना है, जिनवाणी के पत्र पलटे हैं जब से कानों मे जिनवाणी सुनी है, जब से सम्यक्त्व महिमा सुनते आया हूँ।

हे प्रभु! सम्यग्दर्शन को विस्तार से समझाईए ?

प्रिय आत्मन्! सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं।

कर्मों के उपशम,क्षय,क्षयोपशम के निमित्त से सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं।

उपशम सम्यग्दर्शन-जो सात प्रकृतियों (1 मिथ्यात्व 2. सम्यक्त्व 3. मिथ्यात्व-सम्यक्त्व 4.अनंतानुबंधी 5.मान 6.माया 7. लोभ) के उपशम से होता है। यह सम्यग्दर्शन एक अन्तर्मुहर्त के बाद नियम से छूट जाता है। अर्थात् अस्थायी नौकरी के सदृश है जो कुछ समय बाद छूट जाती है।

यह औपशमिक सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग का उद्घाटन करता है। जैसे आप लौकिक क्षेत्र में दुकान, मकान, फैक्टरी वगैरह आदि का उद्घाटन करते हैं तो पहले फीते को काटते हैं। ठीक इसी प्रकार दर्शन मोह का फीता काटकर यह प्रथमोशम सम्यक्त्व भी मोक्ष्ज्ञमार्ग का उद्घाटन करता है। अर्थात् सर्वप्रथम प्रथमोशम सम्यग्दर्शन होता है। फिर क्षायोपशमिक, क्षायिक।

क्षायिक सम्यग्दर्शन-उपर्युक्त सात प्रकृतियों के क्षय से होता है और होने के बाद छूटता नहीं है सदा बना रहता है। स्थायी नौकरी के सदृश टिकाऊ है।

क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन- मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व,अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन छः प्रकृतियों में वर्तमान में उदित होने वाले निषेकों का उदयाभावी क्षय और आगामी काल में उदय में आने वाले उन्हीं निवेकों की सद् अवस्था रुप उपशम और सम्यक्त्व प्रकृति के उदय आने क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता हैं

जैसे राम के दो पुत्र थे- अनंगलवण,और लवणांकुश। इतने नाम को न लेकर जैसे संक्षेप में अनंगलवण में लव और लवणांकुश में से कुश लेकर लवकुश नाम प्रचलित हैं। उसी प्रकार क्षयोपशम शब्द संक्षेप हैं इसमें उदयाभावी क्षय का क्षय और सद्अवस्था रुप उपशम का उपशम और दोनों को मिला देने से क्षयोपशम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। यह जीव देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति का वेदन भी करता है अतः इसे ही वेदन की अपेक्षा वेदक सम्यक्त्व भी कहा है। यह चारों गतियों के जीवों को होता है अधिकतम 66 सागर काल स्थिर रह सकता है सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में क्या होता है? चलदोष, मलदोष और अवगाढ दोष। यह तीन दोष उत्पन्न होते है इसी तरह चलदोष होता है। मलदोष क्या है? जिसमें किंचित मल पैदा होता रहता है, वह मल दोष ।अवगाढ़ दोष अडिग रहता है। इसमें क्या होता है? इस दोष में एक के प्रति विशेष लगाव होता है, एक के प्रति कम होता है। तो ये क्या है? अवगाढ़ दोष।

इन दोषों में जैसे-शांतिनाथ प्रभु ही शांति देंगे। क्या है? अवगाढ़ दोष। वस्तुतः हे आत्मन् ! चौबीसों तीर्थंकर तेरे लिए शांति का कारण हैं, तू चौबीसों में से किसी को भी भजेगा तो शांति मिलेगी लेकिन किसी की कुण्डलपुर पर आस्था विशेष है, तो किसी की पटेरिया जी पर आस्था विशेष है, तो किसी की सांवलिया पर आस्था विशेष है,तो किसी की गोम्मटेश्वर पर आस्था विशेष है। चलो जिसका जिससे काम चले चलाओ। सम्यक् प्रकृति है कुछ तो होगा लेकिन उस कुछ से तुम्हें हानि नहीं होगी । क्या नहीं होगी? क्या नहीं है यानि तुम्हारा कोई ऐसा दोष नहीं है, जो मिथ्यात्व में पटक दे।

इस तरह से प्रकृति है तो दोष होगा । 3 नाड़ी में से कोई न कोई 1 नाड़ी तो चलेगी। या तो आपकी चल की, चाहे मल की, चाहे अवगाढ़ की। ये तीन दोष ऐसे है। कि वो तो चलेंगे ही उनमें कोई हानि नहीं।

सर्म्यदर्शन के तीन भेद समझ लिये अब दो भेद और देखिए। निसर्गज सम्यग्दर्शन, अधिगमज सम्यग्दर्शन। निसर्ग- यानि स्वभाव से जो हो जाए निसर्गज सम्यग्दर्शन। तो महाराज श्री जब निसर्गज सम्यग्दर्शन स्वभाव से होता है, तो यह निमित्त तो कुछ करता नहीं है। हमने सुबह कहा था, कि निमित्त कुछ करता है लेकिन आप निसर्गज सम्यग्दर्शन कह रहे है कि यहाँ निमित्त कुछ कर नहीं रहा। आचार्य कहते हैं- **किंचिद् स्वस्मात् जायते नहि** अपने आप कोई उत्पन्न नहीं होता , क्या? सूत्र है कोई भी वस्तु अपने आप उत्पन्न नहीं होती तो निसर्गज सम्यग्दर्शन अपने आप कैसे हुआ।

प्रिय आत्मन्!

निसर्गज सम्यग्दर्शन ऐसे उत्पन्न हुआ, जैसे तुमने वर्षा के पहले खेत में बीज छोड़ दिए थे। फसल काटते समय कुछ बीज उठा नहीं पाए आप। जिस समय फसल काटी उस समय खेत में कुछ बीज पड़े रहे

और बरसात में पानी मिला तो बीज अपने आप अंकुरित हो जाते है। उसी तरह से ये पूर्व में जो हमने देशना सुनी, हमने प्रवचन सुने और उपदेश सुने , वे बीज हमारे खेत में पड़ गए, कितना ही भूल जाना ध्यान रखना- महाराज श्री! हमको याद तो होता नहीं है आप इतना उपदेश देते हैं हम सब भूल जाते हैं, भैया! ध्यान रख लेना खेत में फसल खड़ी हुई है, कितनी फसल कटके चली लेकिन फिर भी कुछ बीज उसमें ऐसे पड़ जाते है कि वे पुनः अपने आप उग आते हैं। उसी तरह से निसर्गज सम्यग्दर्शन ऐसा ही होता है कि पूर्व के संस्कार बस जो देशना आदि के बीज पड़ गये थे। उस निमित्त से सम्यग्दर्शन हो जाता है यही निसर्गज सम्यग्दर्शन है।

प्रिय आत्मन्!

उसी तरह से ये कारण हैं, आज की देशना आपके लिए अरबों खरबों वर्षो के बाद भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दे सकती है। अखरोट के बीज बोते हैं तो तत्काल नहीं फलता है। कम से कम 10 साल के बाद तो उगता है और 100 साल के बाद फलता है इसलिए तो अखरोट इतना महंगा रहता है। जो बोता है, वह खाता नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

इस तरह आज जो उपदेश हुआ हैश इस उपदेश के संस्कार इतने भीतर पहुँच जाते हैं, जैसे आप सी. डी. में विषय डालते हो, डालने के बाद यहाँ से ले जाते हैं। दिल्ली, जयपुर, भोपाल, इंदौर कहीं भी प्रिंट करा लेते हैं। अब प्रिंट क्या होगा ? जो आपने यहाँ नोट किया है, वह प्रिंट होगा, उसी तरह से मेरी आत्मा पर इस भव में जो संस्कार हम देते है।, वे ही संस्कार परभव में उदय में जाते है। जो मैं इस भव में आत्मा की सी.डी. में डाल करके लाया था मैंने उसे मनुष्य भव में खोल दिया, क्या कर दिया? खोल दिया। ये शरीर तो आपका कम्प्यूटर है। इस आत्मा रुपी सी.डी. में आप जितना विषय रिकॉर्ड कर रहे है, डाल रहे है, जितना आपने डाल दिया है, जैसा भी डाला है। जिस समय टाइप करते हैं, उस समय सुविधा विशेष रहती है यदि गलत हो गया है,तो उसका सुधार कर देते हैं तत्काल, विशेष सुविधा है।

लेकिन कम्प्यूटर से विषय निकल गया और सी.डी. में आ गया। पहले तो एक ही गलती थी। आज न्यूज पेपर मान लीजिए टाइप हो रहा है और टाइप को तत्काल सुधार दो तो जाएगा लेकिन रात्रि के 12 बजे से प्रिटिंग शुरु हो जाएगी, अब प्रिटिंग शुरु होने के बाद , क्या होगा? जो एक गलती लिखी थीं जैसे मानके चलिए परमानन्द लिखना था और लिख दिया परानंद। अब क्या हो गया ? एक गलती लिखी थी और कितने पेपर छप गए लाखों, तो गलती कितनी हो जाती है? फिर इस तरह से हम एक गलती करते हैं और उसके फल में लाखो उदय में आती हैं

हम एक भूल करते हैं, उदय में लाखों आती है। ऐसे ही कर्म बढ़ते है। जैसे-पहले एक अक्षर टाइप किया, उस एक अक्षर के लाखों अक्षर प्रिंट होकर आते हैं उसी तरह से हमारे कर्म, उदय में इसी तरह से आते हैं, हम ध्यान न दें तो । इसलिए तत्काल की भूल तत्काल सुधारने के लिए हमें आलोचना सिखाई है, सुबह का मेटर रखा हुआ है आप प्रुफ चेक कर लीजिए, कोई गलती है तो सुधार लीजिए, इसका नाम है प्रतिक्रमण।

चलिए कोई बात नहीं, जो प्रिंट हो चुका है, वह तो हो ही चुका है लेकिन अगली पुस्तक में गलती न हो , इसलिए उस पुस्तक का करेक्शन कर लीजिए, इसका नाम है प्रत्याख्यान। यानि भूतकाल की गलती को सुधारने का नाम हैं प्रतिक्रमणं भविष्य में गलती न हो इसका नाम है प्रत्याख्यान और वर्तमान में तत्काल के तत्काल भूल सुधारने का नाम है आलोचना। ठीक है इस तरह से सम्यग्दर्शन में एक स्थिति चल रही है, कि निसर्गज सम्यग्दर्शन में हम क्या करते हैं? ये स्वभाव से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है तो स्वभाव में भी निमित्त क्या बना है? पूर्व समय की देशना, पूर्व समय के प्रवचन, पूर्व समय का हितोपदेश उसमें देशना लब्धि पहले से पड़ी है, क्षयोपशम लब्धि पहले से पड़ी है देशना प्रायोग्य और ये सारी लब्धियां उसने पहले से प्राप्त कर ली हैं, या देशना प्राप्त कर ली है,तो वह पड़ा हुआ है, इस तरह से वह बाद में उदय में आता है।

भैया! पिताजी बैठे हैं, ध्यान दो – आपके दो बेटे, एक बेटे को आप ट्यूशन पढ़ाते हैं और एक बेटे को ट्यूशन नहीं पढ़ाते हैं, तो जो एक बेटा इतना होशियार है, कि स्कूल में अच्छे से पढ़ लेता है ट्यूशन की क्या आवश्यकता ? एक बेटा ऐसा है जिसको ट्यूशन की भी आवश्यकता है और स्कूल की पढ़ाई की भी आवश्यकता है।

तो निसर्गज सम्यक्दर्शन ऐसा है, कि पूर्व भव यानि स्कूल की पढ़ाई ही, उसके लिए काफी हैं यानि पूर्व भव का जो संस्कार है, वहीं श्रेष्ठ है। लेकिन जो अधिगमज है, उसे पर का उपदेश भी चाहिए और स्व का चिंतन मनन भी चाहिए। तो ये अधिगमज सम्यग्दर्शन पर के उपदेश पूर्वक उत्पन्न होता है अधिगम यानि ज्ञान। पर के ज्ञान से नहीं, पर ने जो उपदेश दिया है उससे यदि हम निमित्त को कुछ न मानेगें,तो अधिगमज सम्यग्दर्शन नहीं मानना पड़ेगा। अधिगमज सम्यग्दर्शन होगा तो आत्मा में, लेकिन किसको होगा? जो परोपदेश पूर्वक होता है उसका नाम है अधिगमज सम्यग्दर्शन। आ गया समझ में। अब देखिए, हमने अभी तक दो प्रकार के सम्यग्दर्शन देख लिए। इसी तरह अन्य प्रकार के सम्यग्दर्शन के दस भेद भी होते है

सम्यक्त्व के दस भेद

अन्य निमित्तादि अपेक्षा सम्यक्त्व के १० भेद है

(१) **आज्ञा सम्यक्त्व** – वीतराग जिनेंद्र भगवान की आज्ञा से जो तत्त्व श्रद्धान होता है।

(२) **मार्ग सम्यक्त्व** – निर्ग्रन्थ मुद्रा को देखकर जो तत्त्व श्रद्धान होता है।

(३) **उपदेश सम्यक्त्व** – जो प्रथमानुयोग के स्वाध्याय से उत्पन्न होता है।

(४) **सूत्र सम्यक्त्व** – चरणानुयोग के शास्त्रों के श्रवण से उत्पन्न होता है।

(५) **विस्तार सम्यक्त्व** – द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ से उत्पन्न होता है तत्व के विस्तृत विवेचन के श्रवण होता है।

(६) **बीज सम्यक्त्व** – करणानुयोग के शास्त्रों के श्रवण से उत्पन्न होता है।

(७) **संक्षेप सम्यक्त्व** –द्रव्यानुयोग के शास्त्रों के श्रवण से उत्पन्न होता है। तत्त्व के संक्षेप में विवेचन के श्रवण होता है।

(८) **अर्थ सम्यक्त्व** – अर्थ के ग्रहण से कि छिलका अलग है और केला अलग है

(९) **अवगाढ़ सम्यक्त्व** – श्रुतकेवली का सम्यक्त्व ।

(१०)**परमावगाढ़ सम्यक्त्व** – केवल ज्ञानी का सम्यग्दर्शन।

प्रारंभ में आठ भेदों में कारण की अपेक्षा सम्यक्त्व में अंतर कहा जैसे महावीर जी से विशुद्धि बनी तो महावीर जी का सम्यक्त्व कहेगें और श्री सम्मेद शिखरजी से विशुद्धि बनी तो सम्मेदशिखरजी का सम्यक्त्व कहा जाएगा।

उक्त अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दश भेद भी होते हैं।

जिसमें आज्ञा सम्यग्दर्शन के क्या है–

सूक्ष्मं जिनोदिंत तत्त्वं, हेतुभिर्नेव हन्यते ।

आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिना:।।5 आलाप पद्धति।।

जिनेन्द्र भगवान ने तत्त्व सूक्ष्म कहा है। परमाणु होते हैं, बताओ, दिखाओं कहाँ है? बताओ सुमेरु होता है, किसने देखा? नन्दीश्वर किसने देखा? पंचमेरु किसने देखा? 24 तीर्थंकर किसने देखे? नहीं देखे । जो नहीं होते क्या? लेकिन हेतु से इसकी हानि तो नही हो रही है। यदि ये कहते कि आग ठंडी होती है, तो हेतु से हानि होती । सूरज अंधेरा देता है, हेतु से हानि होती । लेकिन जिनके वचन में हेतुओं से हानि न पहुँचे । सूक्ष्म तत्त्व है, हेतु से हानि नहीं आ रही है। उनके वचन आज्ञा सिद्ध है? जिनेन्द्र भगवान रागी द्वेषी नहीं होने से अन्यथावादी नहीं है, तो ये आज्ञा सिद्धवचन हैं, आज्ञा सम्यग्दर्शन है।

प्रिय आत्मन्!

आपको तो आचार्य कह रहे हैं आज्ञा मात्र स्वीकार करने से सम्यग्दर्शन होता है। आचार्य महाराज ने कहा– कि गुरु के नियोग से यदि शिष्य सम्यक् बात का भी श्रद्धान करे, तो सद्दृष्टि है तब तक जब तक कि शास्त्र उसके सामने न आये, यानि आचार्य ये कहना चाहते है कि गुरु उपदेश कि ये महिमा है, कि तुम्हारा सम्यग्दर्शन नष्ट नहीं कर रही है, सम्यग्दर्शन दे रहे है **''अजाण माणो गुरु णियोगा''** ऐसा और देखिए आगे आज्ञा सम्यग्दर्शन ये विषय आपका चलता है अब सम्यग्दर्शन को चार प्रकार से देखिएं कैसे देखना है प्रथमानुयोग सम्यग्दर्शन, करणानुयोग सम्यग्दर्शन,चरणानुयोग सम्यग्दर्शन, द्रव्यानुयोग सम्यग्दर्शन, प्रथमानुयोग से सम्यग्दर्शन क्या है? देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान करना प्रथमानुयोग सम्यग्दर्शन है। देव क्या है? 18 दोष आदि से रहित वीतराग देव अलंकरणादि से निर्ग्रन्थ दिगम्बर अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र से रहित जो जिन प्रतिमा है उसका श्रद्धान और शास्त्र क्या है अरिहंत वचनों गुंथित, आर्ष आगम प्रणीत आचार्यों द्वारा रचित जो शास्त्र है दुष्पथ का गलन कराने वाले, सुपथ के प्रकाशक जिन वचन का नाम शास्त्र है गुरु कौन है? **विषय कषाय से रहित आरंभ परिग्रह से रहित पंच महाव्रत पालक गुरु कहलाते हैं** ऐसे देव, शास्त्र गुरु का श्रद्धान सम्यग्दर्शन हैं तीर्थंकर 24 होते हैं, परमेष्ठी 5 होते हैं, तत्त्व 7 होते हैं द्रव्य 6 होते हैं, अस्तिकाय 5 होते

हैं, पदार्थ 9 होते हैं, व्रत 5 होते हैं, पाप 5 होते हैं। ये सब श्रद्धान आपका प्रथमानुयोग में आ गया।

करणानुयोग का सम्यग्दर्शन क्या है? **सत्तहणं उक्समणं** सात प्रकृतियों का उपशम- औपशमिक सम्यग्दर्शन। अपने परिणाम में कषाय की शांति होने का नाम है, सम्यग्दर्शन। यदि हमारी कषायें शांत नही हो रही हैं , तो समझ के चलिए कि सम्यग्दर्शन से अभी हम दूर हैं। सम्यग्दृष्टि की पहचान क्या है? हम कैसे पहचाने कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ? पर कि पहचान नहीं करना क्योंकि तुम्हारे अंदर यदि पर की पहचान करने की भावना जागी, तो हमारे अंदर में क्या होता है? हम द्वेष वश जानेंगे, जब हमारी आँखे लाल होगी, तो फूल भी लाल इसलिए तुम पर को पहचान नहीं पाओगे। अपनी पहचान के लिए चार स्तंभ है। प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकंपा इन चार खंभों के ऊपर क्या होता है? सम्यग्दर्शन की चादर बिछती है,सम्यग्दर्शन की चादर जो बिछती है, वह प्रशम, संवेग, अनुकंपा आस्तिक्य की है प्रशम क्या है? कषायों का शमन। संवेग क्या है?- **धम्मफलम्मिहरसो भावो होई संवेगां** धर्म और धर्म के फल में हर्ष, खुशी, प्रसन्नता। आज सब लोग बोले- महाराज श्री! क्या रविवार का दिन बच्चों का था? मैंने कहा हाँ। बोले महाराज श्री ! क्या रविवार का दिन बच्चों के लिए रखा था आपने, तो मैंने कहा- तो आपका क्या है ?

हर्ष हो गया, खुशी हो गई,देखकर के महाराज का पड़गाहन । कोई विधि बन गई, सब बच्चों की प्रसन्नता को देखा बच्चों से पड़ग गए, संवेग भाव क्या है? संवेग भाव यही तो है। धर्म और धर्म के फल को देखकर हर्षित होना संवेग भाव है। धर्म को देखकर के, धर्मात्मा को देखकर के, धर्म के फल को देखकर के, प्रसन्न हो जाना, ऐसा नहीं चलो बच्चो बाहर भागो, बेचारे छोटे- छोटे बालक वैय्यावृत्ति के लिए आते हैं ये बड़े-बड़े लोग उनको चलो-चलो, भागो-भागो , अरे! भैया उनको क्यों भगाते हो, जब तुम भाग जाओगे तो कौन करेगा वैय्यावृति ये जरा विचार तो करो , इन्हीं बच्चों को तो सम्हाल के रखना है। तुम्हारी आजादी जो तुम लेकर के आए हो, ये उन्ही के ऊपर तो है चंदगुप्त का स्वप्न है कि बच्चों से धर्म का रथ चलना है, इसलिए उनको आगे बढ़ाना चाहिए। महाराज! जानते नहीं है चंदन की जगह फल चढ़ाएँ इससे कोई प्रयोजन नहीं है, कम से कम उसके अंतस् के भाव को देखो, कितने भाव निर्मल बने हैं, कि कम से कम आज आ तो गया। तुमसे पुण्यात्मा है कि तुमने इस उम्र में कभी किसी संत को नहीं देखा, समझे। आज तो वो पुण्यात्मा है कि उसे छोटी सी उम्र में दिगम्बर साधु का दर्शन हो रहा है इस सदी का पुण्य हे, जब हम इतने छोटे होंगे, तो शायद आपने जिनवाणी का स्पर्श नहीं किया होगा? लेकिन आज छोटे से बालक को स्पर्श करने का सौभाग्य मिल रहा है।

द्रव्य क्या चढ़ाई प्रयोजन नहीं है, भाव क्या है उसके अंदर में ? अहो कितने अच्छे भाव पल रहे हैं, आज के यही संस्कार उसे भगवान बनायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

मैं मुक्तागिरि में था। एक माता बोली- महाराज श्री मेरे बेटे के सिर पर पिच्छी लगा दो, मैंने कहा- क्यों? वो बोली मेरा बेटा शैतान है, मैंने कहा, अम्मा जी अपने बेटे को मेरे पीछे लगा दो, उसके अंदर भगवान है। संवेग भाव में खुशी होना चाहिए, प्रसन्नता होनी चाहिए। एक भैय्या को मैं चार- पांच दिन से देख रहा हूँ, वो रोज पुरस्कार लेकर आ जाते हैं, उपहार लेके आ जाते हैं। प्रश्नमंच चल रहा है, ये है? संवेग भाव है।

सम्यग्दर्शन का गुण हे कि कोई ज्ञान पा रहा है प्रेरणा पा करके जब से प्रश्नमंच शुरु हुआ, कुछ श्रोता ऐसे हो गए एक शब्द न चूक जाए बीच में बिल्कुल, शांति ऐसी होती है, कि सुई गिर जाए और आवाज आ जाए, शांति से सुनते है, लिखते हैं, बार-बार चिंतन रखते हैं, सुनते हैं, कहीं पहला प्रश्न चूक जाए । तो यह क्या हुआ, आपके निमित्त से सौ श्रौता, दो सौ श्रौता,पांच सौ श्रौता प्रवचन ध्यान से सुनते है? उन श्रोताओं का छठवाँ अंश मिल रहा है पुरस्कार देने वाले को। क्या मिल रहा है? कितना अंश? कम से कम छठवां अंश मिल रहा है। जिसके निमित्त से आपने एकाग्रतापूर्वक सुना, कितना उपहार मिला। संवेग संसार से भय, ये संवेग की दूसरी परिभाषा है- संसार से डरो, पाप से डरो,मुझसे कोई पाप न हो जाए, मुझ से कोई अविनय न हो जाए, मुझसे अवज्ञा न हो महाराज हमको तो आपके पास बैठकर कोई डर नहीं लगता। हम कहते हैं भैय्या! आप अपनी जानो। ऐसा नहीं कि अग्नि के पास बैठो और डरो न, करंट के पास बैठो और डरो न भाई इसका विवेक तो पूरा करो। पूरी सावधानी रखते है, कि जो जितने ज्ञानी होते है, वे उसका उतना ही विवेक रखते हैं अंजान व्यक्ति को भले कुछ हो जाए, पर वे जो इसके ज्ञाता होगें, वे तो बिना इसका प्रयोग किये नहीं रहेंगे।

वो बोली मैं तो बहुत डरती हूँ, भैय्या! जितना डरो उतना ही विनय रहती है। भैय्या जितनी विनय रहती है, उतनी ही विद्या आती है इसलिए सदा डरना चाहिए। गुरुजनों से जब तक तुम्हारे अंदर डर रहेगा , तभी तक उन्नती का द्वार खुला रहेगा। साधु से डरना, गुरु से डरना चाबी है उन्नती की। क्या? उन्नती की चाबी। प्रगती की चाबी है। मोक्ष के द्वार की चाबी है- डर। लेकिन किससे? संसार से डरो, कषाय से डरो, पाप से डरो,इस डर का तात्पर्य यह नहीं है, कि गुरु के पास न जाओ विनय, विवेक, मर्यादा, शिष्टाचार,श्रद्धा, रुचि,प्रतीति, विश्वास को लेकर जाओ। संसार भीरुता- संसार से डरो। भैय्या आपके घर कोई अतिथि आए, आप दरवाजा खोल दे । भैय्या! ये बहुत अच्छा हमारा कमरा है अभी नया मकान बना था, दीवाली पर बहुत अच्छी पुताई बगरैह सब कर दिया है। इस पर बढिया पलंग, सोफा सेट सब पड़ा हुआ है। बढ़िया रुकने कि व्यवस्था है, आप इसमें रुक जाइए पर क्या है? साँप अंदर है? बाकी तो सब ठीक है। मात्र सांप चला गया हैं इसलिए दरवाजा बंद कर दिया है। आप के लिए खोल देता हूँ। अब बताओ भैय्या! कोई रुकेगा क्या?

प्रिय आत्मन्

जब साँप अंदर हो तो कितना ही अच्छा कमरा हो , कोई नहीं रुकता है। उसी तरह अपने अंदर में देखो, कषाय का साँप बैठा है अंदर और तुम सो रहे हो, भागो जल्दी अन्यथा ये कषाय का साँप काट लेगा, ये पाप का साँप काट लेगा, इससे डरो। संसार भीरुता से भय हो और भय होगा तो नींद नहीं आएगी। यदि घर में घुस जाए, तो नींद आती है, नहीं आती न, यही तो बात है। महाराज! आपकी, 3 बजे नींद कैसे खुल जाती, हमारी तो 6 बजे तक खुलती, भैया डर लगे तो नींद खुल जाए, जरा डर पैदा हो जाए, तो नींद खुल जाती है। कैसा डर पैदा हो जाए? कुछ भी बाहर में कोलाहल सुनाई दे जाए, कोई भी ऐसी भयानक आवाज आ जाए, या आकाश से बिजली चमक जाए, तो आपको डर पैदा हो गया। या नगर में कहीं डर का वातावरण पैदा हो जाए, तो फिर आपको रातों रात नींद नहीं आती है। यह दूसरी बात है। जब ज्यादा खुशी हो तब नींद नहीं आती या तो डर हो तो नींद नहीं आती । रोज सुबह उठते हैं लेकिन घर पर शादी का कार्यक्रम चल रहा है, विवाह का मंडप

सजा है, अब घर में कितने सदस्य हैं, सबके अंदर खुशी समाई है। रात को 12 बजे बैंड बाजे बज रहे हैं और सोने के समय नृत्यगान । क्यों भाई , खुशी में क्या हो रहा है? 3 दिन हो गए, 4 दिन हो गए, 5 दिन हो गए, नींद देखी नहीं है। क्या हो रहा ? उड़ गई नींद। भैय्या! यही तो साधु की प्रसन्नता। मैंने अनंतकाल के बाद इस जन्म को सफल कर दिया । अनंत जन्मों की मिट्टी थी मैंने इसे सोना बना लिया। यदि तुमने इस देह से तपस्या करना सीख ली। तो ध्यान रख लेना, कि मिट्टी से सोना बनाने की कला सीख ली और कोई सोना नहीं है। इस देह तपस्या का अमृत निचोड़ लिया तो समझ लेना कि विष को अमृत बनाने की कला सीख ली।

प्रिय आत्मन्

इस तरह देखो कि सम्यग्दर्शन में संवेग , तो भय के कारण नींद नहीं है, डर, भय और खुशी के कारण नींद नही आती है। इस तरह से निद्राजयी बन जाते हैं। संवेग कैसा होना चाहिए? कब-कब होना चाहिए। भैया! संवेग की एक बात विशेष है जो मैने गौर किया, सोलह कारण भावना में क्या आया है? ज्ञानापयोगी संवेगो, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी संवेगौ में द्वितीया विभक्ति है और द्वितिया विभक्ति का अर्थ निकलता है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अभीक्ष्ण संवेग यदि अभीक्ष्ण संवेग रहेगा, तो डर होगा निरंतर । हमेशा डरो। किस समय? हर समय क्योंकि संसार में सुख है ही नहीं। दुःख ही दुःख हैं।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

सम्यग्ज्ञान

यदभावे सुषुप्तोऽहं, यद् भावे व्युत्थिः पुन ।

अतीन्द्रिय मनिर्देश्यं, तत्स्व संवेद्यमरूम्यहम् ।।24 ।।

प्रिय आत्मन्!

इस संसार में एक ऐसा दुर्लभ तत्त्व है, जिसके अभाव में ये जीव सदा सोया रहता है। जिसकी प्राप्ति होने पर यह जीव जाग्रत हो जाता है ऐसा दुर्लभ तत्त्व इस जीव ने अनादि से अब तक प्राप्त नहीं किया । यदि वह दुर्लभ तत्त्व प्राप्त कर लेता तो यह जीव स्वसंवेदन करता हुआ सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता ।

वह दुर्लभ तत्त्व कौन है? किस प्रकार है? दुर्लभ तत्त्व को कैसे पाया जा सकता है, क्या वह दुर्लभ तत्त्व चिंतामणी रत्न है? क्या वह दुर्लभ तत्त्व कल्पद्रुम है? क्या वह दुर्लभ तत्त्व कामधेनु है? क्या वह दुर्लभ तत्त्व त्रस पर्याय है? क्या वह दुर्लभ तत्त्व मनुष्य भव है? क्या वह दुर्लभ तत्त्व इनसे भी परे है? ऐसा कितना दुर्लभ है, कि चिंतामणी से दुर्लभ है जो कल्पवृक्ष से दुर्लभ है। जो कामधेनु से दुर्लभ है जो त्रस पर्याय से दुर्लभ है जो मनुष्य से दुर्लभ हो , क्या वह हीरा ? क्या वह पन्ना है? क्या वह मोती है? क्या कोहिनुर है? नहीं। वह इनसे भी आगे है, वह चेतनरुप है। ये अचेतन हैं वह चेतन है। ये मिट्टी है, वह शाश्वत है। हीरा, मोती ये नाशवान हैं नश्वर तत्त्वों से उस तत्त्व का आंकलन नहीं किया जा सकता है। अहो! फिर ऐसा दुर्लभ तत्त्व कहाँ मिलेगा। जिस तत्त्व के मिलने से मैं जाग जाऊँ।

हे आत्मन्! जागने की भावना जागे यही सबसे बड़ी प्रसन्नता है। पहले मैं अपने आपको स्वीकार लूँ कि मैं सोता हूँ। मैं जागकर सभा में आया हूँ।

प्रिय आत्मन्!

जागकर तो आए हो, पर मात्र आप बाह्य निद्रा को तोड़कर आए हो। बाह्य निद्रा टूटी हैश तो आए हो । यहाँ पर आकर के अंतरंग निद्रा को तोड़ना है, जो आप आज तक नहीं तोड़ पाये। ऐसी वह अखण्ड मोह निद्रा निरंतर चली आ रही है। बाह्य निद्रा तो जल सिंचन पाते ही दूर हो जाती है घड़ी का अलार्म पाते ही दूर हो जाती है, दस्तक पाते ही दूर हो जाती है। या अभ्यास से समय पर दूर हो जाती है। मेरी जो अंतरंग निद्रा है वह इतनी प्रगाढ़ निद्रा है जो टूट नहीं रही है। अंतरंग निद्रा है,कि एक भी बार जागा नहीं, जागने का अभ्यास ही नहीं

है।

प्रिय आत्मन्!

अब अर्द्ध पुदगल परावर्तन काल शेष रह गया । ये मानकर चलिए आपके सम्यग्दर्शन का अर्लाम बज रहा है, ये जिन देशना अलार्म है। जो आपको बता रहा है, कि अर्द्ध पुदगल परावर्तन काल शेष रहा है। अब तुम जागो, ये मत कहो कि और सोने दो। जल्दी नहीं। क्योकि, अभी तक तुम जागे नहीं हो । सारा जग जागकर के निकल चुका है और अपने-अपने कार्य में तल्लीन हो गया है अनंतानंत सिद्धों ने अपना कार्य कर लिया है अब वह हाथ पर हाथ बैठे हैं और आप लेटे हो। तू प्रमाद में लेटा है। काल लुटेरा बैठा है, तुझसे एकदम ऐठा है। सहमी आयु मोर यहाँ,काल घटा का शोर यहाँ। जीवन में मृत्यु कब आ जाए , इसका कोई पता नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

वीतराग देव की ये- आगम घड़ी आपके सामने अलार्म दे रही है। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने जो अलार्म देकर जग को जगाया है वह ऊँकार का नाद वही अर्ह का अनहद नाद गुंजायमान होता है और हमारी सुप्त चेतना को जगाने के लिए आगम ज्ञान के रुप में सर्वप्रथम सामने आया। तीन अलार्म बजते हैं। जब मैं विद्यालय मोराजी में था, तब तीन घंटी बजती थी। पहली घंटी-आचार्य कुंद-कुंद देव कहते हैं आगम ज्ञान की है, दूसरी घंटी तर्क ज्ञान की है , तीसरी घंटी आपके लिऐ गुरु उपदेश की है, चौथे में आप को स्वसंवेदन कर ही लेना चाहिए। यानि तीन घंटी बजते ही आप उठ जाइए स्वसंवेदन की वह चौथी घंटी है जागरण की। आपके पास तीन ही अलार्म आएँगे, जाग जाओ। प जागे तो उसके बाद कोई अलार्म नहीं आएगा।

प्रिय आत्मन्!

स्वसंवेदन के पूर्व तीन भूमिकाएँ होती हैं। आगम ज्ञान, तर्क ज्ञान, गुरु उपदेश अब कोई अलार्म नहीं है। अब तो मात्र जागरण है। उस जागरण का नाम है स्व संवेदन, स्व यानि आत्मा, संवेदन यानि उसका अनुभव, आत्मा का अनुभव कीजिए। आगम से आपने जाना है। पुद्गल के लक्षण-स्पर्शन, रस, गंध, वर्ण हैं। चेतना के लक्षण- ज्ञान, दर्शन हैं कलम के स्पर्श, रस, गंध और वर्ण है, पर उसमें ज्ञान दर्शन नहीं है। कलम में ज्ञान न होने पर कलम जानती नहीं है कि क्या लिखना है? इसलिए कुछ भी लिखोगे, कलम का दोष का नहीं है। दोष कलम का नहीं है, कुछ भी लिखो उसका पुरस्कार कलम को नहीं मिलता है, पुरुस्कार हाथ को मिलता है, उस जीव को मिलता है, चाहे अच्छा लिखा या बुरा । इसी तरह से शरीर तो आपके हाथ में आए हुए के समान है मेरा आत्मा योग का कर्ता है, उपयोग का कर्ता है, पर द्रव्य का कर्ता नहीं।

प्रिय आत्मन्!

ऐसा कौन सा तत्त्व है जिसके अभाव में मैं सोया? क्यों सोया? मुझे आज तक आगम का ज्ञान नहीं मिला। भैया! वीरसेन स्वामी कहते है। आगम, प्रवचन, सिद्धांत- तीनो के एक अर्थ हैं। इसलिए आप याद रखना- किसी दिन बोलना, महाराज श्री आप प्रवचन दीजिए। किसी दिन बोलना, महाराज श्री आप आगम को लेना पड़ेगा। आगम, सिद्धांत प्रवचन वस्तुत: तो तीर्थंकर की दिव्य-ध्वनि को प्रवचन कहा जाता है। हम

जैसे तुच्छ प्राणियों के वचनों के लिए प्रवचन नहीं कहा जाता है। तीर्थंकर भगवान के दिव्य वचनों को प्रवचन कहा जाता है। तीर्थंकर भगवान के दिव्य वचनों को प्रवचन कहा जाता है। आप्त के दिव्य वचनों के समुदाय को आगम कहा जाता है और सदा सिद्ध है, ऐसे जिसका अंत धर्म सदा सिद्ध है। ऐसी सदा सिद्ध विवेचना को सिद्धांत कहा है। सिद्धांत के भगवान तीर्थंकर होते हैं। हम श्रुत ज्ञानी क्या सिद्धांत को बताएँगे? क्या आगम को? और क्या तर्क को? हम ने तो मात्र उनके कुछ अंश को आगम से जाना है, उन अंशों को अपने गुरु उपदेश से जैसा प्राप्त कर लिया उनको प्ररूपित कर पाते हैं।

प्रिय आत्मन्!

वस्तुतः आगम पर अधिकार मात्र हमारा ही नहीं, आप सब का भी है। जैसे रोटी बनाने पर अधिकार मात्र गृहणी का नहीं है। उस पर तो अधिकार सभी का है। हर कोई बनाए, पर आप नहीं बनाते, तो आपके घर में गृहणी को बनाना पड़ता है। बनाकर के घर के सभी सदस्यों को खिलाती है। इसी तरह से स्वसंवेदन के पास पहुँचने के लिए आगम ज्ञान बिना जिनवाणी का बोध नहीं मिलता है। तर्कज्ञान से निर्णय होता है।

मैंने कहा – डॉ. साहब ऐसा लगता है कि एक दो दिन में बुखार आ सकता है। महाराजश्री जी उसको कौन टाल सकता है मैंने कहा- अस्पताल बंद कर दो, बल नहीं सकता है तो । वह बोले- महाराज श्री! आगम में कहते हैं- जो लिखा है, वह होगा।मैंने कहा – जो लिखाहै, वह जरूरी नहीं कि वह होगा, हमारे यहाँ पर अत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण का सिद्धांत भी है। देखो भैया! पोलियो दो बूदें ले लो, तो पोलियो भविष्य में संभावना नहीं रहती है और एक टीका लगवा लेते हैं, तो टी. बी. की संभावना,चेचक की संभावना नहीं रहती। पहले प्रत्याख्यान कर दो तो भविष्य के दुखों की संभावना नहीं रहती है ये हमारे आगम में दिया है यदि बीमारी हो चुकी है, तो उसका इलाज करा लो,तो आगे दुख नहीं भोगना पड़ता, अपराध हो गया तो प्रतिक्रमण कर लो। जो विकृति हो चुकी है। उसका इलाज प्रतिक्रमण है और आगे न हो उसके लिए प्रत्याख्यान । वर्तमान में किस कारण से रिएक्शन हो रहा है। उस वस्तु को तत्काल त्याग देना – आलोचना। वर्तमान में रिएक्शन किससे हो रहा है अपथ्य का सेवन के कारण कौन सी वस्तु आपके लिए हानि कर रही है? बुखार है धी का त्याग कर दीजिए।

आपके लिए डायबिटिज है शक्कर का त्याग कर दीजिए। ये है आलोचना पद्धत्ति। किस कर्म भावों से पापबंध होता है? पहले उन परिणामों का तत्काल त्याग करो। पूर्व में किससे हुआ है उसका प्रतिक्रमण करो। इलाज पहले का होता है, भविष्य का भी होता है, भूत का भी होता है कि नहीं? होता है। तीनों बीमारियों का ,वर्तमान का, भूत का, भविष्य का। महाराज श्री! जो बीमारी आई ही नहीं, उसका क्या इलाज ?

प्रिय आत्मान्!

पूँछो? अपने- अपने हाथ में देख लो, सबके अपने- अपने हाथ में एक -एक टीका लगा होगा । मैंने तो डॉ. साहब को बता दिया कि डॉ. साहब टीका क्यों लगा ? डॉ. साहब ने कहा-महाराज बीमारी भविष्य में

न हो। बस इसलिए बताया है कि अनेक फायदे हैं जिनवाणी श्रवण के जो पाप किया है वो भी नष्ट हो जाए,, आगे कोई पाप न हो इसलिए जिनवाणी हैं इाके लिए गुरू का उपदेश है। वर्तमान में कोई भूतपूर्व पाप परेशान न करे इसलिए हम गुरू के पास आते हैं। अब हम समग्र जिनवाणी तो आपको तो आपको पिला नहीं सकते । जैसे- डॉ. ने बता दिया कि मेडिकल से दवा खरीद लेना, लेकिन आपने न जाने कौन सी दवाई खरीद ली? इसी प्रकार आपने जिनवाणी से कौन सा तत्व कैसे निकाल लिया। यानि जिनवाणी में से आपने क्या पढ़ा पहले उसके प्रमाण गुरू के पास रखें फिर बाद में प्रमाणों को स्वीकार करें। अर्थात् क्या होता है? जिनवाणी के एक पक्षीय तत्व को प्राप्त कर लेते हैं। भाई कभी- कभी लिख दिया डॉ. ने एबिल गोली ले लेना। अब पता नहीं, कि एबिल कितने एम.जी. ले ली, 25एम.जी. की लेना हो 250एम.जी. की ले ली, तो क्या होगा? इसलिए कहा जाता है, मेडिकल से लेने के बाद दवा डॉ. को दिखाओ। जिनवाणी पढ़ने के बाद भी हमें गुरू का सान्निध्य जरूरी होता है। कि हम गुरू के पास उस तत्व की मीमांसा करें, तत्व का दर्शन करें गुरू उपदेश पहले आपने डॉ. से दवा लिखाई, आगम ज्ञान ध्यान रखना- कैसे बता रहा हूँ, फिर उसके पश्चात् हमने परामर्श भी ले लिया। इस औषधि में क्या है? और मुझे- रोग क्या है? ये भी डॉ. से पुँछ लिया तर्क ज्ञान हो गया। पश्चात् आप कहाँ पहुँचे, तीसरा आ गया, गुरू उपदेश जिनवाणी, आगम ज्ञान - दवाई लेकर भी आ गए। तीसरा उपाय आ गया आप के पास गुरू उपदेश यहाँ पर आपने फिर से चेक कराया, ये दवाई सही है कि नहीं ?

अब चौथी बार में आप उस औषधि को खाते हैं। यानि स्वसंवदेन की ओर जाते हैं। दवाई की चार स्टेज पहले डॉ. के पास चेकअप कराया, फिर उसके पश्चात् डॉ. ने आपसे पूँछकर परामर्श देकर के आप कौन सी ऋतु में नुकसान तो नहीं करता, वैसी दवा लिखकर के दी, युक्ति ज्ञान, फिर उसके पश्चात् पुनः दवा खरीदकर के दवा पूँछने आप डॉ. के यहां दवा चेक कराने गए। उसी तरह आचार्य कहते हैं- कि आप आगम ज्ञानद्व युक्ति ज्ञान लगाओ। फिर पुनः चेक कराने गुरू के पास जाओ, उसके पश्चात् तीन हो जाए, तो औषधि को ग्रहण कर लेते हा इसी तरह यह औषधि है, औषधि का सेवन करना, यानि स्वसंवेदन करना। ये स्वसेवेदन का पथ्य है।

प्रिय आत्मन्!

देह से मुक्त कषाय से मुक्त होने पर अपने आपसे हम मुक्त होते हैं, तब स्वसंवेदन की ओर आते हैं। वेदन करते तो अनंत काल बीता। मैं स्वसंवेदन के योग्य हूँ। मुझे स्वसंवेदन करना। निवेदन बहुत कर लिए, आवेदन भी बहुत कर लिए, मैंने निवेदन पर से किए है, आवेदन भी पर से किए है, पर स्वसंवेदन नहीं किया। आवेदन निवेदन ही करते रहे आज तक ये वेदन कितने चलते रहेंगे। यदि स्वसंवेदन कर लिया,तो फिर निवेदन आवेदन भी सब समाप्त होते जाऐंगे। तो देखिए वह कैसा है? वह अतीन्द्रिय, इन्द्रियों से परे है। आप निश्चय स्थिति में बैठेंगे, तब इन्द्रियो को खिड़कियों की तरह मानेंगे। शरीर को मकान की तरह मानेंगे। मकान है, खिड़कियाँ हैं, दरवाजे हैं, लेकिन अंदर बैठा हुआ पुरूष हो, तब तो खिड़कियों से देख पाए।

अगर अंदर बैठा जीव नहीं है, तो खिड़कियों से कौन देखेगा। नहीं देख पाते न, आपको याद रहे, कभी भी अपने घर में देख लेना। मानके चलिए, खिड़की खुली है मैं यहाँ बैठा हूँ, तो बाहर का दृश्य देख रहा हूँ इसी

तरह शरीर में आत्मा है, तो बाहर के दृश्यों का दर्शन कर रहा है। तो खिड़कियाँ- ये तन भिन्न है और मेरा आत्मा ज्ञाता दृष्टा भिन्न है। कोई निश्चित संस्थान नहीं हैं। आकार पुद्गल का होता है, चेतना का आकार नहीं होता है। पुद्गल को आकार दे सकते हैं। आत्मा का क्या आकार है? आकाश का क्या आकार ?

प्रिय आत्मन्!

पुद्गल आकारवान है, उसमें स्पर्शन, रस, वर्ण है इसलिए आकारवान है। आत्मा निराकार है, अर्निदिष्ट हैश् कोई संस्थान नहीं है। संवेदन के योग्य कौन है? आस्मे अहं मैं ही संवेदन करूंगा। मेरी आत्मा कस संवेदन करने के लिए कोई दूसरा नहीं आएगा। ध्यान देना-मुझे ही मेरा संवेदन करना है। मुझे मेरे अंदर का संवेदन करना है। संवेदन करने वाला कौन ? मैं संवेदन किसका मेरा। बस यही तो ध्यान रखना है, कर्ता मैं, कर्म मैं, साधन मैं, अधिकरण मैं, संबंध मैं, संबोधन मैं सब कारक मेरे अंदर घटित होना है।

सातों विभक्ति अपने आप में स्वः आत्मा, स्वं आत्मा की, स्वेन आत्मा के द्वारा, स्वस्मै आत्मा के लिए, स्वस्मात् आत्मा से स्वात्मा का,अस्मिन् आत्मा में डूबना। अधिकरण क्या है? आत्मा का आधार क्या है हम किसमें संवेदन करे। आप में संवेदन करना है पर में संवेदन नहीं करना है।

प्रिय आत्मन्!

मैं पर कि चिंता करता हूँ। संवेदन पर का करता हूँ। अपनी आत्मा का भी तो संवेदन करो। मेरी आत्मा कितनी दुखी ह कितनी सुखी है। मेरा परमात्मा प्रभु देह की कितनी गंदगी में बैठा है। कब तक बिठाए रहोगे? प्रभु को इस देह की गंदगी में? जो गंदगी यदि बाहर आ जाए, तो आप र्स्पश नहीं करते, इस देह की गंदगी को । तेरी आत्मा के प्रदेश जिनको परमात्मा बनना है उस परमात्मा बनने वाले प्रदेश को, तू इस गंदगी में रखे है। कब तक रखे रहेगा? जहाँ तुझे बैठना पड़े, वह जगह साफ करके बैठता है कि गंदगी में बैठता है? पुद्गल को बिठता है तो अच्छे स्थान पर बिठाता है और चेतना को कितने अपवित्र स्थान पर बिठाए है? अपने शाश्वत् प्रभु को कितने गंदे स्थान पर बिठाए हैं? भो प्रभु! मैं मंदिर बनाता हूँ, वेदी को कितना स्वच्छ रखकर भगवान को बिठाता हूँ लेकिन मैं स्वयं भी तो भगवान हूँ कहाँ बैठा है मेरा आत्म प्रदेश, कहाँ- कहाँ नहीं है इस हड्डी में, पीठ में, रक्त शिराओं में, यदि आत्म प्रदेश नही तो- जरा सी चिऊँटियाँ तो लो पता चल जाएगा। आत्म प्रदेश है कि नहीं, यही तो आत्मा है, तेरी यह अखण्ड आत्मा इन सब रक्त में से, नाड़ियों में से, धमनियों में से दौड़ हैं।

प्रिय आत्मन्!

तु इसी में अनुरक्त है, ध्यान तो करो, नौ मल द्वार बहे निशीचासर नाम लिये धिन आवे। और ऐसे गंदगी के अपार भंडार में, गृह में, मैं अपने प्रभु को कब तक बिठाऊँगा? नाथ! अब मुझे निज का संवेदन करना चाहिए। वे श्रेष्ठ हैं जो अपने हाथों से नाली के पानी में स्वर्ण कण निकाल लेते है, रजत कण निकाल लेते हैं। पर मैं अपनी देह नाली में से, परमात्मा को नहीं निकाल पाता । इस देह की नाली में परमात्मा है। देह की अपार गंदगी में ही तुम्हारा परमात्मा है जैसे उस बहती नाली में, र्स्वण के कण हैं। इसी तरह तो तू अपने

भीतर प्रवेश कर, अपने भीतर प्रवेश करेगा, तो तुझे अपने अंदर के विषय दिखेंगे। विकार भी सब कुछ अंदर में दिखेगा। तेरे अंदर क्या है? फिर उसमें तू अपने आपको निकालकर लाएगा। शेष को छोड़ देगा, ये है अपने आपकी खोज। आत्मान्वेषी बनो, छिद्रान्वेषी न बनो। हम परान्वेषी बनते हैं, स्वान्वेषी नहीं बनते। स्वान्वेषी नहीं बनोगे, तो फिर क्या बनोंगे?

प्रिय आत्मन्!

एक वह होता है श्वान् जो दर-दर जाता है टुकड़े के लिए, यदि मैं स्व अन्वेषी न बनूँ, तो मैं क्या बन जाऊँगा? पर के द्वार जा रहा हूँ। पर की देह से मैं अपनी शांति की भीख माँग रहा हूँ, क्या है? एक वह श्वान है, जो पर के द्वार जाकर के टुकड़ो को माँगता है, मैं भी तो उसी प्रकार का हो गया, कि पर की देह से, शरीर से शांति माँग रहा हूँ स्वअन्वेषी नहीं बनूँगा, तो मैं क्या बन जाऊँगा, श्वानवेषी। प्रिय आत्मन्! स्व अन्वेषी बनना,श्वानवेषी नहीं बनना है मैं स्वसंवेदन के योग्य हूँ। इस पर विश्वास रखना कि मैं की संवेदन करूँगा। अपना संवेदन मुझे स्वतः करना है, इसी तरह से हम इसके आगे तक चलते हैं। ध्यान दीजिए, आचार्य कहते हैं- कि स्वसंवेदन के आधार से जान लिया, कि स्वसंवेदन के आधार तीन तो पर निमित्तक हैं चौथा स्वनिमित्तक हैं

आगम पर निमित्तक, गुरु उपदेश पर निमित्तक, युक्ति बल भी पर निमित्तक, लेकिन चौथा स्वरमण ही निज को जानना है, तो अपने भीतर ही संवेदन करना पड़ेगा, कि मैं वस्तुतः कैसा हूँ? मेरी यथार्थ स्थिति क्या है ये सब विकार विवर्जित अध्यात्म का प्रथम पाठ मेंने लार्डगंज में पढ़ाया था। ''सिद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि''। ये है स्वसंवेदन की ओर जाने का उपाय। मैं सिद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ, मैं निरंजन हूँ मैं क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हूँ। में टंकोत्कीर्ण हूँ मैं ज्ञायक स्वभावी हूँ, मैं विकार विवर्जित हूँ, मैं अखण्ड हूँ,चैतन्य रूप हूँ इत्यादि। तत्त्वों पर बार-बार जब दृष्टि जाती है,तो निज का संवेदन होता है ज्ञानी जीव निज की और अज्ञानी पर की सोचता है।

ज्ञानी स्व कल्याण की सोचता है। अज्ञानी पर में भटकता है। ज्ञानी निज में स्थिर होता है। आचार्य देव कहते हैं- यह मेरा तत्त्व कैसे प्राप्त हो? प्रभु संवेदन होने पर क्या होता है? अंतरात्मा किस प्रकार से रागादिक तत्त्वों को नष्ट करता है? इसकी साधना क्या है? कि मेरे अंदर के राग, विलय को प्राप्त हो जाएँ। द्वेष क्षय को प्राप्त हो जाए मोह मरण को प्राप्त हो जाए। ये तीन ही तो नगर है, जिनको आदि ब्रह्मा ने भस्म किया था। राग-द्वेष व मोह यह हैं- तीन पुर। इसलिए आप हो त्रिपुरारी। तुमने तीन अरि को जीता, त्रिपुर को जीत लिया। रागपुर, द्वेषपुरऔर मोहपुर तीन पुरों के विजेता हैं त्रिपुर विध्वसंक आपकी जय हो। मैं इन तीन पुर में जकड़ा हुआँ हूँ। राग-द्वेष-मोह यहाँ आत्मा में क्षय होते हैं।

कहाँ क्षय होते हैं? आत्मा के अंदर ही क्षय होते हैं। और यहाँ ही क्षय होंगे। इस मनुष्य भव में ही क्षय होंगे। देवों के भव में राग-द्वेष-मोह क्षय नहीं होता है। नारकी की पर्याय में क्षय नहीं होते, तिर्यंच की पर्याय में क्षय नहीं होते । मनुष्य ही तो एक ऐसी पर्याय है, जिसमें **''रागाद्या अत्र एव क्षीयन्ते''** रागद्वेष इसी पर्याय में क्षीणता को प्राप्त होते हैं। इसलिए भव्य आत्मन् एक ही तो अवसर है कि इस पर्याय के पावनअवसर

को पाकर, मंगल दायक बनाना है। मंगल दायक हम कब बनेंगे? **''रागाद्या अत्र एव क्षीयन्ते''** रागद्वेष मोह जब यहाँ (आत्मा) क्षीणता को प्राप्त हो जाएँगे। तब क्या? बोले-ज्ञानी मंगलदायक बन जाएँगे।

आचार्य कहते हैं- जो युवा अवस्था में तपस्या नहीं करता, वो कैसे राग को क्षीण करेगा जो पहले बल को क्षीण कर लेगा, वह राग को कैसे क्षीण करेगा? प्रिय आत्मन्! यह जानो कि हमें जो तपस्या के लिए, योग के लिए, जो साधना चाहिए, वह योग में लगाओ। यह मनुष्य भव, नर तन अनंतो काल के बाद मिलता है। अनंतो काल के बाद मिलने के पश्चात् भी हम इसमें जो करना चाहिए,वह नहीं कर पाए। और जिनने किया, वह हाथ पर हाथ रखे बैठे सिद्ध शिला पर विराजमान हैं।

प्रिय आत्मन्!

राग-द्वेष-मोह कितने क्षीण हुए? उसका परिचय बताओ? मैं नहीं जानना चाहता ,कि आपकी उम्र कितनी हो गई कि आपने कितना धन कमाया ह कि आपके कितने महल हैं? आपके कितने बंधु बांधव हैं? मैं जानना चाहता हूँ, कि आपका राग कितना क्षीण हुआ? कि आपका द्वेष कितना घटा है? ''अत्र एव क्षीयन्ते'' यहाँ पर जो होता है,वो यहाँ कर लो। महल स्वर्गो में बना लेगा, जितने बनना हो बिना बनायें मिल जाएँगे। अरे राग-द्वेष- मोह को क्षीण तो कर लो, जितना क्षीण कर लोगे, उतने ऊँचे स्वर्ग में जाओगे। महाराज! पूरे क्षय कर लें तो सिद्ध शिला पर विराजमान हो जाओगे।

याद रखना ये दमोह वाले कम ही नहीं करते मोह कम करोगे तो ऊँचे-ऊँचे जाओगे। महाराज! पूरा कम करेंगे, पूरा कम करोगे, तो सबसे ऊँचे जाओगे। ''अत्र एव क्षीयन्ते'' यहाँ ही क्षीण होते हैं, एक ही चीज है मनुष्य भव में। नारकी जैसा पैदा होता है, वैसा मरता हैं। तिर्यंच जैसे पैदा होते हैं वैसे मरते हैं। देव जैसे जन्म लेते हैं, वैसे च्युत हो जाते हैं। एक मनुष्य पर्याय में ही जीव ऐसी यात्रा कर सकता है, वह चाहेगा तो 7 राजू ऊपर चला जाए, चाहे तो 7 राजू नीचे चला जाए।

प्रिय आत्मन्!

ये माताएँ जानती हैं, जब पानी निर्मल होता है, तो वे ऊपर की ओर अपने सिर पर रखकर ले जाती है। और जब पानी गंदा होता है तो ऊपर की मंजिल से गिरती हैं, तो सीधे नीचे गिर जाता है। यह ही तो है। जल निर्मल है तो घट को सिर पर रखकर के घर के ऊपर ले जाओगे, मेहनत करते हैं। अपने ऊपर की मंजिल पर ले जा रहे हैं। क्यों? पानी निर्मल है और ऊपर रखते हैं। फिर पानी को ऊपर से लुढ़का देते हैं, महाराज! क्यों वह पानी गंदा है वह नीचे जो निर्मल है वह ऊपर। यही तो सिद्धांत है। निर्मल मन ऊपर जाता है, गंदा मन नीचे जाता है, यही साधना है, मन का शुधिकरण हैं। आत्मा शुद्ध हो रही है तो ऊपर जाएगी और ज्यादा शुद्ध होगी तो सिद्धालय जायेगी। पानी का क्या होता है? वाष्पीकरण होता है। अर्थात तुम जितना ऊपर ले जाना चाहते हो, उतना ऊपर पहुंच जाता है। शुद्ध हो तो सातवीं मंजिल तक ले गए। देखो आपके यहाँ जितनी मंजिल रहती है, वहाँ तक ले जाते हो और परम शुद्धता को प्राप्त पानी का वाष्पीकरण होता है, वाष्पीकरण में पानी आकाश की ओर उड़ता जाता है। उसी तरह परम शुद्ध दशा जब जीव की होती है, तब संसार में सिद्ध हो जाता है और सिद्ध

कहाँ होता है? संसार में भो ज्ञानी "क्षीयन्ते अत्र एव क्षीयन्ते" यहाँ ही सिद्ध होता है, सिद्ध होकर के सिद्धालय जाता है। अष्ट कर्म का नाश करके सिद्धालय जाता है। अष्ट कर्म का नाश सिद्धालय में जाकर के नहीं करता । अष्ट कर्म का नाश इसी धरती पर रहकर के करता है।

हे आत्मन्! सिद्ध क्षेत्र तो यह धरती ही है "अत्र एव क्षीयन्ते" महावीर स्वामी ने यहीं पावापुर में कर्मो का क्षय कर दिया। जब क्षय कर दिया, तो ऊपर जाओ। भैया! ये माताएँ कितनी बुद्धि शीला हैं। ये पानी को जब लेने जाती है, तो पहले बर्तन को धोना है, तो नीचे धो लेंगी, बर्तन को माँजना है तो नीचे माँज लेंगी। जब बर्तन शुद्ध हो जाता है, तो शुद्ध बर्तन में भरकर के ऊपर ले जाती हैं। गंदे बर्तन में पानी भरकर के ऊपर नहीं ले जाती। क्यों? ये गंदा आत्मा ऊपर नहीं जाता है। रागी-द्वेषी- मोही- आत्मा ऊपर नहीं जाता है जब ये बर्तन माँज लेता है, बर्तन यानि पात्र तुम हो जिनदेशना के अरे! सिद्धता के पात्र हो , अरिहंत बनने के पात्र हो । पात्र हो तो , अपनी पात्रता को प्रकट करो। पात्र का मार्जन करके,पात्र का परिमार्जन करो, इस पात्र में राग-द्वेष-मोह रहे तो तुम्हारा सिद्ध प्रभु नहीं बैठ पाएगा। क्योंकि जिस बर्तन में खट्टास है। उस बर्तन में दूध नहीं रखा जाता है। हे आत्मन्! आचार्य कहते हैं- जीव मंगल है, ज्ञान मंगल है, दर्शन मंगल है, पर मिथ्यात्व मंगल नहीं है। अविरती मंगल नहीं है, प्रमाद मंगल नहीं है, अब बताओ तुम तो मंगलमय हो? भैया! कलश के अंदर तो अमंगल नहीं है, यदि कलश के अंदर अमंगल रहा तो कलश मंगल नहीं माना जाएगा क्योंकि जब वह कलश शवयात्रा में आगे चलता है जलते कंड़ों को रखकर आगे-आगे चलता है। मालूम! उसको अमंगल कहते हैं।

कलश जब अंदर से आग उगलता है तो उसे अमंगल कहते हैं, मंगल नहीं कहते हैं। कलश तो तभी मंगल कहलाता है, जब वह जल से छलकता है, जब निर्मल जल से छलकता है, तब वह मंगल कहलाता है। जब वह करीस (कंडा) की आग उगलता है, तब वह मंगल नहीं कहलाता है। जब कलश जल को छलकाता है, तब वह मंगल कहलाता है। उसी तरह से मेरी आत्मा जब केवल ज्ञान, रश्मियों से भर जाता है, तब मेरा आत्मा परम मंगल हो जाता है। यह आत्मा द्रव्यार्थिक नय से मेरा आत्मा परम मंगल है पर पर्यायर्थिक नय से अमंगल क्योंकि बाहर से तो घड़ा सुदंर है? भैया बाहर से घड़ा सोना का भी हो, पर अंदर में विष भरा है। उसी तरह देह कितनी भी सुदंर हो। देह में विकार हो तो देह की सुंदरता वैसी ही नहीं सुहाती है, जैसे कलश के अंदर भरा हुआ विषरस।

प्रिय आत्मन्! "क्षीयन्ते अत्र एव" इस भव में जो करना चाहो, कर सकते हो। महाराज ने आपको सुनाया था, जो कुछ करना चाहते जल्दी कर लो।

जो कुछ करना जल्दी करलो, सुकृत तरुण अवस्था में ।

पैसा पास निरोगी काया, इन्द्रिय ठीक व्यवस्था में ।।

अन्यथा कहोगे, कि अब तो बूढे हो गए।

अपनी प्रार्थना कर देता है कि हे गुरुदेव! मुझे अगला जन्म में आजीवन ब्रह्मचारी बनाना। आचार्य शांतिसागर महाराज दही गांव में थे, प्रवचन हो रहा था। एक सज्जन उठे मुझे महाराज श्री! मेरे अगले भव

ब्रह्मचर्य व्रत दीजिये, इस भव का तो है ही, अगले भव का भी, जब तक मैं सिद्ध शिला में सिद्ध बन जाऊँ, तब तक ब्रह्मचर्य व्रत लेता हूँ। सोचिए उसके दिमाग की उपज, कितना महान संकल्प या कि मैंने जान लिया, इस भव में कोई रस नहीं, इसलिए इस भव में तो में त्यागा ही है और में अब स्वर्गो के भी अब्रह्म को नहीं चाहता। मैं वहाँ कभी न जाऊँ जहाँ अब्रह्म हो ब्रह्म के साथ रहूँ।

भगवन्! इससे बड़ी साधना इस भव में कहीं हो नहीं सकती। '' क्षीयन्ते अत्र एव रागाद्या'' जिसने इस भव में त्यागा, वो उस भव में त्याग पाता है। आचार्य जयसेन स्वामी कहते है- भैया! मनुष्य भव में 100 प्रतिशत वैराग्य है तो समझ लेना, कि देव पर्याय में 5 प्रतिशत रहेगा। मैं ये कहना चाहता हूँ यदि मनुष्य पर्याय में तुमने वैराग्य पा लिया तो पा लिया, अन्यथा कोई उपाय नहीं। यहाँ पर कोई आकर्षण नहीं है। यहाँ पर चकाचौंध नहीं है। देवों के पास तो कितने आकर्षण, कितने वैभव? एक-एक देवी कितने-कितने रूप बना लेती है आपके लिए

प्रिय आत्मन्!

मोह के आकर्षणों के बीच में अपने आपको वैरागी रखना दुर्लभ होता है आचार्य कहते हैं पूजा करके दर्शन करके स्वर्ग जाने वाला भिन्न होता है। ध्यान देना- एक दान से स्वर्ग पाता है। एक चारित्र से स्वर्ग पाता है। चारित्र से स्वर्ग पाने वाला नियम से ऊपर-ऊपर बढ़ता जाएगा। दान वाला तो फिर से साम्रगी पाएगा। उस समय उसकी बुद्धि कैसी चली? भाई उस समय कैसा उपयोग चले? संस्कार तो आत्म में है नहीं-त्याग के। संस्कार डाल लेना, यदि संसार में ही परिभ्रमण करना है, तो संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं है। देखा `''क्षीयन्ते अत्र एव रागाद्या'' इस भव की साधना है राग-द्वेष- मोह का क्षय। इस मानव जन्म की सफलता का नाम है, रागद्वेष आदि का क्षय। इस मनुष्य भव की परीक्षा में पास होने का नाम है रागद्वेष आदि की क्षयता। यदि तुम रागद्वेष को क्षीण नहीं करते, तो फिर मनुष्य भव को पाना निरर्थक है।

प्रिय आत्मन् !

तत्त्व दृष्टि से जब मैं तुझको देखता हूँ जैसे जब मैं क्षमा स्वभाव को देखता हूँ, तो क्रोध पलायन कर जाता है। जब मैं विनय स्वभाव को देखता हूँ, तो विनय स्वभाव आ जाता है। किसके नीचे? किसे ऊपर? कौन नीच?, कौन ऊपर? अहो धन्य हैं! मेरे परम दिगम्बर मुनिराज जो मध्यलोक में बैठे हैं और अविरत सर्म्यग्दृष्टि जो स्वर्ग लोक में बैठे है। बताओ! कौन ऊँचा, कौन नीचा? बताओ भैया! किसको पीछे बिठा दिय अरे भैया! आपने मेरे लिए पीछे बिठा दिया तत्त्वों को, देखों-तत्त्चों के नाम जीव, अजीव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। बोलो तुम्हें किस क्रम पर बिठा दें, तीसरे? चौथे? पाँचवे? बोलो किस क्रम पर ?

अरे! तुम सातवें क्रम पर बैठे हो। तुम्हें किस क्रम पर बिठा दूँ? भैया! सात क्रम मोक्ष तत्त्व का सबसे पीछे है। इसलिए हे आत्मन्! ज्ञानी उसी मोक्ष को चाहता है। पीछे से ही तो आता है मोक्ष। इसलिए कभी विकल्प मत करना, कभी सभा में तुम्हें पीछे बैठने मिले, तो ये मत सोच लेना,कि हमें पीछे स्थान मिला। भैया! पीछे भी मिला तो गुरु की दृष्टि पड़ रही है। गुरु की वाणी पीछे से भी सुन सकते हैं, आगे से भी सुन सकते है।

लेकिन कोशिश यह करना, कि समय पर आ करके प्रथम श्रेणी के श्रोता बनो और मंगल आशीष आपके लिए '' क्षीयन्ते यत्र एव रागाद्या '' तत्त्व दृष्टि से तो देखो अपने आप में।

हे माँ! मुझमें मुझको देखने से, अपने आपको अपने स्वभाव में देखने से, राग-द्वेष-मोह नष्ट होंगे। दूसरे से राग-द्वेष-मोह होगा, ये कैसा है? वो कैसा है? पहले देखो मैं कैसा हूँ? भैया अपनी तरफ देखने से राग-द्वेष-मोह नष्ट होंगे। जब हम दूसरे को देखने के लिए इशारा करते हैश तो ये अंगुली, अपने अंतस् को देखो, कि मैं कैसा हूँ? कभी भी सुई का छेद नहीं देखो, हे चलनी! अपने दोष देखो। हे चलनी! तू सुई के दोष देखकर के उसको दोष देती है कि तुझमें छेद है। लेकिन तू अपने हजार छिद्रों को नहीं देख रही हैं।

प्रिय आत्मन्!

अपने अंदर देखोगे तो क्या हो जाएगा? दोषों का निराकरण होगा। हम जिसके दोष देखते हैं, उसके दोषों का निराकरण होता है। यदि अपने दोष दूर करना है। ये तो मुझे मालूम है, पक्का मालूम है, कि मेरे पास 18 दोष हैं मालूम है कि नहीं सबको? किसी को मालूम नहीं क्या? तो अपने 18 दोषों को तो देखो, बाकी दोष दुनिया को देखने दो। ये तो निर्णय हो गया। यदि 18 नहीं होते, तो मैं अरिहंत बन गया होता। 18 दोष का निर्णय मैंने आपको दे दिया, इतने दोष तो हैं। पहले अपने अंदर के 18 दोष देखो। बाद में किसी और के दोष देखना, जब अपने अंदर के 18 दोष देखेंगे, तो अपने कोष में न जाने और कितने दोष मिलेंगे। जब उन दोषों को निकालेंगे तब फिर गुण ही गुण प्रकट होने लगेंगे।

जब तत्त्व दृष्टि से देखता हूँ। तो मैं मात्र ज्ञान आत्मा हूँ। कैसा ज्ञान आत्मा? मात्र ज्ञानी, ज्ञानी नजर आते, देखो तो तत्त्व दृष्टि से, पुद्‌गल की दृष्टि से मत देखो। बाजार की दृष्टि से मत देखो, धन की दृष्टि से मत देखो, चर्म दृष्टि से मत देखा। शरीर दृष्टि से मत देखा।

प्रिय आत्मन्!

पुरुष वर्ग धन की दृष्टि से देखता है। महिला वर्ग तन की से देखता है। ये तन की दृष्टि और धन की दृष्टि छोड़ो, ये सब नाशवन हैं। धन भी नाशवान है। और तन भी नाशवान है। पूछ लो लक्ष्मीमती से, तन के लिए, पूछ लो अपने धन के लिए, सब नाशवान हैं। **''कश्चिन् न मे शर्त्रुनचप्रिया''** जब ज्ञान आत्मा बन जाओगे, तो न मेरा कोई शत्रु है न कोई मेरा है।

हे आत्मन्! ये मित्रता और शत्रुता तो रागद्वेष की परिणति है। अपने अंदर के राग-द्वेष-मोह चले गए तो न कोई शत्रु है। न कोई मित्र है। कब तक शत्रु है? जब तक मेरे अंदर द्वेष है, कब तक मित्र है? जब तक मेरे अंदर राग है। राग गया, द्वेष गया। जब रागद्वेष चला गया शत्रु मित्रता का व्यवहार चला गया। सारा जग सम नजर आएगा। समत्व नजर में आएगा। समत्व की यात्रा समत्व के साथ होती है इस तरह से देखो **''नमेशर्त्रुनचप्रिया''** बोलो एक बार **''न मेशर्त्रुनचप्रिया''** न मेरा शत्रु न मेरा प्रिय आपने पढ़ा-

कबिरा खड़ा बजार में, माँगे सबकी खैर।

न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर ।।

प्रिय आत्मन्!

आज यही सूत्र है। ''नमेशर्त्रुनचप्रिया''

।।ॐ नमः सिद्धेभ्यः।।

सम्यग्चारित्र

सिद्धालय के गर्भालय में विराजमान चेतन आत्माओ! चेतन तत्त्व की अभिलाषा, यहाँ मुनीन्द्र ज्ञानामृत, बरसाते एक साथ दोनों, इन्द्रों के द्वारा पानी की बरसात और मुनीन्द्रों के द्वारा जिनवाणी की बरसात। जिनका मानस जिससे संतृप्त हो, वह उसके लिये उपादेय है। क्षेत्र पर आपके आने का समाचार और यह वात्सल्य पर्व का समाचार देवलोक तक पहुँच चुका हैख जिसे इन्द्र देवता सुन रहे हैं और मेघों की वर्षा कर रहे हैं।

हे आत्मन्! **''सद्दृष्टि-ज्ञान-चारित्र, मुपायः स्वात्म लब्धये।। स्व. सं.।।''** आचार्य श्री अकलंक स्वामी का स्वरूप संबोधन मात्र 25 श्लोकों का यह ग्रन्थ, उसमें यह सूत्र दिया है, यही जीवन का सर्वोत्कृष्ट धर्म है। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र के बल पर होता है। हम आत्मतत्त्व के सहयोगी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के विषय को भली- भाँति जान चुके। सम्यक्- चारित्र का सार क्या है, हम देखेंगे।

णाणं णरस्स सारो सारोवि होइ सम्मतं।

सम्मताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।।

मनुष्य जीवन का सार सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान का सार सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का सार चारित्र है, चारित्र का सार निर्वाण है स्वर्गो के देवों के पास 33 सागर तक सम्यग्दर्शन रहता है, लेकिन मोक्षमार्ग नहीं मिलता , आत्मीय सुख नहीं मिलता । हे भव्य आत्माओ जीवन का सार क्या है? सर्वप्रथम तो हमने अपने आत्मतत्त्व को जानने की कोशिश की। आत्मतत्त्व में ये सम्यग्दर्शन आदि होता है। क्योंकि आपकी आत्मा ही मोक्ष का कारण है। मात्र एक आत्मा ही मोक्ष जाएगा और कुंदकुंद भगवान् का एक ही कहना है- **'सुद्धो अप्पाय घेयव्वो'** शुद्ध आत्मा को ग्रहण करना चाहिए।फिर आचार्य श्री कुदंकुंद देव स्वतः प्रश्न कर रहे हैं।शुद्ध आत्मा को कैसे ग्रहण करना चाहिए? आप ये तो कहते हैं- आत्मा को ग्रहण करना चाहिए, आत्मा को पहचाना चाहिए, आत्मा को पाना चाहिए। आत्मा को कैसे ग्रहण करना चाहिए? प्रिय बंधुओ! आचार्य महाराज पुनः कहते हैं- आत्मा प्रज्ञा के द्वारा अपनी आत्मा को ग्रहण करना चाहिए जिसे दौलतराम जी ने कहा- **'परम पैनी सुबुध छैनी डार अंतर भेदिया'** परम प्रज्ञा छैनी के द्वारा भेद करना चाहिए। भेद के द्वारा न्यारा करना चाहिए।

प्रिय बंधुओ! उस प्रज्ञा रूपी छैनी के द्वारा हमें आत्मा विभक्त करना चाहिए। वो किससे विभक्त करना? सबसे पहले यदि कोई कहता है कि आत्मा है कि नहीं है? क्योंकि जब तक आत्म तत्त्व की सिद्धि नहीं है तब तक हमारा धर्म करना, धर्माचरण करना, उसका कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं होगा। देखिए! आपके मन में ये प्रश्न हुआ। आप सामने वाले व्यक्ति से पूँछ रहे है कि आप कौन है? क्या आपने अपने आपसे पूँछा? मैंने अपने आपसे पूँछा कि मैं कोन हूँ मात्र इतना प्रश्न मेरे अंदर जागा इस प्रश्न के बाद कमाल हो गया। अभी-अभी तो ये प्रश्न पुद्गल का था, लेकिन वचन बोलने के बाद मैंने मौन धारण कर लिया, इसके बाद बताइए अभी कौन सा प्रश्न किया था, सभी के अंदर में है? इसका यह निर्णय हो गया कि - वचन तो पुद्गल नहीं हूँ क्योंकि वो प्रश्न मेरे अंदर में अभी भी चल रहा है। अब मेरा ये प्रश्न किसके अंदर में उठा? शरीर के अंदर उठा क्या? मुख के अंदर उठा क्या ? मैं एक-एक चीज का अनुभव करूँगा। ये जो हमारा मुख है, हमारे साथ है, हमारे पैर हैं, मस्तक है, इस पर मात्र स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाला होने से ये सब पुद्गल हैं। इस पुद्गल तत्त्व को फिर शरीर के अंदर जो भी हड्डी-मज्जा, जो भी तत्त्व सब पुद्गल हैं । इस पुद्गलों को काया से निकाल दिया जाए तो क्या बचेगा, पूरा जो शरीर है वह क्या है? मात्र पुद्गल का पिड़ है, एक पत्थर है, एक दीवार है, एक मिट्टी का पिंड है उसी तरह से शरीर है। तत्त्व को जानना आवश्यक है, क्योंकि आचार्य महाराज का कहना है- अनेक जन्म ले लेना, लेकिन जब तक तुम आत्मतत्त्व को नहीं पहचानोगे तब तक तुम्हें कुछ भी सिद्धि होने वाली नहीं है।

हमारे अंदर जो बैठा है, हमें उसकी पहचान नहीं हो पा रही है, तो मैंने निर्णय किया कि मैं ये रक्त नहीं, पिंड नहीं, मैं शरीर नहीं, मैं हड्डी नहीं, मज्जा नहीं, धातु, उपधातु ये सब अचेतन हैं, पुद्गल हैं। अब प्रश्न उठा-मैं कौन हूँ? प्रश्न मेरे अंदर अब भी चल रहा है तो ये प्रश्न मन में उठा क्या ? नहीं मन दो प्रकार का होता है। एक भाव मन, एक द्रव्य मन। द्रव्य मन मात्र आठ पंखुड़ी के समान कमल के आकार का है और जिसे आप हृदय कमल कहते हैं वह जो है पुद्गल की संरचना है। उसमें जो व्यापार क्षमता है वह भाव मन है। उस भाव मन को क्रियान्वित करने वाला कौन है? जिसके पास मन नहीं है वह जीव तो है, जिसके पास नहीं उसके पास भी क्रियान्वित हो रहा है। भाव मन को क्रियान्वित करने वाला कौन है मन का कार्य नहीं है। जो भाव जागा था कि मैं कौन हूँ? कौन-सी शक्ति है, मात्र अपने आप से जान लेना कि ये प्रश्न किसने किया है। विभवसागर ने ये प्रश्न किया था तो विभवसागर तो इस पर्याय का नाम है। प्रश्न यदि मुख ने किया था तो पुद्गल है, यदि जीभ ने किया तो वह पुद्गल है, मन ने किया तो वह पुद्गल है, एक-एक करके समझने की कोशिश की। अंत में निर्णय आया कि शरीर के अंदर एक कोई और शक्ति है जो प्रश्न करती है। जिस अदृश्य शक्ति ने प्रश्न किया है जो पूँछ रही कि तुम कौन हो मात्र तुम वही हो। तुम कुछ और नहीं हो। तुम वही हो तो तुमसे प्रश्न कर रहा है कि तुम कौन हो। विभक्त करना है कि, मै पुद्गल नहीं हूँ, मैं अचेतन नहीं हूँ ,मैं जड़ द्रव्य नहीं हूँ , मैं स्पर्श नहीं हूँ ,मैं रूप नहीं हूँ, इन सब पौद्गलिक तत्त्वों से अपने आप को पूर्ण जुदा देखना है और तब पुद्गल तत्त्वों से पुर्ण जुदा करेंगे तब अनुभव करेंगे।

इसको महसूस करने कि हम एक और विधि आपको बताते हैं - आत्मा का वजन कितना है एवं आकार कितना है? कल एक प्रश्न जागा- आत्मा कितनी बड़ी है? ये प्रश्न चल रहा था, उसी समय एक

साधारण समाधान- पैर में एक मच्छर ने काटा, उसी समय पता चला यहाँ भी आत्मा है। दीवार पर जो मच्छर है उससे दीवार को कोई तकलिफ नहीं हुई। पुस्तक पर बैठा है, पुस्तक को कोई तकलिफ नहीं हुई। जो मच्छर अपने पैर बैठा, मस्तक के आसपास कान पर बैठा, उस मच्छर से जरा सी चुभन हुई और आपको संवेदना हुई, इससे सिद्ध हो गया कि जो संवेदन आपने किया वह पुद्‌गल ने नहीं किया। संवेदन करने वाली शक्ति का नाम है आत्मा! आत्मा कितनी बड़ी है, सरसों के दाने के बराबर है क्या ? यदि वह सरसों के दाने के बराबर होती तो पैर में हमें संवेदना नहीं होती। तो वह आत्मा पूरे शरीर के प्रमाण के बराबर है। जितना तुम्हारा शरीर है उतनी तुम्हारी आत्मा है। खाली प्रदेश छोड़कर सब जगह है।

आत्मा निकल जाती है, शरीर में घटा-बढ़ी होती है तो पता नहीं चलता। प्रश्न है क्या जीव यदि आ जाए तो शरीर का वजन बढ़ जाता है, जीव यदि चला जाए तो शरीर का वजन घट जाता है! छोटी सी बात, जीव यदि जाता है तो हमें पता क्यों नहीं चलता ? छोटी सी बात से मैं बताऊँगा, जैसे -बिजली का तार है, प्लास्टिक भी है, अंदर तार भी है तार में करेंट आ जाए तो बिजली के तार का वजन कितना होगा? करेंट चला जाए तो तार का वजन कितना हो जाएगा? इसमें पुद्‌गल आ रहा है, न तो आते को देख पाते, न जाते को देख पाते। फिर जो स्पर्श, रस, गंध वर्ण से रहित है तो उसका वजन कितना है? 100 ग्राम का आम है, 100 ग्राम के आम में स्पर्श कितने ग्राम है 100 ग्राम में,गंध कितने ग्राम है 100 ग्राम में वर्ण रस कितने ग्राम है? 100 ग्राम का अब आम 400 ग्राम का हो गया स्पर्श, रस, गंध वर्ण कितने-कितने ग्राम है बताओ? जहाँ स्पर्श है, वहाँ गंध है, रस है। ये सब मिले हुए हैं जहां ये पृथक-पृथक होंगे क्या कहा जाएगा। ये चार भाई है, छोटे-छोटे बालक हैं रामू, श्यामू, कुछ भी। ये रामू का घर है और यह श्यामू का है, पर पिता की अपेक्षा से तो पिता जी का घर है उसी अपेक्षा से पुद्‌गल में स्पर्श, रस, गंध वर्ण हैं, इसीलिए उसमें भार है लेकिन आत्मा में कोई भार नहीं है। इसीलिए आत्म तत्त्व की सिद्धि सबसे पहले करना। प्रज्ञा के द्वारा उसका भेद करना।

कुंदकुंद स्वामी ने समयसार की गाथा में, यही बात कही है कि सबसे पहले प्रज्ञा के द्वारा आत्मा का भेद करो। जब पुद्‌गल से जुदा आत्म तत्त्व को जानोगे, तब कुछ करने का फल मिलेगा। अब कहते हैं कि -दो प्रकार के जीव होते हैं- एक तो ज्ञानी, दूसरा अज्ञानी जीव होता है एक स्वर्णकार होता है, एक लौहार होता है। स्वर्णकार सोने को गलाएगा तो क्या बनाएगा? सोने के आभूषण बनाएगा। लौहकार जो है लौहार, लोह गलाएगा, हथकड़ी बनाएगा, सुनार अलंकार बनाएगा। यही आपको देखना है कि एक अलंकार बनाएगाश एक औजार बनाएगा। ज्ञान अलंकार बनाता है और अज्ञान हथियार बनाता है ज्ञान से ज्ञान पैदा होता है और अज्ञान से अज्ञान पैदा होता है सोने से सोने के आभूषण बनेंगे और लोहे से लोहे के।

क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र, जप, तप, शील जितने भी ज्ञानमय कार्य है ये करने की भावना किसके अंदर होगी? ज्ञानी के। समाधि, दस, धर्म, ज्ञानी शिल्पी द्वारा ये रत्नत्रय सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्ररुपी अलंकार पैदा होते हैं। ये अलंकार किसको पहनाए जाते हैं? चेतना को। चैतन्य धातु से धर्म-अलंकार पैदा होते हैं। ज्ञान चैतन्य धातु है उस चैतन्य धातु के अलंकार होते है और चेतना को पहनाए जाते है जब पुद्‌गल से निर्मित अलंकार होते है तो

वह पुद्‌गल को पहनाए जाते हैं बाहर के जो स्वर्णकार होते हैं वे सोना गलाते हैं वे रस से अलंकार बनाते हैं पुद्‌गल के अलंकार पुद्‌गल को पहनाए जाते हैं और चेतन के अलंकार चेतन को पहनाए जाते हैं मैं उपदेश का सार अलंकार से आपको अलंकृत करना है।

प्रिय बंधुवर! अब मान लीजिए जो आत्मा है, एक वस्त्र की तरह है । सफेद, ऊपर मैल चढ़ जाता है, मिथ्यात्व का मैल चढ़ा, जैसे कपड़े मैले हो जाते हैं। मिथ्यात्व का मैल मानो मिथ्यादर्शन का उदय आया, अज्ञान का मैल चढ़ा तो मिथ्याज्ञान दिखाई देगा, कषाय का मैल चढ़ा तो सम्यक् चारित्र की साबुन लगाना चाहिए। रत्नत्रय की साबुन द्वारा हम आत्मा के मैल को धोयेंगे, मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र का मेल निकल जाएगा। आत्मा के मैल को धोने की बात हमारे मन में आती ही नहीं। सुबह से शाम पुद्‌गल को ही धोते रहते हैं। इसी के धोने-धोने में देह की चाकरी में दिन निकालते, पुद्‌गल की सेवा में , देह की सेवा के कारण हम निज देव की सेवा नहीं कर पाते। देव की सेवा में हम चैतन्य की सेवा भूल जाते हैं।

प्रिय बंधुवर! इस आत्म तत्त्व का निर्णय कर लिया कि मैं चेतना हूँ, मैं आत्मा हूँ मैं पुद्‌गल नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मेरे अंदर चैतन्य शक्ति है। पहले चैतन्य सत्ता का बोध करना अनिवार्य है। जिस सत्ता को पहचानने में अनंत काल लग गया। ऐसी सत्ता को पहचानने की कला, हमें साधारण जगत में नहीं मिलने वाल, ये महावीर के स्वरूप संबोधन से मिलेगी। महावीर स्वामी ने जो आत्मानुसंधान किया, निजनुसंधान किया, चेतनानुसंधान किया उस अनुसंधान से जो निकली हुई है, शुद्धात्म के संशोधक आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने आत्मा का अनुसंधान करके जो प्रसून निकालकर रख दिए है, उनका मात्र ज्ञान हमें करना है और ज्ञान के साथ-साथ अनुभव करते हैं तब आनंद आता है।

एक शास्त्र अपने आप पढ़ लिया जाए और एक गुरुमुख से। एक तो स्वयं भोजन बनाओ, कितना भी अच्छा बनाओ, लेकिन बुन्देलखण्ड की कहावत तो सही ही है- ''माई न परसे भरे न पेट''। उसी तरह कितना भी अपने मन से पढ़ लेना, लेकिन जब तक गुरु मुख से सुनोगे नहीं तब तक प्रवचन का आनंद मिल ही नहीं सकता है। शास्त्र के माध्यम से कुंदकुंद स्वामी ने ये कह दिया कि मैं अपने वैभव से ये बतलाऊँगा कि आत्मा क्या है लेकिन अमृतचंद्राचार्य स्वामी से ये पूछा कि हे भगवन्! आत्मा के वैभव का जन्म कहाँ से होता है? आचार्य महाराज का कहना है-परमागम के अभ्यास से, शास्त्रों के अभ्यास से, जिनवाणी के अभ्यास से, आत्मा के वैभव का जन्म होता है। शरीर के वैभव को तो दुनिया से बटोर सकते हैं। आत्मा के वैभव के लिए एक जिनवाणी, गुरु के वचन हैं। जो चीज हमें जिनवाणी से नहीं मिल सकती वो चीज हमें गुरु के द्वारा प्राप्त हो जाती है।

अब आत्म तत्त्व को जानने के बाद हम चारित्र मार्ग की ओर चलते हैं, क्योंकि ज्ञान और दर्शन कितना भी रहे, लेकिन चौथे गुणस्थान से आप आगे नहीं जा सकते। सम्यक्चारित्र आपको चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान व सिद्धशिला तक ले जा सकता है।

अपनी आत्मा में रमण करने वाले श्रावक होते हैं। अभी मैंने एक रचने का भाव बनाया था। एक पूजा ऐसी हो जिससें किसी साधु का नाम न हो। मात्र साधु चर्या का वर्णन हो। उसमें लिखा था कि-

अरिहंतो को हमने नहीं देखा, न सिद्धों की सिद्धशिला को देखा, लेकिन आपकी प्रवचन सभा ही समवशरण और आपका आसन, (आप जहाँ बैठ गए) वह सिद्धशिला हो जाता है।

प्रिय बंधुओ! देखिए चारित्र जिसके द्वारा चौथे गुणस्थान से चौदहवें तक जाना है। संसार से मोक्षपुर की ओर जाना है तो वह चारित्र है और चारित्र क्या है? जो दर्शन की पर्याय है, ज्ञान गुण की पर्याय है उस दर्शन और ज्ञान गुण की उत्कृष्ट उत्तरोत्तर पर्यायों में स्थितिकरण का हो जाना ही सम्यक् चारित्र है। उसी में दृढ़ हो जाना। मात्र दर्शन गुण की पर्याय और ज्ञान गुण पर्याय में दृढ़ होना ही चारित्र है।

ज्ञाता-दृष्टाऽहमेकोऽहं सुखे दु:खे न चापर:।

इतीदं भावनादाढ्‌र्य चारित्रमथवा परम्।।

मैं ज्ञाता हूँ, मैं दृष्टा हूँ, सुख और दु:ख में मैं अकेला आत्मा हूँ।

हे बंधूओ ! जब कभी आप परिवार के साथ आते हैं। महाराज श्री ये हमारी पत्नी, ये हमारा बेटा, ये हमारी बेटी। आचार्य श्री पद्मनंदी स्वामी ने अपने ग्रंथ में लिखा कि भैया तुम जिनको अपना कहते हो वे अपने नहीं हैं। मात्र आजीविका के लिए ठगों की टोली है। ये शब्द आचार्य श्री ने यशस्तिलक चंपू में लिखा है- तब तक आजीविका चल रही है, ये तुम्हारे हैं जब आजीविका चलाना बंद कर दो, कोई भी तुम्हारा नहीं हैं। मात्र ये ठगों की टोली है, कुछ दिन के लिए। प्रयोग के लिए आप रोड़ पर खड़े हो जाइए, कुछ नोट लेकर के, तुम्हारे पास पूरा गाँव आ जाएगा। एक काम करो प्रसाद लेकर खड़े हो जाओ, एक टोकनी भर लाई के फूला लेकर खड़े हो जाना, सब बच्चे तुम्हारे पास। छोटे- छोटे बच्चे जो कभी नहीं बोलते थे, वे आ जायेंगे और तुम्हारे (लाई) फूला, खत्म हुआ कि सब बच्चे अलग। ये स्थिति परिवार की है। जब तक तुम्हारे पास देने को है, तब तक तम्हारे पास सब आ रहे हैं। सेठ लोग हैं, व्यापारी लोग हैं, ये सोच रहे हैं हम दुनिया को ठग रहे हैं लेकिन वस्तुत: तुम अपनी आत्मा के सिवाय किसी दूसरे को ठग नहीं सकते। अपने चैतन्य तत्त्व को ठग रहे हैं

प्रिय बंधुओ! अशुभ से निवृत होना और शुभ में प्रवृति होने का नाम चारित्र है। चेतना का विकास करने के लिए, शरीर हमारा उतना रहेगा, कद हमारा उतना ही रहेगा। मात्र जो आत्मीय संस्कार है, वो इस भव से दूसरे भव में जाना है। ऐसे एक भव के संस्कार नहीं, अनेक भव तक संस्कार चलते हैं अनेक भव की चारित्र की साधना जब आती है। तब कहीं विरागसागर, विशुद्ध सागर जैसे आचार्य पैदा होते हैं एक भव की साधना से विरागसागर जैसे संत नहीं बनते। कुछ चीजें ऐसी होती हैं जो भव-भव की संवेदनाओं से पैदा होती हैं, जो जीव के अंदर आत्कीय करुणा के निर्झर हैं वे कोई नहीं सिखा पाएगा। तुम्हें शब्द सिखाए जा सकते हैं, तुम्हें शब्द बोलने की शैली सिखाई जा सकती है, संवदेना नहीं दे सकते हैं। वो संवेदना अंत:करण की होती है।

।।ॐ नम: सिद्धेभ्य:।।

समवशरण

प्रिय आत्मन्!

अहो भव्य आत्मन् ! मगध पति, नृपति, पुरुषोत्तम पुरुष, राजा श्रेणिक आपका प्रश्न समग्र सभा का प्रश्न है। समवशरण की महिमा क्या है?

समेत्यावसरावेक्षास्तिष्ठन्त्यस्मिन् सुरासुराः।

इति तज्ज्ञै र्निरुक्तं तत्सरणं समवादिक् ।।33/73 म.पु.

इसमें समस्त सुर और असुर आकर दिव्य ध्वनि के अवसर की प्रतीक्षा करते हुए बैठते हैं, इसलिए ज्ञाता गणधरादि देवों ने इसका समवशरण ऐसा सार्थक नाम कहा ।

हे मगधेश ! समवशरण का महत्व इसी से आंकलन किया जा सकता है –कि एक अवसर्पणी काल में 10 कोड़ी सागर का काल होता है। इतने दीर्घ काल में मात्र 24 ही समवशरण लगते हैं । समवशरण की महिमा यह है कि तीर्थंकर भगवान की सभी है। इस समवशरण को रचने वाला 'कुबेर' होता है। जो सौधर्म इन्द्र की आज्ञा पाकर समवशरण को रचता है। आपको समवशरण की महिमा को जानना है तो सुनो !

समवशरण की बारह कक्षा में अभव्य जीव प्रवेश नहीं करते । श्री मण्डप भूमि में नियम से भव्य जीव ही आते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव श्री मण्डप भूमि में प्रवेश नहीं पाते । असंज्ञी जीव श्री मण्डप भूमि में प्रवेश नहीं पाते,जिनके मन में शंका का कीड़ा है। जिनके मन में विपरीत धारणा है। जिनके मन में संशय है। ऐसे जीव समवशरण की अष्टम् भूमि में प्रवेश नहीं पाते है। समवशरण की महिमा यह दैविक रचना है, इस देवरचित रचना को दैविक व्यवस्था कहा जा सकता है।

सर्वप्रथम प्रभु आदिनाथ स्वामी का समवशरण लगा 12 योजन लम्बा–चौड़ा था। 144 कि.मी. की जिसकी सामान्य भूमि थी । इस समवशरण में आठ भूमियाँ चैत्य प्रसाद,भूमि, खातिका भूमि, लता भूमि,उपवन भूमि,ध्वज भूमि, कल्प भूमि,भवन भूमि,श्री मंडप भूमि आदि क्रम से अष्ट भूमि देख रहे हैं । सप्तम् भूमि में आना सहज बात है। लेकिन अष्टम् भूमि में जाने के योग्य होते हैं।

सिद्धालय को अष्टम् भूमि कहते हैं। श्री मण्डप तो समवशरण की अष्टम् भूमि है। इस अष्टम् भूमि पर आने का मतलब है कि आप सिद्धशिला की अष्टम् भूमि को प्राप्त करने के पात्र हो।

समवशरण की महिमा के विषय में मनुष्य को चाहिए कि वह भरत–चक्रवर्ती का अनुकरण करें। एक ही दिन में भरत–चक्रवर्ती के लिए द्वारपाल ने प्रथम समाचार दिया चक्ररत्न की प्राप्ति हुई तो द्वितीय समाचार आ गया पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई और तृतीय समाचार आ गया कि आदिनाथ को कैवल्य की प्राप्ति हुई। तीन समाचार एक ही समय मिले। पुत्र रत्न की प्राप्ति,चक्ररत्न का उत्सव करना चाहिए कि मुझे कैवल्य का महोत्सव मनाने समवशरण में जाना चाहिए ?

ज्ञानी जावो! आपके लिए यदि एक साथ तीन उपलब्धि हो जायें तो आप क्या करेंगे ? आपके जीवन में प्रश्न आ जाये कि आपके परिवार को कोई इष्ट लाभ हो रहा है। आपके व्यापार में लाभ हो रहा है और एक ओर समवशरण लगा है तो आप क्या करेंगे।

ज्ञानी जावो! भरत चक्रवर्ती सम्यग्ज्ञानी प्रबुद्ध ज्ञाता पुरुष निर्णय करता है कि पुत्ररत्न की प्राप्ति होना काम पुरुषार्थ का फल है। चक्ररत्न की प्राप्ति होना ये सब धर्म पुरुषार्थ के फल से ही तो होते हैं। इसलिए सबसे पहले मुझे धर्म पुरुषार्थ के बल से पुत्ररत्न, चक्ररत्न मिला है उस पुरुषार्थ का उत्सव पहले करना चाहिए । इसलिए सबसे पहले मैं भगवान के समवशरण में जाऊंगा।

कहो ज्ञानी! घर में पुत्र हुआ है। चक्रवर्ती ने पुत्र का मुख नहीं देखा और सबसे पहले भगवान का मुख देखने समवशरण में चल दिया। कहो ज्ञानी! आप

क्या करते ?

ज्ञानी प्रश्न कर रहा है, सूतक नहीं लगा ? चक्रवर्ती आदि महापुरुषों को सूतक नहीं लगता। जिस जीव को इतना मोह नहीं हो कि साक्षात् पुत्ररत्न कि प्राप्ति हो ाही है और वह भगवान के समवशरण में जा रहा है। जिनके जीवन में हर्ष- विषाद की रेखाएँ आती है,उन्हें शीघ्र सूतक लगता है और जिनके मन अत्यन्त निर्मल और उज्जवल बने रहते हैं । ऐसे चक्रवर्ती को आगम का वचन है, सूतक नहीं लगता ।

चक्रवर्ती समवशरण की ओर बढ़ता है। आज मैं आदिनाथ भगवान की पूजा करुँगा, अर्चा करुँगा। परम सौभाग्य है मेरा भाग्य है कि मैं तीर्थंकर भगवान की पूजा करुँ। मेरे जीवन का स्वर्णिम अवसर है। आदिनाथ भगवान के समवशरण को निहारता है। 144 कि.मी. लम्बा चौड़ा इतना विशाल 12 योजन का समवशरण । उस समवशरण की महिमा ही क्या है ? जिस समवशरण के द्वार पर 108-108 निधियाँ रखी रहती हैं चक्रवर्ती जैसे पुरुष मध्यलोक के सबसे बड़े धनवान व्यक्ति कहलाते है। लेकिन ज्यों ही समवशरण के द्वार पर निधियों को देखता है तो चक्रवर्ती का भी मान गलित हो जाता है। अहो मैं तो यही समझ रहा था कि मैं ही धनवान हूँ। जितना वैभव मेरे राज्य में नहीं है उससे ज्यादा तो समवशरण के द्वार पर बहार पड़ा है।

लेकिन ज्ञानी, वह उठाता नहीं है, लूटता नहीं है। यहाँ पर रत्न बरस ही नहीं पाये कि थाली में से लूट लिए आपने कहो ज्ञानियों ! एक वर्षा रहा है, हर्षा रहा है और एक बिना बरसाये ही लूट रहा है। धन्य है ज्ञानियो ! समवशरण की भूमि में आ करके ये लूट। अहो ज्ञानियो ! संसार में लूटा है, अब भी लूटेगा क्या ?, नहीं महाराज लूटने नहीं, कल्पद्रुम विधान की एक निशानी लेने के लिए ।

ज्ञानियो ! पुद्गल की क्या निशानी रखना। भरत चक्रवर्ती समवशरण में आया था। लेकिन उसने निशानी नहीं रखी। क्यों भईया थाली से रत्न क्यों उठा रहे थे ? देने वाला दे,लेने वाला ले, ये तो महान। लेकिन महाराज, मैंने सोचा समवशरण के रत्न हैं जीवन भर याद रहेगा, स्मृति के लिए रख लूँ।

ज्ञानी जीवों ! समवशरण में आ करके स्मृति के रत्नों को नहीं रखा जाता ।

समवशरण में आ करके यादगार के लिए रत्नत्रय पोषक नियम, संयम को रखा जाता है। समवशरण की भूमि आचरण की भूमि है, तप, त्याग की भूमि है, जिस समय समवशरण की भूमि में प्रवेश होता है, उस समय मिथ्यात्व का त्याग हो जाता है।अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ गल-गल कर पानी हो जाता है।

ज्ञानी जीवों ! जैसे आग के पास बर्फ पानी हो जाता है,ऊष्मा को पा करके बर्फ गल जाता है उसी तरह जिनेन्द्र भगवान की ऊष्मा को पा करके कषायें गल जाती है।

ये समचशरण की भूमि तीन लोक के सौभाग्य की भूमि आपके पुण्य की भूमि है। समवशरण का दर्शन आपके सौभाग्य का दर्शन है ये समवशरण के सोपान सौभाग्य के सोपान हैं।

''जब मन चंगा, तो कठौती में गंगा ''

मन प्रसन्न है तो सब सुख है। इस भरत क्षेत्र के आर्यखंड में सबसे पहला समवशरण आदिनाथ भगवान का लगा और सबसे अंतिम समवशरण भगवान महावीर का लगा।

नेमिनाथ का समवशरण लगा। श्री कृष्ण, बलदेव समवशरण में पहुँच । ध्यान रखना जो जीव एक दिन समवशरण में पहुँच जाते हैं। वे एक दिन सिद्धालय में पहुँच जाते हैं जो समवशरण में आने में विलम्ब करते हैं वे सिद्धालय में जाने में विलम्ब करते हैं समवशरण में जो जल्दी आ गया वह सिद्धालय में भी जल्दी गया। क्यों ? क्योंकि समवशरण में जल्दी आओगे तो श्रद्धा शीघ्र पैदा हो जायेगी, और आचरण पैदा हो जायेगा । समवशरण की पहली भूमि देखो जो चैत्य प्रसाद भूमि है। चैत्य यानि प्रतिमा, माने भवन अर्थात चैत्यालय भूमि । ये चैत्यालय भूमि है, जो चित को प्रसन्न कर देती है।

चित को प्रफुल्लित कर देती है

चैत्य वंदना करता प्रभवर! चैत्यालय आके।
चित प्रफुल्लित हुआ हमारा, जिन दर्शन पाके।।

अहो जिनालय! अहो जिनेश्वर! जिन प्रतिमा प्यारी।
जिन मंदिर में श्री जिनवर की, महिमा है न्यारी।।
समवशरण का दर्शन पाया, आज यहाँ आके।
चित प्रफुल्लित हुआ हमारा, जिन दर्शन पाके।।

आज आप समवशरण में आये हैं तो सच में आज अपने भीतर में आये हैं। संसार में विचरण करना आसान है। लेकिन समवशरण में पग रखना आसान नहीं हैं।

ज्ञानी जीवो! जब सातिशय पुण्य आता है तब समवशरण की और कदम बढ़ते है। अन्यथा पाप तो जीवों को नरक की ओर ले जाता है। समवशरण सातिशय पुण्य है।

समवशरण शुभ परिणाम कर देता है? जब नेमी प्रभु का समवशरण लगा तो बलदेव ने संकल्प ले लिया कितने जीवों ने नियम, संयम ले लिया। देखो निमित्त एक होता है उपादान सबका अलग-अलग होता है। एक ही भगवान हैं लेकिन सबका उपादान जुदा-जुदा है।

ध्यान देना एक निमित्त को पाकर जिसने उपादान को जगा दिया । हे प्रभु नेमीनाथ ये द्वारका नगरी कब तक रहेगी। नेमी प्रभु ने कहा था 12 वर्ष तक रहेगी फिर क्या होगा स्वामी ? यह भस्म हो जायेगी।

ज्ञानी जीवो ! श्री कृष्ण को महाराज को विश्वास था कि तीर्थंकर नेमी प्रभु के वचन असत्य नहीं होंगे। तत्काल श्री कृष्ण महाराज ने कह दिया जो संयम लेना चाहे,जो जीव नियम लेना चाहे वह समवशरण में जाकर के नेमिनाथ स्वामी के चरणों में जा करके नियम और संयम ले लें। क्योंकि **नान्यथा वादिनो जिन:**' भगवान के वचन अन्यथा नही ज्ञानी जीवो! निमित्त एक ही भगवान थे। जिन जीवों का उपादान सम्यक्त्व का जागा। उसने सम्यग्ज्ञान पा लिया। जिनका चरित्र का उपादान जागा। उनने चारित्र को पा लिया कुछ ऐसे भी थे जो कुछ नहीं पा सके।

ज्ञानी जीवो! जैसे एक ही बगीचे में आम, सेव, संतरा सभी प्रकार के वृक्ष लगे होते हैं जिनको जो पसन्द होता है वह उसको तोड़ लेता है उसी तरह से समवशरण तो धर्म का

बगीचा है जहाँ पर सम्यग्दर्शन के फल लगे हैं। सम्यग्ज्ञान,सम्यक्चारित्र के फल लगे हैं। तप-संयम के फल लगे हैं। ऐसी ये वाटिका है। इस समवशरण के बगीचे में तुम्हें जो फल चाहिए हों वह फल आप पा सकते हैं। धन्य हैं आपके भाग्य,धन्य हैं आपके सौभाग्य। जन्म जन्मान्तरों का पुण्य है कि समवशरण लगा है। यह समवशरण का मेला है। तीर्थंकर भगवान की सभा समवशरण क्यों कहलाता है? क्योंकि यहाँ सब जीवों को सम्यक् अवसर मिलता है। समान अवसर मिलता है।

देखो! भगवान महावीर का जब समवशरण लगा तो 65 दिन तक देशना नही खिरी और जीव विराजे रहें। हे प्रभु! मैं समवशरण में आया हूँ। मैं देशना सुन करके ही जाऊँगी। वहाँ महिलाएँ ऐसी नहीं थी कि प्रवचन में चली जाये।

समवशरण की महिमा है कि समवशरण में भूख नहीं लगती। जो समवशरण में बैठा होगा उसको भूख नहीं लगेगी। लेकिन यहाँ जिसका उपयोग बाहर भोजन में चला जायेगा तो उसको भूख लगेगी।

समवशरण में प्यास नही लगती । समवशरण में बीमारी नहीं होती । समवशरण में जन्म नहीं होता, समवशरण में मरण नहीं होता। ये विशेषताएँ समवशरण की हैं।ऐसा दिव्य समवशरण जब-जब जहाँ-जहाँ लगता है वह भूमि तीर्थ रूप हो जाती है। तीर्थरूप मुनि के चरण जहाँ पड़ जाते हैं भूमि तीर्थ हो जाती है। आज आपकी यह धरती तीर्थ के समान धन्य हो गई है। क्योंकि भगवान पल भर के लिये पालकी में निकलते हैं तो हम आरती उतार लेते हैं। लेकिन हमने समवशरण लगा करके 8 दिन को भगवान के लिए विराजमान कर लिया है।

हे प्रभु! कभी मैंने शास्त्रों में सुना था कि समवशरण ऐसा होता है लेकिन आज साक्षात् देख लिया । ज्ञानी जीवो! यह कल्पना का समवशरण, भावनाओं का समवशरण है। ऐसे समवशरण को निहारते-निहारते यदि मरण हो गया तो नियम से जीव स्वर्ग जायेगा और वहाँ पर ठहरेगा नहीं। तत्काल विदेह क्षेत्र जायेगा और सीमंधर स्वामी के चरणों में पहुँचकर निवेदन करेगा कि साक्षात् भगवान के समवशरण को देखकर आया हूँ मैं चाहता हूँ मुझे तीर्थंकर भगवान की देशना मिले ।

ज्ञानी जीवो ! संसार के समस्त कार्यो में तो समय बहुत मिल जायेगा। लेकिन ध्यान देना–जल तरणी विद्या,थल तरणी विद्या,नभतरणी विद्या, तो संसार में कोई भी सिखा देगा। लेकिन भवतरणी विद्या सिखाने का विद्यालय है समवशरण। भवतरणी विद्या तीर्थंकर भगवान की देशना संसार से पार कर देती है। इसलिए हे ज्ञानी जीवो ! आज समवशरण की महिमा को जानो। इस समवशरण में भगवान न भी बोले लेकिन गोतम स्वामी ने मात्र भगवान के मानस्तम्भ को देखा था उतने मात्र से ही सम्यग्दर्शन हो गया।

मानस्तम्भ देख रहे हो। ये मानस्तम्भ मणियों का रचा है और चारों दिशाओं में चारों प्रतिमाएँ हैं यदि इतना धन वैभव आपके घर में होता तो जरुर आप अहंकार में डूब जाते।

जितना वैभव समवशरण में है। उसका यदि असंख्यातवाँ हिस्सा भी यदि आपके पास होता है तो आप अहंकार में डूब जाते।देखो समवशरण में विराजे भगवान हैं लेकिन भगवान के पास अहंकार नहीं है। क्योंकि यहाँ तो मान का भी स्तंभन होता है ये मानस्तंभ है।

इस मानस्तम्भ को देख करके ये भगवान जो विराजे है वादिराज आचार्य कहते हैं।

मानस्तम्भ रचा रत्नों से, कैसे मान गलाता।
रत्न राशि का ढ़ेर दूसरा, मन में मान दिलाता है।।
आप विराजे उसके अंदर, चमत्कार कर देता है।
मान भी खण्डित होता भवि का, दर्शन जो कर लेता है।।

समवशरण की भूमि मात्र के स्पर्श से ही जीवों के परिणाम निर्मल होने लगते हैं। समवशरण जीव के कर्ण और चरण को निर्मल कर देता है। समवशरण संसार के जीवों का तारण और तरण है। समवशरण का दर्शन ही जिन मंदिर है। जिन मंदिर समवशरण का प्रतिक है।

ध्यान रखना देवों ने 65 दिन इंतजार किया है, कभी देशना सुनने का अवसर आये तो 65 मिनिट इंतजार जरूर करना तभी जीवन की सार्थकता है। अपने जीवन को संयम से महान बनाओ । समवशरण की भूमि से रत्न लेकर मत जाओ। समवशरण की भूमि

से चारित्र रुपी रत्न लेकर जाओ तभी जीवन की सार्थकता है।

समवशरण में आये हो तो कोई न कोई नियम, संयम से जीवन को सजाओ। जो पहले आये वे पहले मोक्ष गये। जो बाद में आये वे बाद में मोक्ष जायेंगे। ये मोक्षमहल के सारथी है। यदि मोक्ष रथ में बैठोगे तो मोक्ष पहुँच जाओगे। समवशरण में आना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को पाना है। समवशरण में आना आपने सौभाग्य को जगाना है।

ज्ञानी जीवो ! हर किसी के घर जाना आसान होता है। लेकिन भगवान के घर आने वाला एक दिन भगवान होता है। समवशरण तो भगवान का घर है। भगवान के घर कौन बुलायेगा किसके बुलाने पर आओगे सबको एक दिन भगवान के घर जाना है। इसलिए पहले भगवान के समवशरण में जाओ। जिस जीव को जहाँ जाना है वह –वहाँ जाता है जिसको समवशरण में जाना है वह समवशरण में आता है।

ध्यान रखना–जीवन की शुरूआत यदि समवशरण से करोगे तो समाधिमरण होगा। यह जीवन का सत्य है, समवशरण में आने वाला जीव श्मशान में जाने के पहले एक बार भगवान को जरूर याद करेगा और समवशरण में जायेगा। यह तीर्थंकर भगवान का समवशरण कहता है तारो और तरो। जब भगवान के समवशरण में गाय, सर्प और शेर,नेवला एक साथ बैठ सकते हैं तो हम और आप आज समवशरण की भूमि में भावना इतनी जगह अवश्य बनाये कि वहाँ पर बैठ सकें। अपनी जगह हर किसी के दिल में बनाकर रखो। यदि हर दिल में जगह बनाना हो तो समवशरण की भूमि में आ जाओ । यदि आपको समवशरण में जगह मिल गई तो संसार के दिलों में जगह बनाने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने आप ही बन जायेगी। समवशरण में इतनी अधिक विशुद्धि होती कि बैठने मात्र से परिणामों में परिवर्तन होता है और एकता आती है।

सौधर्म इन्द्र 30 साल तक महावीर के साथ रहा। उसने एक भी दिन नहीं छोड़ा। आप भी न छोड़े।

ॐ नमः सिद्धेभ्य :

उत्तम क्षमा धर्म

प्रिय बंधुवर ! भारतीय संस्कृति का आलौकिक आध्यात्मिक पर्व, धर्मो से ओत-प्रोत पर्वराज पर्यूषण पर्व का आज प्रथम दिवस है।

हे आत्मन् ! पर्व का तात्पर्य है-जोड़ने वाला ।जैसे - आपका यह हाथ है। हाथ की अंगुलि के बीच में यह पर्व है जो दो स्थान को जोड़ता है उसे क्या कहते हैं- पर्व। जो बाहर को जोड़ता है उसे कहते हैं -पर्व जो गन्ने को जोड़ता है उसकी गाँठ को कहते हैं पर्व। कुछ राष्ट्रीय पर्व होते हैं, कुछ सामाजिक पर्व होते हैं। यह एक धार्मिक पर्व है, आध्यात्मिक पर्व है। जब कोई पर्व प्रारंभ होते हैं तो कोई न कोई घटना अवश्य होती है। यह जो पर्व है इसका इतिहास क्या है ? इसको जानने की सभी की इच्छा होती है।

कालचक्र अपने आप चलता रहता है काल परिवर्तन के समय षष्ठं काल पूर्ण होता है तो प्रलयकाल से सृष्टि परिवर्तित होती है और इस समय जो मित्र देवगण होते हैं, विद्याधर मनुष्यों को ले जाकर के अन्य जगह पर विराजमान कर देते हैं। निरंतर 49 दिन तक अशुभ वृष्टियाँ होती हैं, जिससे सृष्टि पर प्रलय छा जाता है 49 दिन के बाद पुनः शुभ वृष्टियाँ होती हैं, जिनमें दूध, दही,घी अमृत की वृष्टि होती है। जिससे पुनः सृष्टि उर्वरा हरी-भरी हो जाती है।

''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ''

जो विद्याधर मनुष्य गुफाओं में छिपे थे, उन्हें जब ज्ञात होता है कि हमारी भूमि हरी-भरी हो गई है। तो वह पुनः वापस आते हैं। प्रत्येक कार्य की शुरूआत मंगल पूर्वक होती है। उसी तरह अब नए जीवन को शुरू करने के लिए धर्म को अपना आधार बनाते हैं। जिस तरह धर्म के प्रभाव से हम वहाँ पर सुरक्षित रहे, इतना बड़ा प्रलयकाल चलता

रहा फिर भी हम सुरक्षित रह गए।

इसलिए हमें आराधना करना चाहिए। यह धर्म अनादि-अनिधन धर्म है, सत् धर्म है, अविनाशी धर्म है, ऐसे धर्म की आराधना करना चाहिए। ऐसा पर्व जो उन्होंने मनाया,वह आज भी चला आ रहा है। महावीर स्वामी की देशना से जो प्राप्त हुआ, वह दशलक्षण धर्म,उत्तम, क्षमा, मार्दव,आर्जव,शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य मय धर्म है।

इस धर्म में जिन आत्मा को निज आत्मा से जोड़ने की कला सबसे महत्वपूर्ण होती है। अन्य जितने भी पर्व है वे हमारी आत्मा के लिए इतने उपकारक नही हैं जितना उपकार ये पर्व करते हैं। ये जो दशलक्षण पर्व हैं उसकी विशेषता ये है कि जीवन में अरिहंत भगवान आपसे छूट जायेंगे,जो मंदिर आपने बनाया है वह मंदिर छूट जाएगा, लेकिन गुरू आपको जो उपदेश दे रहे हैं वह आपने जिस धर्म का स्वरूप सुना है, वह धर्म आपसे नहीं छूटेगा। क्योंकि जब जीव सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है,तब नव देवताओं में से सिर्फ एक-उत्तम क्षमादि ये दशलक्षण धर्म ही आपके साथ रहेंगे। यह शाश्वत् धर्म है। आपने अरिहंत की उपासना की, आपको अतिशय क्षेत्र प्यारा है लेकिन,ये तो सब आपको छोड़कर जाना है। लेकिन यहाँ हम जा प्राप्त कर रहे हैं। वह उत्तम क्षमादि धर्म है। उत्तम क्षमा धर्म हमारे साथ कब तक रहेगा ? आज से हमने प्रारंभ कर दिया और सिद्ध भगवान भी बन जायेंगे,सिद्धशिला में विराजमान भी हम हो जायेंगे, उस समय भी यह धर्म हमारे साथ रहेगा।

महत्वपूर्ण बात यह माणिकचंद जी कौन्देय ने कौन्देय कौमुदी में लिखा है। ये दशलक्षण धर्म सिद्धों के धर्म हैं, शाश्वत् धर्म है। जो वस्तु आपसे एक दिन में छूट जाए उसे आप रखना पंसद नहीं करते, जो साल भर काम आए,जिसकी क्वालिटी अच्छी हो,और जो वस्तु 5 साल चले उसकी क्वालिटी और अच्छी मानी जाती है और जो वस्तु 50 साल चले उसकी क्वालिटी और अच्छी मानी जाती है,और जो तत्त्व आपके साथ जीवनभर चले, इस जीवन के पश्चात् अनंतानंत सिद्ध भगवान बनने पर साथ चले वह है- धर्म। धर्म का स्वभाव **"वस्तु स्वभावो धम्मो"** वस्तु का जो स्वभाव है वह है

धर्म–**“क्षमादि भावो दसविहो धम्मो”** वह क्षमादि भाव रूप दस प्रकार का धर्म है–**“रयणत्तयं च धम्मो”** अथवा रत्नत्रय धर्म है।

धर्म वस्तु का स्वभाव है। जल शीतल है, जल का स्वभाव शीतलता है। जैसे– आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। आत्मा का लक्षण ज्ञान है। ज्ञान ही आत्मा है। आत्मा की शक्तियों का जहाँ वर्णन करते हैं। अमृतचंद्र देव ने 47 शक्तियों का वर्णन किया है। वैसे ही आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं, जैसे– क्षमा शक्ति। जिस प्रकार आत्मा की ज्ञान शक्ति है,वैसे ही आत्मा की क्षमा शक्ति भी है। उसको खोजने हमें कहीं बाहर नहीं जाना , वह कभी नष्ट नहीं होगी। भाव कर्मो के कारण जब व्यक्ति क्रोधित हो जाता है तो वह क्रोध आत्मा पर आवरित हो जाता है। ढके हुए को प्रकाशित करना उसका नाम है–क्षमा। वह गुण, वह स्वभाव मेरा है, निज का शाश्वत् है, अविनाशी है, निज के लिए है। जैसे ज्ञान आपका है,आपके लिए है,आपमें है, उसी तरह क्षमा भी है। सातों, आठों विभक्तियाँ लगायेंगे, वे घटित हो जाऐगीं। हमें क्षमा को खोजने के लिए बाहर नहीं जाना है। मैं क्षमा हूँ, क्षमा क्या है ? जीव है जीव क्या है ?क्षमा हे। जैसे जीव का लक्षण ज्ञान कहते हैं। तीव का लक्षण है–ज्ञान। तीनों लोकों में तीनों कालों, जीव कहीं भी जाएगा ज्ञान साथ रहेगा जैसे ज्ञान परिणत हो जाता है अज्ञान रूप, मिथ्यात्व के उदय से, वैसे ही क्षमा कषायों के उदय से, चारित्र मोह के उदय से आपको किस रूप में दिखने लगती है ? क्रोधादि के रूप में दिखने लगती है। लेकिन यदि सिद्ध है,कि यह क्रोध है तो यह भी स्वत: सिद्ध कर रहा है कि यह क्षमा है।

जल की शीतलता उसका गुण है। कितना भी तापमान उसका कर दिया जाए, पर शीतलता का अभाव नहीं हुआ है। शीतलता तो दुर्भाव को प्राप्त हुई है। शीतलता का अभाव हो जाएगा तो पुन: शीतलता को प्राप्त नहीं होना चाहिए। लेकिन जल को जब तक अग्नि पर रखा है, वह गर्म है। ज्यों ही अग्नि पर से हटाया , जमीन पर रख दिया तो हमने देखा वह शीतल हो गया, वैसे जल गर्म कब हुआ है ? पर निमित्तों के कारण । उसी तरह क्रोध कब आया ? पर निमित्तों के कारण। लेकिन जल के गर्म होने पर निमित्त कारण बन गए । लेकिन आप जीव की एक विशेषता है। जब अचेतन था, तो इसने परिणमन

नहीं किया । लेकिन आप जीव हैं, आप पुरूषार्थ शील चेतना हैं, कर्म चेतना है और कर्म चेतना का तात्पर्य है कि कर्म चेतना उदय के अनुसार नहीं चलती। उदय को भी अपने अनुसार चला देती है उदय में उदय रूप नहीं होती। आप समयसार में देखेंगे तो आचार्य महाराज कहते हैं–उपयोग उपयोगमय है। क्रोध क्रोधमय है। क्रोध उपयोगमय नहीं है। उपयोग में क्रोध नहीं है। क्योंकि क्रोधादि जो कषाय है, जड़ कर्म हैं। हृदय ये चेतन है जब हम व्यवहार का दृष्टिकोण लेते हैं तो जीव इन क्रोधादि का कर्ता हो जाता है, लेकिन जब निश्चय दृष्टि से देखते हैं तो यह इनका कर्ता नहीं है। क्योंकि निश्चय दृष्टि सिद्ध भगवान को विषय बनाती है और व्यवहार दृष्टि संसारी जीव को विषय बनाती है। हम जब प्रमाण दृष्टि से जीव को देखते हैं तो एक ही वस्तु में जहाँ क्षमा गुण विद्यमान है, वहीं क्रोध गुण विद्यमान है। पानी गर्म है कि पानी ठंडा है ? प्रमाण दृष्टि में पानी ठंडा भी है और पानी गर्म भी है। क्योंकि जब प्रमाण दृष्टि कथन करती है तो दोनों दृष्टि से करती है। जो नय दृष्टि है वह एक व ? पक्ष को लेगी और 99 को छोड़ देगी। जब हम व्यवहार लय का आश्रय लेंगे तो 99 नय छूट चुके होंगे। मात्र एक नय का कथन हम कर रहे हैं और निश्चय का कथन किया मात्र एक अंश का कथन किया, 99 अंश हमसे दूर है 99 अंश का कथन और कहना है– मात्र अभी। जो क्षमा रूप परिणति है, वह क्षमा मेरा स्वभाव है। इस पर ध्यान रहे कि क्षमा मांगने से नहीं मिलती है और देने से दी भी नहीं जाती है, क्योंकि जैसे शांति मांगने से नहीं मिलती है और देने से नहीं दी जाती है ये तो अंतरंग से पैदा करने की चीज हैं। पूज्यपाद स्वामी जी ने लिखा है–

"सांत यात्रवादि गुणगण, सुस्वादमं शक्ल लोक हितहेतुम्"

ये जो सांत आर्जव आदि गुणों का समुदाय है– यह सुसाधन है, सम्यक्साधन है,अच्छा साधन है, श्रेष्ठ साधन है। किसका ? जो सम्पूर्ण विश्व है अथवा ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक अधोलोक के जीवों के हित को साधने के लिए आत्मा के उत्कर्ष का , उन्नति का सकल लोक के लिए एक कारण है, क्या ? क्षमा एक है, जीव अनंत हैं। एक क्षमा गुण अनंत जीवों को संसार सागर से तार देता है।

सिद्ध शिला में भी क्षमा आपके साथ रहेगी। इन गुणों के प्रकृति का नाम ही आत्मा

का विकास है। आत्मा का विकास कब प्रिय नहीं हैं? जब असंख्यात प्रदेशी आत्मा अनंत प्रदेशी जाए ये नहीं होगा। लेकिन जो आत्मीय संपदा है, आत्मीय संपति की पहिचान 'क्षमा' मेरी आत्मीय निधि है।

आचार्य कुंदकुंद देव ने कहा– जैसे कोई भिखारी यदि रत्न को प्राप्त कर ले तो वह क्या करेगा? क्या चौराहे में खड़ा होगा कि घर लेकर जाएगा या सबको बताएगा ? जो चीज मिलेगी उसे घर ले जाएगा, परिवार के साथ भोग करता है उस चीज का ज्ञानी जीव ज्ञान का उपयोग अपने लिए करता है। क्षमाशील व्यक्ति क्षमा आदि गुणों का उपयोग अपने लिए करता है। क्योंकि आदि पुराण में जिनसेन आचार्य ने लिखा है कि दूसरों को क्षमा करना बहुत आसान है। लेकिन अपने आप को क्षमा करना बहुत कठिन है। बाहुबली स्वामी के बारे में कहा गया है कि भरत चक्रवर्ती बाहुबली स्वामी के पास जाकर कहते हैं हे प्रभु! आप अपने लिए क्षमा कीजिए । बहुत अच्छा विषय आया, कि आप अपने लिए क्षमा कीजिए क्योंकि बाहुबली के चित्त में आकर भाव ठहर जाता था। ध्यान में भाव आ जाता था। ये मत सोचना कि शल्य थी। भरत ने कहा हे प्रभु! आप अपने लिए क्षमा कीजिए। हम किसी दूसरे को क्षमा नहीं कर सकते, लेकिन अपने आपको तो क्षमा कर सकते हैं। आचार्य कहते हैं।

कोहुप्पत्तिस्स पुणो, बहिरंग जदि हवेदि सक्खादं।

ण कुणदि किंचि वि कोहो, तस्स खमा होदि धम्मोत्ति ।।71।। वा.पे.

क्रोध उत्पन्न करने वाले बाह्य कारणों के मिलने पर भी जो किंचित्र मात्र भी क्रोध नहीं करता उसको उत्तम क्षमा धर्म होता है।

क्रोध की उत्पति के विभिन्न कारण हो सकते हैं, उसकी कोई संख्या नहीं हो सकती है। मान लीजिए आप यहाँ बैठे हैं प्रवचन में जरा सी आवाज क्रोध की उत्पति का कारण हो गया। न जाने कितने कारण मिल जाएं, पहचान तो तभी होगी जब प्रतिकूलता है अनुकूलता में तो कोई क्रोध नहीं करता है। ठण्डे मौसम में तो हर पानी ठंडा होता है,लेकिन गर्म मौसम में पानी ठंडा रह जाए उसका तो सभी उपकार मानते है। क्रोध की उत्पति के तो कई कारण मिल रहे हैं, लेकिन फिर भी क्रोध न करना । महाराज थोड़ा बहुत

तो चलता है आज कल के व्यक्तियों का, लेकिन भगवान् कुंदकुंद स्वामी कहते हैं–**'णवि किंचि वि कोहो'** थोड़ा भी क्रोध नहीं करना । क्रोध न उत्पन्न होने का नाम है क्षमा, अन्तर्मन में क्रोध का न होना, वचन व काया की परिणती तो दूर है ये तो स्थूल से स्थूल हो गया, मन में भी क्रोध का न होना क्षमा हे। पूज्यपादजी ने बताया–महाराज आहार चर्या को जा रहें। जाते–जाते कोई अपशब्द कह देता हैं,कोई गाली– गलौच कर देता है,कोई पत्थर फेंक दे, कोई लाठी चला दे, महाराज को क्रोध के कारण मिल रहे हैं, लेकिन फिर भी क्षमाभाव। आचार्य श्री से महाराज ने कहा–महाराज श्री वे ऐसा–ऐसा कहते हैं। उन्होंने कहा –कहने दो, उनके ऐसे कहने के ही दिन हैं। क्योंकि ये कषाय अज्ञान के साथ ही जन्म लेती है, अज्ञानता की भूमिका में ही कषाय जन्म लेती है।

अहो ! जैसे ज्ञान के अभाव में जीव में नहीं है, वैसे ही क्षमा के अभाव में जीव नहीं है। मैं क्षमाशील हूँ तो वस्तुत: क्रोध करना जीव का स्वरूप ही नहीं है। जितना प्रयास मेरा ज्ञान पाने के लिये होता है उससे अनेक गुना प्रयास मेरा क्षमा पाने के लिये होना चाहिये।ग्रन्थ कुरल काव्य में तिरूवल्लराचार्य कहते हैं– वे महान् है जो उपवास करते हैं, उसके पश्चात् निंदा सुनने पर क्रोध न करने वाला क्षमाशील व्यक्ति ज्यादा महान हुआ। वस्तु स्थिति हमने आपके सामने रखी है जो आचार्य महाराज का कहना है। अधिकांशत: व्यक्ति कहते हैं कि जब हमने गलती नहीं की और व्यक्ति दोष देते हैं तो हमें क्रोध आता है, लेकिन भैया यहीं पर विचार करना जब हमने गलती नहीं की तो क्रोध क्यों करना । कुछ कहते हैं कि महाराजश्री दोष हममें तो है नहीं। तो आचार्य शिवकोटि ने भगवती आराधना में लिखा है कि हे जीव ! जब तेरे अंदर दोष है नहीं और किसी ने कह दिया तो तू दोष का स्वामी हो जाएगा क्या ? मान लीजिए तेरे पास एक करोड़ नहीं है और कोई करोड़पति कह दे, तो क्या तू करोड़पति हो जाएगा ?

क्षमा ही आत्मा है, आत्मा ही क्षमा है। क्षमा छोड़ी, धर्म को छोड़ दिया। आत्मा गुणों को छोड़ दिया। इसीलिए आप किसी भी परिस्थिति में कहीं भी रहो, क्षमा को नहीं त्यागना। ऐसी भावना आचार्य महाराज ने यहाँ की है कि क्षमा आज के लिए नहीं, आज से है। आज से कब तक के लिए है, विचार करना। सिद्धालय में रहोगे तो क्या वहाँ क्षमा छूट जाएगी ?अरिंहत छूट जायेंगे, मंदिर छूट जायेंगे, प्रतिमा छूट जायेंगी, जिनवाणी छूट

जायेगी,पर क्षमा नहीं छूटेगी। इसलिए क्षमा गुण को विकसित करो, जितना ज्ञान को विकसित करते हैं, उतना क्षमा को भी विकसित करो।

आचार्य महाराज ने कहा–'कोहम् खमया' क्रोध को क्षमा से जीतना । किसी ने सर्वाथ सिद्धिकार पूज्यपाद स्वामी से पूँछा– हे प्रभु ! धर्मों का वर्णन क्यों किया ? निर्जरा का वर्णन किया–तप से निर्जरा होती है। संवर का वर्णन किया, फिर दश धर्मों का वर्णन किया। आचार्यश्री ने कहा –आपको जो प्रवृति करना हैं, उस प्रवृति में ये धर्म सहायक हैं, निवृति में तो कोई बात ही नहीं है। जब आप तपादि में संलग्न हैं और ध्यान में बैठे हैं तो उस समय तो आप क्षमावान हैं। जब प्रवृति कर रहैं उस समय ये क्षमादि भाव सहायक हैं। हे प्रभु ! आपने क्षमादि के सामने उत्तम विशेषण क्यों लगा दिया ? तो उन्होंने कहा– कि जो फल हमको दिखाई देने वाले हैं उनकी इच्छा हमारे अंदर न जागे कि उत्तम क्षमा कह देने से व्यक्ति हमसे प्रसन्न हो जाएगा । अपने आपके कल्याण के लिए क्षमा, विशेष बात ध्यान में रखना है– सकल लोक हितहेतुक्षमा– सम्पूर्ण विश्व हेतु कल्याणकारी है ये क्षमा।

हमारे अंदर जब क्षमा जागती है, तो मैं विश्वकल्याणी बन जाता हूँ। ऐसी भावना के साथ क्षमा भाव धारण करना और ऐसी बात पुज्यपाद स्वामी ने कही है, क्षमा से ही आत्मा का कल्याण होता हे। उत्तम क्षमा से क्षमा हमारे अंदर परिणमित हो। वस्तुका का विवेचन हम अनादिकाल से सुनते आए, चलता रहा, धारण करने में समय लगता है। ये जो धर्म है–शुभ धामनि धातारम् अर्थात् शुभ धाम मोक्ष को धारण करने वाला है। "वन्दे धर्म जिनेन्द्र उक्तम्" जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुआ जो धर्म है, मैं उसकी वंदना करता हूँ।

ॐ नमः सिद्धेभ्य :

आचार्य श्री के वर्षायोग –स्थल

क्र.	सन्	नगर	जिला	प्रान्त	विशेष
1.	1995	ललितपुर	ललितपुर	उत्तरप्रदेश	गुरु के साथ
2.	1996	जबलपुर	जबलपुर	मध्यप्रदेश	गुरु के साथ

3.	1997	भिण्ड	भिण्ड	मध्यप्रदेश	गुरु के साथ
4.	1998	मुरैना	मुरैना	मध्यप्रदेश	संघ–प्रमुख
5.	1999	मड़ावरा	ललितपुर	उत्तरप्रदेश	संघ–प्रमुख
6.	2000	हजारीबाग	हजारीबाग	बिहार(अब झारखंड)	संघ–प्रमुख
7.	2001	कोतमा	शहडोल	मध्यप्रदेश	संघ–प्रमुख
8.	2002	जबलपुर(लार्डगंज)	जबलपुर	मध्यप्रदेश	संघ–प्रमुख
9.	2003	नागपुर	नागपुर	महाराष्ट्र	संघ–प्रमुख
10.	2004	परभणी	परभणी	महाराष्ट्र	संघ–प्रमुख
11.	2005	श्रमणबेलगोला	हासन	कर्नाटक	संघ–प्रमुख
12.	2006	शिरड शाहपुर	परभणी	महाराष्ट्र	संघ–प्रमुख
13.	2007	नागपुर(पटवार)	नागपुर	महाराष्ट्र	आचार्य–पद के बाद
14.	2008	द्रोणगिरि	छतरपुर	मध्यप्रदेश	आचार्य
15.	2009	जबलपुर	जबलपुर	मध्यप्रदेश	आचार्य
16.	2010	टीकमगढ़	टीकमगढ़	मध्यप्रदेश	आचार्य
17.	2011	गढ़ाकोटा	सागर	मध्यप्रदेश	आचार्य
18.	2012	जयपुर	जयपुर	राजस्थान	आचार्य
19.	2013	अशोकनगर	गुना	मध्यप्रदेश	आचार्य
20.	2014	सागर	सागर	मध्यप्रदेश	आचार्य
21.	2015	दुर्ग	दुर्ग	छत्तीसगढ़	आचार्य
22.	2016	कौतमा	शहडोला	मध्यप्रदेश	आचार्य
23.	2017	शिरडशहापुर	हिंगोली	महाराष्ट्र	आचार्य

आचार्य श्री की साहित्य – सृजन यात्रा

क्र.	कृति	समय	स्थल
1.	अमृत गीता	1997	भिण्ड वर्षायोग
2.	गुरु पूजा	1997	बड़ागांव धसान
3.	भक्तामर स्तोत्र (अनुवाद)	1999	मड़ावरा (वर्षायोग)
4.	रयणसार (अनुवाद)(अप्रकाशित)	2000	अयोध्या एवं बनारस
5.	लघु स्वयंभू स्तोत्र (अनुवाद)	2000	हजारी बाग, झारखण्ड
6.	प्रवचन भारती	2001	कोतमा (वर्षायोग)
7.	विरागाष्टक (हिन्दी)	2001	कोतमा (वर्षायोग)
8.	विरागाष्टक (संस्कृत)	2001	कोतमा (वर्षायोग)
9.	मंदिर गीता (कल्याणमंदिर स्तोत्र पर भावानुवाद)	2002	डिण्डौरी (ग्रीष्मकाल)
10.	एकीभाव स्तोत्र (अनुवाद)	2003	भेड़ाघाट, जबलपुर
11.	विषापहार स्तोत्र (अनुवाद)	2003	बहोरीबंद, जबलपुर
12.	जिनवर गीता (एकीभाव स्तोत्र का भावानुवाद)	2003	नागपुर (वर्षायोग)
13.	वंदन गीता (लघुस्वयंभू स्तोत्र पर भावानुवाद)	2003	नागपुर (वर्षायोग)
14.	तीर्थंकर विधान	2003	नागपुर
15.	एकीभाव विधान	2003	नागपुर
16.	धर्म भारती (भाग–1)	2002	डिण्डौरी (म.प्र.)
17.	धर्म भारती (भाग–2)	2003	सागर (ग्रीष्मवाचना)
18.	धर्म भारती (भाग–3)	2006	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
19.	धर्म भारती (भाग–4)	2006	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)

20.	गोमटेश विधान	2005 सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
21.	गोमटेश्वर अर्घावली (अप्रकाशित)	2005 श्रवणवेलगोला (ग्रीष्मवा.)
22.	मुक्तागिरि (पूजा अर्घावली)(अप्रकाशित)	2004 मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र
23.	तीर्थंकर शिक्षण	2003 नागपुर (वर्षायोग)
24.	सुनहरा अवसर (प्रवचन कृति)	2004 परभणी (वर्षायोग)
25.	जीवन है पानी बूंद (प्रवचन कृति)	2004 परभणी (वर्षायोग)
26.	घर को स्वर्ग कैसे बनायें ? (प्रवचन)	2004 परभणी (वर्षायोग)
27.	आनंद यात्रा (रचित भजन)(प्रवचन कृति)	2004 परभणी (वर्षायोग)
28.	सम्मेद शिखर वंदना (अप्रकाशित)	2007 कामठी क्षेत्र महाराष्ट्र
29.	तीर्थंकर संस्तुति	2008 द्रोणगिरि वर्षायोग
30.	द्रोणगिरि विधान	2008 द्रोणगिरि वर्षायोग
31.	पात्रकेशरी स्तोत्र (अनुवाद) (अप्रकाशित)	2003 नागपुर
32.	अकलंक स्तोत्र (अनुवाद)	2005 श्रवणवेलगोला
33.	जिनवर स्तोत्र	2009 छतरपुर, शीतकाल
34.	कुलभूषण चरित्र (काव्य)	2005 कुंथगिरि यात्रा
35.	बाहर भावना	2005 श्रवणवेलगोला
36.	उपसर्गहर स्तोत्र (अनुवाद)	2009 पार्श्वगिरी भगवाँ
37.	गुरुमंत्र	2007 नागपुर
38.	कुण्डलपुर विधान	2009 जबलपुर (म.प्र.)
39.	हृदय प्रवेश	2009 जबलपुर (म.प्र.)
40.	अक्षर-अमृत	2009 जबलपुर (म.प्र.)

41.	दशलक्षण देशना	2009	जबलपुर (म.प्र.)
42.	हृदय परिवर्तन	2009	जबलपुर (म.प्र.)
43.	भक्ति भारती	2010	टीकमगढ़ (वर्षायोग)
44.	हृदय परिवर्तन -2	2010	टीकमगढ़ (वर्षायोग)
45	आलोचना सार (रत्नाकर पंचविंशतिका)	2010	टीकमगढ़ (वर्षायोग)
46.	विश्वशान्ति विधान	2010	आहारजी क्षेत्र
47.	समाधि शास्त्र	2010	मोराजी, सागर
48.	संस्तुति सरिता	2011	गढ़ाकोटा
49.	भक्तामर शास्त्र	2012	शक्तिनगर, जयपुर
50.	अरहनाथ विधान एवं नवागढ़ क्षेत्रपूजा	2012	शक्तिनगर, जयपुर
51.	सामायिक शास्त्र	2012	शक्तिनगर, जयपुर
52.	भक्ति शास्त्र	2012	निवाई,टोंक
53.	पुरुषार्थ शास्त्र	2013	अशोकनगर
54.	तत्त्वशास्त्र	2013	ललितपुर
55.	सम्यक्त्व शास्त्र	2014	सागर
56.	पूजा शास्त्र	2014	सागर
57.	विभव विधान	2014	सागर
58.	सम्मेद शिखर विधान	2016	कोतमा
59.	भक्तामर स्तोत्र भावानुवाद	2016	सम्मेदशिखरजी
60.	भक्तामर टीका	2017	शिरडशहापुर

गुरुदेव की सर्वप्रिय रचनाएँ

1.	समाधि भक्ति	10 पद	2005	श्रवणबेलगोला
2.	दर्शन भावना	4 पद	2005	श्रवणबेलगोला
3.	जिनवाणी स्तुति	5 पद	2009	जबलपुर
4.	जिनवाणी स्तुति	5 पद	2010	टीकमगढ़

आचार्य श्री की प्रेरणा से प्रकाशित अन्य उपयोगी साहित्य

क्र.	नाम रचना	लेखक	समय	स्थल
1.	वर्द्धमान यशोगान	स्व.श्री कृष्णा पाठक	2003	नागपुर
2.	स्वयंभूत स्तोत्र	सं.ले.आचार्य समन्त भद्र		
		स्व.पं. पन्ना लाल सा.	2003	नागपुर
3.	इष्टोपदेश प्रवचन	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
4.	सल्लेखना से समाधि	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
5.	सम्यग्दर्शन	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
6.	आगम चक्खु साहू	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
7.	प्रमेय रत्नमाला	आचार्य लघु अनन्तवीर्य	2009	नागपुर
8.	आचार्य अमृतचन्द्र	कु. भारती जैन	2009	जबलपुर
9.	व्यक्तित्व एवं कृतित्व	निर्देशक-भागचन्द्र 'भागेन्दु'		
10.	शोध प्रबंध लब्धिसार	आचार्य नेमिचन्द्र	2009	जबलपुर
	(अंग्रेजी, हिन्दी, प्राकृत)	प्रस्तोता-एल.सी.जैन,		
	षट्खण्डागम	जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर	2010	टीकमगढ़

निर्देश- उपलब्ध साहित्य ज्ञानपिपासुगण निः शुल्क प्राप्त करें।

जनोपयोगी साहित्य, सी.डी. आदि